इकाई –1 मनोविज्ञान–अवधारणा–पाश्चात्य दृष्टिकोण–आत्मा, मन, चेतना तथा व्यवहार का विज्ञान

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 मनोविज्ञान की अवधारणा

1.3.1 मनोविज्ञान के अध्ययन की आवश्यकता

1.4 पाश्चात्य दृष्टिकोण

1.4.1 आधुनिक पाश्चात्य दर्शन में मन की विवेचना

1.4.2 पाश्चात्य मनोविज्ञान के क्षेत्र में मन का स्वरूप निर्धारण

1.5 मनोविज्ञान – आत्मा, मन, चेतना तथा व्यवहार का विज्ञान

1.6 सारांश

1.7 पारिभाषिक शब्दावली

1.8 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

मनोविज्ञान विषय के बारे में हम समाचारपत्रों, पुस्तकों, इंटरनेट आदि पर आये दिन लेखों को प्रकाशित होते देखते हैं। इन लेखों में हमारी आदतों, चिंताओं, समस्याओं एवं व्यवहार, विचार तथा संवेग आदि की चर्चा सामान्यतया होती रहती है। प्रत्येक विद्यार्थी के मन में इस विषय को लेकर कभी न कभी जिज्ञासा अवश्य होती है कि ये मनोविज्ञान क्या है? व मनोवैज्ञानिक किसे कहते हैं? सामान्य व्यक्ति से प्रश्न पूछने पर कि मनोविज्ञान से आप क्या समझते हैं? प्रायः एक ही उत्तर सुनने को मिलता है कि विज्ञान की वह शाखा जिसके द्वारा मन का अध्ययन किया जाता है उसे मनोविज्ञान कहते हैं। वस्तुतः इस मनोविज्ञान विषय पर कई दृष्टिकोणों से विद्वानों द्वारा विचार किया गया है। यह मनोविज्ञान वस्तुतः क्या है? आत्मा, मन, चेतना एवं व्यवहार से इसका क्या संबंध है? इन सभी जिज्ञासाओं का परिचय इस इकाई की विशेषता है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- मनोविज्ञान विषय को समझ सकेंगे।
- मनोविज्ञान की विभिन्न परिभाषाओं को जान सकेंगे।
- मनोविज्ञान की अवधारणा को पाश्चात्य दृष्टिकोण से समझ सकेंगे।
- आत्मा, मन, चेतना एवं व्यवहार मनोविज्ञान की विषय वस्तु के रूप में विश्लेषण एवं व्याख्या कर सकेंगे।

1.3 मनोविज्ञान की अवधारणा

शाब्दिक रूप में मनोविज्ञान दो पदों से मिलकर बना है, मन एवं विज्ञान । इस दृष्टि से यदि देखें तो वैज्ञानिक तरीकों से मन का अध्ययन ही मनोविज्ञान है। अर्थात् जिन तरीकों से, जिन विधियों से मन का अध्ययन किया जाना है वे वैज्ञानिक हों। यदि विज्ञान की कसौटी पर खरे उतरने वाले तरीकों से मन का अध्ययन किया जाता है तो ही उन्हें स्वीकार किया जाना चाहिए। विज्ञान की कसौटी पर विचार करने पर यह प्रश्न सहज ही उत्पन्न होता है कि ये विज्ञान क्या है? इसकी कसौटी क्या है?

करलिंगर नामक एक प्रसिद्ध विद्वान ने विज्ञान को परिभाषित करने हेतु एक बड़ी उत्तम उक्ति–कथन का प्रयोग किया है। उनका यह कथन इस प्रकार है – 'विज्ञान सामान्य समझ का क्रमबद्ध रूप से नियंत्रित विस्तार है' (Science is the systematic and controlled extension of common sense)। इस कथन के शब्दों के बड़े ही गूढ़ एवं गहरे निहितार्थ हैं। 'सामान्य समझ' वह समझ है जो कि सामान्य व्यक्तियों में उनके जीवन में घटने वाली विभिन्न प्रकार की घटनाओं के लिए होती है। जीवन में घटने वाली घटना केवल घटना नहीं होती है बल्कि उस घटना से पूर्व उसका कारण एवं उस घटना के पश्चात उसका परिणाम होता है। इस प्रकार प्रत्येक घटना में उसका कारण एवं प्रभाव विद्यमान होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामान्य समझ के अनुरूप घटना के कारण का अनुमान एवं संभावित परिणाम की व्याख्या करता है। जब यह सामान्य समझ नियंत्रित एवं निर्देशित हो जाती है अर्थात् इस समझ को व्यवस्थित

एवं क्रमबद्ध रूप में दिशा मिल जाती है तब यह वैज्ञानिक ज्ञान प्रदान करने वाली हो जाती है। इसी समझ के विकास का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन करना ही मनोविज्ञान कहलाता है।

समझ को बोध (understanding) भी कहा जाता है। इस समझ के कई स्वरूप होते हैं जिनमें वैचारिक समझ एवं भावनात्मक समझ प्रमुख हैं। परन्तु यह दोनों समझ स्थूल रूप में दिखलाई नहीं पड़ती हैं। स्थूल रूप में दिखलाई पड़ता है व्यवहार। इसीलिए कहा जाता है कि मानव की समझ उसके व्यवहार में परिलक्षित होती है। परन्तु यह व्यवहार मनुष्य की सोच एवं भावनाओं/संवेगों पर आधारित होता है। इस प्रकार सार रूप में यह परिभाषित किया जा सकता है कि 'मानसिक प्रक्रियाओं एवं व्यवहार के अध्ययन का विज्ञान ही मनोविज्ञान है।

1.3.1 मनोविज्ञान के अध्ययन की आवश्यकता

मनोविज्ञान के अध्ययन की आवश्यकता क्यों है? इस प्रश्न का उत्तर हम सभी को अपने जीवन में झांकने से प्राप्त होता है। हम सभी अपने जीवन में जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त विभिन्न प्रकार के अनुभवों से गुजरते हैं, एवं जिनमें घटनाओं को समझना, चुनौतियों से निबटना, संबंधों का विकास, रोग आदि सम्मिलित होते हैं। इन अनुभवों के प्रकाश में हम जीवन के महत्वपूर्ण पड़ावों में निर्णय लेते हैं। हमारे ये निर्णय कभी सही साबित होते हैं कभी गलत। कुछ परिस्थितियों में हमें स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि हम सही निर्णय कर रहे हैं वही कुछ परिस्थितयों में हम अस्पष्ट होते हैं। हमारे निर्णयों का सही एवं गलत होना हमें प्राप्त सूचनाओं की समझ एवं उनकी विश्लेषण कर पाने की क्षमता पर निर्भर करता है। इसके साथ ही हमारी भाव दशा एवं पूर्व अनुभव भी इसमें महत्वूपर्ण भूमिका निभाते हैं। सही निर्णय हमें सही परिणाम प्रदान करते हैं एवं हमें हमारे लक्ष्य की प्राप्ति होती है। सही निर्णय हमारे जीवन को बेहतर बनाते हैं। ऐसी परिस्थिति में यह प्रश्न उठता है कि यह निर्णय लेने की प्रक्रिया किस प्रकार घटित होती है? कौन से कारक इसमें बाधक होते हैं? एवं कौन से कारक इसमें सहायक होते हैं? यदि इन प्रश्नों का समुचित उत्तर हमें प्राप्त हो सके तो हम निर्णय करने की प्रक्रिया को समझ सकते हैं। सार रूप में यदि कहें तो अपने दैनिक जीवन में हम अपनी मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं द्वारा संचालित होते हैं जिनके बारे में हमें निश्चित रूप से जानना चाहिए। इसी कारण मनोविज्ञान के अध्ययन की आवश्यकता है।

1.4 पाश्चात्य दृष्टिकोण में मनोविज्ञान

वर्तमान समय में पूरे विश्व में मनोविज्ञान का जो स्वरूप प्रचलित एवं प्रचारित हो रहा है उसमें व्यापक रूप से पाश्चात्य दष्टिकोण ही परिलक्षित हो रहा है। मनोविज्ञान को पाश्चात्य दृष्टिकोण से जानने के लिए पाश्चात्य दर्शन में मन की अवधारणा को समझना आवश्यक है।

प्राचीन पाश्चात्य दृष्टिकोण में मन – पाश्चात्य दर्शन में मन के स्वरूप पर पर्याप्त विचार हुआ है, किन्तु यह भारतीय दर्शन की परम्परा से सर्वथा हटकर हुआ है। भारतीय दर्शन में जहॉ मन एवं आत्मा को अलग–अलग माना गया है वहीं पाश्चात्य दर्शन में मन एवं आत्मा को समतुल्य माना गया है। यूनानी दर्शन में सुकरात एक प्रमुख दार्शनिक हुए हैं उनकी दृष्टि में मन या जीवात्मा दैवी, नित्य,

बोधगम्य, समान अविनाशी और अजर है। जबकि शरीर विनाशी, जड़, परिवर्तनशील और नष्ट होने वाला है। प्लेटो भी आत्मा और मन में भेद नहीं मानते। उनके अनुसार आत्मा या मन शरीर व इन्द्रियों के नश्वर जगत् से परे का उच्चतर सत्य है। इसके वे तीन विभाग बताते हैं – बुद्धि (cognition), संकल्प (Will), और संवेदना (Sensation)। बुद्धि का धर्म ज्ञान है। पहले विभाग के अन्तर्गत वैचारिक क्षमता आती है। दूसरे विभाग के अन्तर्गत व्यक्ति कोई कार्य व्यवहार में उतारता है। तीसरे विभाग, बुभूक्षा के अंतर्गत सुख की इच्छा, धन की कामना, भोजन की इच्छा तथा इसी तरह की अन्य शारीरिक इच्छाओं को रख सकते हैं। आगस्टीन का कथन है कि मनुष्य मन और शरीर का मिश्रण है और मन (आत्मा) सरल, चेतन तथा आध्यात्मिक तत्व है और शरीर से वास्तव में अलग है। वे मन की तीन शक्तियॉ बतलाते हैं – बुद्धि, संकल्प और स्मृति। वे शरीर का संचालन मन के द्वारा निर्देशित बताते हैं। महान दार्शनिक थोमस एक्विनो जो कि अरस्तू से काफी प्रभावित थे उनके अनुसार शरीर के प्रत्येक भाग में मन मौजूद है। बुद्धि प्रत्येक व्यक्ति के मन का भाग है। वे मन की दो शक्तियॉ मानते हैं – संवेदना (Sensation) और क्रियात्मक बुद्धि (Active intelligence) और उनके अनुसार ये शक्तियॉ ही मनुष्य को ज्ञान प्रदान करने में सक्षम बनाती हैं।

1.4.1 आधुनिक पाश्चात्य दर्शन में मन की विवेचना

प्राचीन एवं मध्ययुगीन पाश्चात्य चिन्तन जहॉ धार्मिक प्रवृत्तियों से प्रभावित रहा, वहीं आधुनिक पाश्चात्य दर्शन का प्रारम्भ आधुनिक काल की बौद्धिक प्रवृत्तियों के बीच हुआ। इस दौर के दार्शनिकों में रेने देकार्त सर्वोपरि रहे। उन्हें आधुनिक दर्शन ही नहीं बल्कि आधुनिक दार्शनिक प्रणाली का पिता माना जाता है। देकार्त के अनुसार मनुष्य का मन अथवा आत्मा शरीर से पूर्णतः भिन्न है। मन स्वतंत्र, अभौतिक एवं विचारशील वस्तु है। मन का अस्तित्व स्वयं सिद्ध है। इस संदर्भ में देकार्त की यह उक्ति प्रसिद्ध है कि, मैं सोचता हूँ, अतः मैं हूँ।

इसी तरह स्पिनोजा के मत में शरीर और मन दोनों आपस में समानान्तर हैं व इनमें कार्य–कारण का सम्बन्ध नहीं है। इस तरह मन में केवल चेतना नहीं है, बल्कि यह आत्मचेतन भी है, जिसे स्पिनोजा ने शरीर के प्रत्यय का प्रत्यय (Idea of the idea of body) कहा है।

अनुभववाद को मानने वाले दार्शनिक जानॅ लाक के अनुसार मनुष्य का मन प्रारम्भ में खाली पट्टी की तरह होता है, जिसमें कोई चिह्न या प्रत्यय नहीं होता। अनुभव होने पर ही इसमें विचार या ज्ञान का उद्भव होता है। अनुभव से ज्ञान दो तरह का होता है – संवेदना द्वारा और चिन्तन द्वारा। संवेदना द्वारा ऐन्द्रिय गुणों का ज्ञान होता है और चिन्तन में प्रत्यक्ष, संवेग, विश्वास, विचार, तर्क, संकल्प जैसी मन की कियायें आती हैं।

डेविड् ह्यूम अनुभववाद को अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचाने वाले दार्शनिक हुए हैं। उनके अनुसार मनया आत्मा नित्य और शाश्वत नहीं हैं, क्योंकि यह तथ्य अनुभवगम्य नहीं है और अनुभव के अतिरिक्त अन्य किसी का जगत में अस्तित्व नहीं है। आत्मा इन्द्रियों से अनुभव नहीं होती है, अतः वह असिद्ध है। ह्यूम के अनुसार मन उन विभिन्न संवेदनाओं के युग्म के अतिरिक्त कुछ नहीं है जो कि

अचिन्तनीय तीव्रता के साथ एक के पीछे एक आते हैं। इस तरह मन या आत्मा मानसिक क्रियाओं को समूह भर है।

1.4.2 पाश्चात्य मनोविज्ञान के क्षेत्र में मन का स्वरूप निर्धारण

दर्शन एवं विज्ञान की तरह ही मनोविज्ञान के क्षेत्र में भी मन सम्बंधी विचार अभी विकास की प्रक्रिया में है और समग्र प्रतिपादन से सर्वथा दूर हैं। स्वतंत्र प्रयोगात्मक विज्ञान के रूप में इसकी स्थापना सन 1879 में हुई। तब से आधुनिक मनोविज्ञान की यह धारा साहचर्यवाद, संरचनावाद, प्रकार्यवाद, व्यवहारवाद, मनोविश्लेषण, संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, मानवतावाद आदि विविध सम्प्रदायों के उद्भव विकास एवं संगठन के साथ अपनी विकास यात्रा पर गतिशील है। प्रिय विद्यार्थियो मन के सम्बंध में इनके विविध मत इस प्रकार हैं।

1. **साहचर्यवाद में मन–** विलियम वुण्ट के प्रयासों के परिणामस्वरूप स्वतंत्र मनोविज्ञान के रूप में मनोविज्ञान की स्थापना हुई। वे मन की तत्व प्रकृति पर बल देते हुए इसके दो तत्व बताते हैं – संवेदना (sensation) और अहसास (feeling)। इन दोनों तत्वों के साहचर्य के साथ मानसिक क्रियाओं का निर्माण होता है। वुण्ट मन के अध्ययन हेतु अन्तर्दर्शन की विधि को महत्व देते हैं और मानसिक क्रियाओं की शारीरिक आधार पर व्याख्या करते हैं। वुण्ट मन तथा शरीर में एक प्रकार के समानान्तर समबंध की विवेचना करते हैं, पर यह स्पष्ट नहीं कर पाये हैं कि मन और शरीर एक दूसरे के समानान्तर होते हुए भी किस प्रकार घनिष्ठ सम्बंध से सम्बन्धित हैं।

2. **संरचनावाद में मन**

संरचनावाद का प्रतिपादन टिचनर द्वारा किया गया है।वे मन और चेतना के बीच अन्तर करते हुए, मन को व्यक्ति के जन्म से लेकर मरण तक के अनुभवों के समुच्चय के रूप में परिभाषित करते हैं और चेतना को, पल–पल होने वाले व्यक्ति के अनुभवों का समुच्चय बताते हैं। वे भी वुण्ट की तरह शरीर और मन के बीच समानान्तरवाद के पक्षधर हैं। वुण्ट ने जहॉ मन के दो घटक बताए थे– संवेदना और भावना। टिचनर इसमें एक ओर जोड़ देते हैं – प्रतिभा। यहॉ संवेदन इन्द्रियजन्य अनुभवों का आधार है, अहसास संवेगों में विद्यमान मूल तत्व है और प्रतिभा विचार, कल्पना और स्मृति का मूल आधार है। इसी तरह वे मानसिक तत्वों की चार विशेषतायें और बताते हैं – गुण, गहनता, अवधि और स्पष्टता।

3. **प्रकार्यवाद में मन का स्वरूप**

विलियम जेम्स प्रकार्यवाद के प्रमुख प्रवर्तक माने जाते हैं वे टिचनर एवं वुण्ट के समान मन को स्थितज (Static) नहीं मानते हैं और न ही वे इसे समझने के लिए इसके अलग अलग खण्डों में बॉटकर अध्ययन की वकालत ही करते हैं। उनके अनुसार तो मन सतत् परिवर्तनशली चेतना प्रवाह है।

4. **व्यवहारवाद में मन का विरोध**

व्यवहारवाद की स्थापना 1913 में वाटसन द्वारा की गयी। यह संरचनावाद एवं प्रकार्यवाद दोनों के विरोध का परिणाम थी। प्राकृत विज्ञान की यह शाखा विशुद्धतः वस्तुनिष्ठ एवं प्रयोगात्मक थी। इसके अनुसार केवल प्रेक्षणीय व्यवहार ही मनोविज्ञान के अध्ययन की विषयवस्तु हो सकता है। इसी परम्परा में स्कीनर भी

मन को नकारते हैं और अन्तर्नोद, अभिप्रेरण और संवेग जैसे सूक्ष्म एवं अदृश्य तत्वों को नहीं मानते ओर न ही रचनात्मकता को स्वीकारते हैं।

5. गेस्टाल्ट का समग्रवाद

गेस्टाल्ट सम्प्रदाय के जन्मदाता मैक्स वर्दाइमर हैं। गेस्टाल्ट का अर्थ है – समग्रता। यह मानसिक अध्ययन में समग्रता एवं अखण्डता के सिद्धान्त पर बल देता है। इसके अनुसार मन व चेतना का अध्ययन इसे टुकड़ों में बॉटकर नहीं किया जा सकता है। बल्कि विभिन्न खण्ड परस्पर मिलकर जो नया स्वरूप गढ़ते हैं वह इसे समग्र स्वरूप प्रदान करता है।

6. मनोविश्लेषण में मन का स्वरूप

सिगमंड फ्रायड ने मनोविश्लेषण का प्रतिपादन किया। उनके अनुसार मन के दो भाग हैं– चेतन और अचेतन। मन का मात्र 10 प्रतिशत भाग ही चेतन है और शेष अधिकांश भाग अचेतन है। इस संदर्भ में इड, ईगो और सुपर ईगो फ्रायड की विकसित अवधारणायें हैं। इड व्यक्ति के जन्मजात गुण तथा जैविक प्रवृत्तियों का स्रोत है। यह मन का अज्ञात एवं अचेतन भाग है। यह विवेक रहित होता है और दमित इच्छाओं तथा वासनाओं का आधार है। ईगो इड का वह अंश है जो बाह्य पर्यावरण से प्रभावित होकर विकसित होता है। यह मन का चेतन अंश है जो अचेतन मन की अवांछनीय इच्छाओं को नियंत्रित करता है। सुपर ईगो का सम्बंध नैतिक अभिवृत्तियों, आदतों और मूल्यों से है, जिसे व्यक्ति शिक्षा द्वारा प्राप्त करता है। यही व्यक्ति को आदर्श जीवन जीने के लिए प्रेरित करता है। मनोविश्लेषण की परंपरा में एडलर का स्थान महत्वपूर्ण है। एडलर के अनुसार किसी व्यक्ति के मन का अध्ययन तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि उसे सम्पूर्ण जीवन का ज्ञान न हो। इसके अंतर्गत वे व्यक्ति के जीवन लक्ष्य और जीवन शैली में निकटता को आवश्यक मानते हैं। उनके अनुसार 'व्यक्ति के व्यवहार एवं मानसिक क्रियाओं की व्याख्या उसका अंतिम लक्ष्य ही कर सकता है। एडलर के विचार में चेतन तथा अचेतन एक दूसरे से सर्वथा भिन्न नहीं हैं। जब हम अचेतन को समझ जाते हैं तो वह चेतन हो जाता है तथा जब चेतन समझ नहीं पाते तब वह अचेतन हो जाता है।

कार्ल युंग मन के स्थान पर चित्त (साइकी) शब्द का प्रयोग करते हैं। इसमें अचेतन और चेतन दोनों का समावेश हो जाता है। जबकि मन से केवल चेतन मन का आभास मिलता है। युंग अचेतन को प्रमुख मानते हैं तथा चेतन को गौण। चेतन मन का ऊपरी भाग है तथा अचेतन के बिना ठहर नहीं सकता। अचेतन के भी यहॉ दो रूप हैं। वैयक्तिक और सामूहिक। वैयक्तिक अचेतन जीवन के अनुभवों के आधार पर विकसित होता है और सामूहिक अचेतन उसकी सांस्कृतिक परम्परा एवं आनुवांशिकता द्वारा विनिर्मित होता है। मानसिक क्रियाओं में युंग चिंतन (thinking) , भावना (feeling), संवेदना (sensation) और सहजबोध (intuition) पर महत्व देते हैं। इस तरह सामूहिक अचेतन एवं वैयक्तिक अचेतन युंग की मन सम्बन्धी नूतन धारणा है जो उचित होते हुए भी इस संदर्भ में त्रुटिपूर्ण है। इस तरह आधुनिक मनोविज्ञान की विभिन्न शाखाएँ मन एवं इसकी क्रियाओं के विविध पक्षों पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालती है, किन्तु किसी भी शाखा में मन का

स्वरूप स्पष्ट रूप से विवेचित नहीं हो पाता है। अतः आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान मन के सम्यक् प्रस्तुतिकरण से अभी सर्वथा दूर है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आधुनिक पाश्चात्य् मनोविज्ञान अभी भी मन की अवधारणा को पूरी तरह से स्पष्ट नहीं कर पाया है। विभिन्न प्रकार के मत होने के कारण इसकी भिन्न–भिन्न व्याख्यायें मिलती हैं।

1.5 मनोविज्ञान – आत्मा, मन, चेतना तथा व्यवहार का विज्ञान : पाश्चात्य मनोविज्ञान के साथ एक तुलनात्मक विवेचन

पाश्चात्य मनोविज्ञान आज विकसित तथा प्रयोगात्मक रूप धारण कर चुका है। तथा प्रयोगात्मक पद्धति के द्वारा अत्यधिक उन्नत हो चुका है। ऐसी विकसित तथा विकासोन्मुख स्थिति में भी पाश्चात्य मनोविज्ञान के द्वारा हमको मन की पूरी शक्तियों का ज्ञान अभी तक नहीं हुआ। पाश्चात्य मनोविज्ञान के इतिहास की ओर ध्यान देने से हमें ज्ञात होगा कि इसका क्षेत्र केवल अचेतन मन और चेतन मन तक ही सीमित है। लेकिन हमारे मन की कुछ ऐसी वास्तविक शक्तियॉ तथा तथ्य है, जिनको हम आधुनिक मनोविज्ञान के द्वारा नहीं समझा सकते। इसका मुख्य कारण भौतिकवाद के ऊपर आधारित विज्ञानों की पद्धति को ही अपनाया जाता है। भारतीय मनोविज्ञान और पाश्चात्य मनोविज्ञान में यही अन्तर है कि भारतीय मनोविज्ञान भौतिकवाद के ऊपर आधारित नहीं है। वह केवल प्रकृति तत्वों को ही नहीं बल्कि उसके अतिरिक्त अन्य चेतन जीवों (पुरूषों, आत्माओं) तथा ईश्वर (पुरूष विशेष, परमात्मा) को भी मानता है। अतः दोनों में महान अन्तर पाया जाता है। इस भेद के कारण ही पाश्चात्य मनोविज्ञान के प्रारम्भ होने से भी बहुतकाल पूर्व ही, भारत ने मन के सम्पूर्ण पहलुओं का वैज्ञानिक और व्यवहारात्मक ज्ञान प्राप्त कर लिया था जिसकी आज पाश्चात्य मनोविज्ञान कमी महसूस कर रहा है। आधुनिक मनोविज्ञान संवेदना, उद्वेग, प्रत्यक्षीकरण, कल्पना विचार, स्मृति आदि मानसिक प्रक्रियाओं तथा उनको उत्पन्न करने वाले भौतिक कारण तथा शारीरिक अवस्थाओं का ही अध्ययन करता है। आत्मा व मन का अध्ययन वह नहीं करता। वह मस्तिष्क के कार्य से भिन्न आत्मा व मन का अध्ययन वह नहीं करता। वह मस्तिष्क के कार्य से भिन्न आत्मा व मन का अस्तित्व नहीं मानता। हमकों जो भी ज्ञान प्राप्त होता है, वह सब ज्ञानेन्द्रियों से सम्बन्धित नाड़ियों द्वारा बाह्य जगत् की उत्तेजनाओं के प्रभावों के मस्तिष्क के विशिष्ट केन्द्रों में पहुॅचने से प्राप्त होता है। वह मानसिक भावों और विचारों को मस्तिष्क के भौतिक तत्वों की गतियों, प्रगतियों, क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं के रूप में जानता है। वह संवेदनाओं को मस्तिष्क वल्क (सेरीब्रल कॉर्टेक्स) की क्रिया मानता है। उसके अनुसार दृष्टि संवेदना में मस्तिष्क–वल्क का दृष्टिक्षेत्र क्रियाशील होता है। श्रवण संवेदना में श्रवण क्षेत्र क्रियाशील होता है। इसी प्रकार से अन्य विभिन्न संवेदनाओं में विभिन्न मस्तिष्कीय वल्क क्षेत्र कियाशील होते हैं। अतः हमारी सारी संवेदनायें तथा ज्ञान मस्तिष्क–वल्क की क्रियाशीलता पर ही आधारित है, जिसकी क्रियायें यांत्रिक रूप से चलती रहती हैं। इस प्रकार से मनोवैज्ञानिक ज्ञान के लिये, शरीर–विज्ञान का ज्ञान आवश्यक हो जाता है। उसमें भी स्नायु–मण्डल के ज्ञान के बिना मनोविज्ञान का अध्ययन होना अति कठिन है। ऐसी स्थिति में आधुनिक मनोविज्ञान हमें चेतना तथा मन की शक्तियों के विषय में

कुछ भी नहीं बता सकता है। मस्तिष्क की यांत्रिक क्रियाओं के द्वारा चेतना की उत्पत्ति, जो कि आधुनिक मनोविज्ञान के द्वारा बतायी गयी है, किस प्रकार से मानी जा सकती है? आधुनिक मनोविज्ञान यह नहीं समझा पाता है कि मानसिक अवस्थायें, दैहिक क्रियाओं तथा स्पंदनों से बिल्कुल ही अलग है। मन और शरीर एक नहीं माने जा सकते। शरीर का ही अंग होने के नाते मस्तिष्क मन से नितान्त भिन्न है। भारतीय दर्शन में मन या आत्मा सबका द्रष्टा माना गया है। वह स्वयंप्रकाशवान है। मस्तिष्क शरीर का अंग है अतः वह जड़ तत्व है जिसमें वस्तुओं के पारस्परिक समझने की शक्ति तथा सुख–दुख का अनुभव भी नहीं होता, जो कि मन व आत्मा के द्वारा होता है। चेतना और मस्तिष्क के भौतिक स्पंदन एक नहीं माने जा सकते, भले ही उनमें सम्बंध हो। शरीर और मस्तिष्क के विकार से मानसिक क्रियायें विकृत व समाप्त हो सकती हैं, अथवा मस्तिष्क स्पंदनों से चेतना जाग्रत हो सकती है, किन्तु मन एवं शरीर को एक नहीं कहा जा सकता है। ,

पाश्चात्य मनोविज्ञान का अध्ययन, व्यक्तियों की नाड़ियों तथा मस्तिष्क केंद्रों आदि तक ही सीमित है। किन्तु क्या सचमुच मनोविज्ञान का अध्ययन क्षेत्र इन्हीं तक सीमित रहना चाहिए? मन तथा चेतन सत्ता के अध्ययन के बिना उसका ज्ञान अधूरा ही माना जायेगा।

सांख्य योग मे चित्त–मन का स्थान आत्मा से भिन्न है। चित्त जो कि प्रकृति से उत्पन्न है उसका विकास चेतन सत्ता के संनिधान के बिना नहीं हो सकता। अचेतन ततव बिना आत्मा के प्रकाश के प्रकाशित नहीं हो सकते। सूक्ष्म से स्थूल की ओर विकास होता है, अर्थात् अति सूक्ष्म प्रकृति से महत्तत्व की अभिव्यक्ति होती है। उस महत्तत्व या बुद्धि से जिसे चित्त भी कहा जाता है, अहंकार की अभिव्यक्ति होती ह। सत्व प्रधान अहंकार से मन, पंच ज्ञानेंन्द्रियॉ ओर पंच कर्मेन्द्रियों की अभिव्यक्ति होती है। तमस् प्रधान अहंकार से पंच तन्मात्राओं, तथा इन पंच तन्मात्राओं से पंचमहाभूतों की अभिव्यक्ति होती है। इन पंच महाभूतों की ही अभिव्यक्ति यह सम्पूर्ण दृश्य स्थूल जगत है। इन पंचमहाभूतों से , उनका कारण, पंचतन्मात्रायें सूक्ष्म होती हैं। साधारण व्यक्तियों को इनका प्रत्यक्ष नहीं होता है। वे तो केवल अनुमान ही लगा सकते हैं। इनका प्रत्यक्ष तो केवल योगियों का ही होता है। पंचतन्मात्रा, मन, इन्द्रिय आदि से अहंकार सूक्ष्म होता है। अहंकार से बुद्धि, और बुद्धि से प्रकृति अधिक सूक्ष्म है। अतः योग के अनुसार मस्तिष्क शरीर का अंग होने से स्थूल है। मन बहुत सूक्ष्म है। चित्त (बुद्धि) अत्यधिक सूक्ष्म है। कहीं–कहीं योग में अन्तःकरण, बुद्धि, अहंकार और मन सबको चित्त कहा गया है। यह चित्त जड़ होते हुए भी चेतन सत्ता के प्रकाश से प्रकाशित होकर ही ज्ञान प्रदान करता है। बिना चेतन सत्ता के ज्ञान हो ही नहीं सकता। भला जड़ पदार्थ में ज्ञान कहॉ? चेतन सत्ता ही सम्पूर्ण ज्ञान का आधार है। उसको भूलना, जिसके बिना ज्ञान ही असम्भव है, वास्तविक लक्ष्य से मनोविज्ञान को दूर हटा देना है।

पाश्चात्य मनोविज्ञान तो केवल स्थूल शरीर (नाड़ियॉ, मस्तिष्क, ज्ञानेन्द्रियां आदि) तक ही सीमित है। उसमें तो योग के अनुसार चित्त जैसे सूक्ष्म जड़ तत्व का भी विवेचन नहीं है। भला जिस चित्त के ऊपर मस्तिष्क की सब क्रियाओं का होना निर्भर है अगर उसी का विवेचन मनोविज्ञान नहीं करता तो वह यथार्थरूप में मानसिक क्रियाओं का ज्ञान किस प्रकार प्राप्त कर सकता है? बिना मन के

मानसिक क्रियायें कैसी? केवल इतना ही नहीं बल्कि यह चित्त या मन भी भारतीय विचार के अनुसार प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति होने के कारण जड़ तत्व है, जो स्वयं अचेतन होने के कारण बिना चेतन–सत्ता के प्रकाश के ज्ञान प्रदान नहीं कर सकता।

पाश्चात्य मनोविज्ञान की सबसे बड़ी भूल मनोविज्ञान के अन्तर्गत मन और आत्मा को अध्ययन का विषय न मानना है। मन और आत्मा का विवेचन किये बिना मनोविज्ञान का अध्ययन व्यर्थ सा है। इन्द्रियॉ भी मन के संयोग के बिना ज्ञान प्रदान नहीं कर सकतीं। मन ही इन्द्रियों द्वारा प्राप्त सामग्री को अर्थ प्रदान करता है। चित्त जब तक विषयाकार नहीं होता, तब तक ज्ञान का प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु चित्त के विषयाकार हो जाने पर भी अगर उस चित्त में चेतन सत्ता (आत्मा) प्रतिबिम्बित नहीं होती, तो ज्ञान प्राप्त नहीं होता। चेतन सत्ता के प्रकाश के बिना तो सब कुछ निरर्थक है, क्योंकि चित्त तो जड़ है। जड़ होने के बावजूद चित्त ज्ञान का साधन है। अतएव चित्त और आत्मा दोनों ही मनोविज्ञान के अध्ययन के विषय हैं, जिन्हें आज के पाश्चात्य मनोविज्ञान ने तत्व–दर्शन का विषय कहकर अपने अध्ययन का विषय नहीं माना है।

पाश्चात्य मनोविज्ञान अपनी आज की विकसित स्थिति में भी केवल चेतन और अचेतन मन तक ही सीमित है। कुछ मनोवैज्ञानिक सम्प्रदायों को छोड़कर अन्य सभी मनोवैज्ञानिक यह मानने लगे हैं कि हमारी चेतनावसाी भी कहुत कुछ अचेतन मन से शासित है। यह अचेतन मन बहुत ही शक्तिशाली है। वह हमारी चेतन प्रवृत्तियों को निश्चित करता है। उसकी शक्ति को हम सामान्य रूप से नहीं जान पाते हैं, किन्तु यह प्रमाणित है कि वह हमारे व्यवहारों को प्रभावित करता रहता है। आज इस अचेतन मन का अध्ययन आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान के अध्ययन का प्रमुख विषय बन गया है। चिकित्सक चिकित्सा–क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक अध्ययन को महत्व देने लगे हैं। इसके बिना चिकित्साशास्त्र का अध्ययन आज अपूर्ण माना जाने लगा है। हर शारीरिक रोग के मानसिक कारण बताये जाने लगे हैं। अर्थात् रोगों के मूल में मानसिक विकार समझे जाने लगे हैं। जिन्हें दूर किये बिना, रोग से छुटकारा नहीं मिल सकता है।

मनोविश्लेषणवाद के प्रमुख मनोवैज्ञानिक, फ्रायड, युंग तथा एडलर आदि ने बताया है कि व्यक्ति के अचेतन मन में ऐसी भावना–ग्रंथियॉ घर कर लेती हैं जिनके कारण व्यक्ति मनोरोगी हो जाता है। रोग का बाह्य उपचार व्यक्ति को रोग से मुक्त नहीं कर पाता। उसके लिये तो अचेतन भावना–ग्रंथियों का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है। उसके समाप्त होने पर रोग स्वयं भी समाप्त हो जाता है। मानसिक संघर्ष, हताशा, कुण्ठा, कुसमायोजन, अथवा मानसिक संतुलन की कमी से व्यक्ति के स्नायुमण्डल में विकृति उत्पन्न हो जाती है जिसके कारण उसको बहुत से रोग घेर लेते हैं। स्नायुमण्डल हमारे जीवन तथा हमारी आरोग्यता में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। फ्रायड के अनुसार सब मानसिक रोगों का मुख्य कारण आन्तरिक मानसिक संघर्ष तथा दमन है। दमन के कारण ही भावना–ग्रंथियॉ बनती हैं। जो कि मानसिक रोग का रूप ग्रहण कर लेती हैं। एडलर के अनुसार आत्मस्थापन की मूल प्रवृत्ति की संतुष्टि न होने के कारण हीनत्व–ग्रंथि बन जाती है जिससे जीवन का समायोजन बिगड़ जाता है। अन्ततोगत्वा उसके द्वारा मनोरोगों की उत्पत्ति

होती है। कार्ल युंग के अनुसार हमारे मानसिक रोगों का कारण प्राकृतिक इच्छाओं की पूर्ति का न होना है। वातावरण से असामंजस्य व्यक्तित्व में असंतुलन कर देता है जिसके कारण सभी भावना–ग्रंथियॉ मन को दुर्बल और सम्पूर्ण विचार भाव व्यवहारों को असम्बद्ध कर देती है। ऐसी अवस्था में व्यक्ति अनेक रोगों से आक्रान्त हो जाता है। इस प्रकार से हम देखते हैं कि सभी मनोविश्लेषणवादियों की खोजों से यह पता चलता है कि पागलपन, मनोदौर्बल्य (साइकोन्यूरोसिस), मनोविक्षिप्तता (साइकोसिस) आदि का कारण मानसिक संघर्ष (कॉनफिलिक्ट) और हताशा हैं।

फ्रायड, युंग आदि मनोविश्लेषणवादियों के इस अचेतन मन की अवधारणा से भारतीय मनोवैज्ञानिक बहुत कुछ सहमत हैं। अचेतन मन सचमुच में उस हिमशिला खण्ड (आइसबर्ग) के जल में डूबे हुए भाग के समान है जो दृष्टिगोचर भाग से प्रायः नौगुना अधिक होता है और जिसका अनुमान हम दिखलायी पड़ने वाले हिमशिलाभाग से नहीं लगा सकते। हम चेतन मन से अचेतन मन के विस्तार का अनुमान नहीं कर सकते। यह अचेतन मन हमारी बहुत सी क्रियाओं से प्रमाणित होता है, और हमें अदृश्यरूप से प्रभावित करता रहता है। व्यक्ति उन अदृष्ट प्रभावों को भले ही न समझ पाये या उनके प्रति सामान्य व्यक्तियों का ध्यान भी न जा पाये, किन्तु उसकी सत्ता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि हमारा प्रत्येक व्यवहार उससे प्रभावित होता रहता है। भारतीय मनोवैज्ञानिक इसे संस्कार कहते हैं। योग दर्शन में ज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक तीन प्रकार के संस्कार बताये गये हैं। संस्कार पूर्व जन्मों के भी होते हैं जिनहें वासना कहा जाता है।

व्यवहारवादी सम्प्रदाय जिनके जन्मदाता अमेरिकी मनोवैज्ञानिक वाटसन हैं मानव को यन्त्रवत मानते हैं। चेतन का अस्तित्व उनके यहॉ भ्रम मात्र है। उनके अनुसार मनोविज्ञान का विषय केवल प्राणी के व्यवहार का अध्ययन करना है। वाटसन ने कहा है कि मनोविज्ञान को हम अन्तर्निरीक्षण विधि के आधार पर कभी भी वैज्ञानिक नहीं बना सकते। व्यवहारवादियों ने केवल मनोविश्लेषणवादियों के अचेतन मन के अध्ययन का ही खण्डन नहीं किया है, बल्कि उन्होंने चेतन सत्ता माननेवाले सभी मनोवैज्ञानिक सम्प्रदायों का खण्डन किया है। वे अन्तर्निरीक्षण विधि के द्वारा प्राप्त ज्ञान को यथार्थ ज्ञान मानने के लिए तैयार नहीं होते। उनके अनुसार मनोविज्ञान व्यवहार के निरीक्षण और परीक्षण के आधार पर ही वैज्ञानिक यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर सकता है। हमारा सम्पूर्ण व्यक्तित्व अधिकांश वातावरण पर आधारित है। इस सम्प्रदाय के अनुसार मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय व्यवहार तक ही सीमित है।

गेस्टाल्टवादी विचारधारा जिसके प्रवर्तक मैक्स वरदाईमर हैं तथा जिसमें कोफका एवं कोहलर का भी योगदान है के अनुसार चेतना सम्पूर्ण इकाई है, वह अलग अलग मूलप्रवृत्ति व प्रत्यक्षों के संयोग से प्राप्त नहीं होती। गेस्टाल्टवाद के इस प्रकार से समग्र मन अध्ययन का विषय होने पर भी वह हमें मन की सब अवस्थाओं के विषय में पूर्णरूप से समझा नहीं पाता है। चित्त की चार अवस्थायें होती हैं –1. जाग्रत, 2. स्वप्न, 3. सुषुप्ति, तथा 4. तुरीया। स्वप्न तथा सुषुप्ति तो अचेतनावस्था के भीतर आ जाती हैं। अतः पाश्चात्य मनोविज्ञान के शब्दों में हम इन चारों अवस्थाओं को तीन अवस्थाओं के रूप में कह सकते हैं – 1. चेतन (conscious), 2. अचेतन (unconscious), 3. अतिचेतन (supra-conscious)।

इन सब सम्प्रदायों के विषय में जानने से यह प्रतीत होता है कि पाश्चात्य मनोविज्ञान का कोई भी सम्प्रदाय अभी तक मन के सम्पूर्ण रूप का , भारतीय मनोवैज्ञानिकों की तरह से विवेचन नहीं कर पाया है। इन सब सम्प्रदायों की वैज्ञानिक विधि भी , जिनके ऊपर ये आधारित हैं, हमकों अधूरे निर्णयों तक ले जाकर ही छोड़ देती हैं। किसी भी निरीखण या प्रयोग के द्वारा अभी तक हमम न की अति–चेतनावस्था (supra-conscious state of mind) तथा इन्द्रिय निरपेक्ष प्रत्यक्षीकरण (extra sensory perception) को नहीं समझ पाये है। भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार हमारा सारा ज्ञान इन्द्रिय विषय–सन्निकर्ष के आधार पर माना जाता है, किन्तु ज्ञान सम्बन्धी कुछ ऐसी विचित्र घटनायें हैं जो कि इन्द्रियातीत तथा देशकाल से भी परे की हैं। एक व्यक्ति के मानसिक विचार और भाव अत्यधिक दूरी पर रहने वाले व्यक्ति के द्वारा व्यक्त किये जा सकते हैं। भिन्न–भिन्न देशकाल में एक मानसिक घटना को ठीक उसी स्वरूप में अनुभव किया जा सकता है। आधुनिक प्रयोगात्मक मनोविज्ञान इसका कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दे पाता है। आधुनिक मनोविज्ञान तो केवल इन्द्रियों के द्वारा प्रत्यक्ष किये गये विषयों के ज्ञान को ही समझा सकता है। सके अनुसार मन की सारी कियायें दिक् काल में इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त अनुभव पर आधारित हैं, अर्थात् हमारा सम्पूर्ण ज्ञान देश काल–सापेक्ष–इन्द्रिय–अनुभव तक ही सीमित है। भारतीय मनोवैज्ञानिकों ने दो प्रकार के भिन्न–भिन्न अनुभव बताये हैं। एक तो इन्द्रिय प्रत्यक्ष तााि दूसरा इन्द्रिय–निरपेक्ष–प्रत्यक्ष। पहले के नियम दूसरे पर लागू नहीं होते। एक देश काल सापेक्ष है तथा दूसरा देश–काल निरपेक्ष, जो सामान्य बुद्धि से परे होता है। चार्वाक और मीमांसकों को छोड़कर अन्य सभी भारतीय दार्शनिक इन्द्रिय–निरपेक्ष–प्रत्यक्ष को मानते हैं। पातंजल योग में ध्यान के निरन्तर अभ्यास से व्यक्ति समाधि अवस्था को प्राप्त कर लेता है। इस अभ्यास से उसे सूक्ष्म अतीन्द्रिय विषयों का प्रत्यक्ष होने लगता है। जिन सूक्ष्म विषयों का साधारण व्यक्ति प्रत्यक्ष नहीं कर सकता, उन सबि विषयों का प्रत्यक्ष योगी को होता है। उसे तो देश–काल–निरपेक्ष विषयों का भी प्रत्यक्ष होता है। दूरस्थ दृश्यों को देखना, अपने विचारों को दूसरे व्यक्ति के पास पहुॅचाना, जिन शब्दों को साधारण इन्द्रियॉ ग्रहण नहीं कर सकतीं, उनको सुनना, संकल्प के द्वारा विश्व की भौतिक घटनाओं में परिवर्तन पैदा करना, विचार मात्र से रोगी को रोग से निवृत्त करना, आदि विशेषतायें योगी को प्राप्त हो जाती हैं।

उपर्युक्त बातों से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान से कहीं अधिक विस्तृत क्षेत्र भारतीय मनोविज्ञान तथा योग मनोविज्ञान का है। पाश्चात्य मनोविज्ञान को भारतीय मनोविज्ञान के अध्ययन से अपनी कमियों की पूर्ति करके लाभ उठाना चाहिए। शांति प्रकाश आत्रेय के अनुसार भारतीय मनोविज्ञान अपने में पूर्ण है। उसके अन्तर्गत विश्व संचालक का अध्ययन भी आ जाता है, जिसकी सचमुच में अवहेलना नहीं की जा सकती। इतना होते हुए भी भारतीय मनोविज्ञान कियात्मक तथा प्रयोगात्मक है।

अभ्यास प्रश्न

अभ्यास प्रश्न 1 – मनोविज्ञान को परिभाषित कीजिए।

अभ्यास प्रश्न 2 – पाश्चात्य दृष्टिकोण में मन की अवधारणा पर प्रकाश डालें।

अभ्यास प्रश्न 3 – मनोविज्ञान के प्रमुख लक्ष्य या उद्देश्य क्या हैं?
अभ्यास प्रश्न 4 – प्रकार्यवाद में मन की अवधारणा को स्पष्ट करें।
अभ्यास प्रश्न 5 – भारतीय मनोविज्ञान एवं पाश्चात्य मनोविज्ञान में अन्तर स्पष्ट करें।

1.6 सारांश

मनोविज्ञान, प्राणी खासकर मनुष्य के व्यवहारों का क्रमबद्ध तरीके से अध्ययन कर उसकी व्याख्या प्रस्तुत करता है।अतः यह व्यवहारपरक विज्ञान भी कहलाता है। प्रारम्भ में मनोविज्ञान को आत्मा का विज्ञान के रूप में परिभाषित किया गया। बाद में इस परिभाषा की त्रुटियों की ओर संकेत करते हुए मनोविज्ञान को मन का अध्ययन करने वाले विज्ञान के रूप में परिभाषित किया गया। मनोविज्ञान का क्षेत्र अत्यंत ही विशाल और व्यापक है। यह मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के क्रिया–कलापों का अध्ययन करता है जिसके अन्तर्गत संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ, यथा – चिंतन, स्मरण, शिक्षण, कौशल अर्जन, संचार सूचनाओं का ग्रहण एवं प्रसार, सूचनाओं का संसाधन, प्रत्यक्षीकरण आदि का अध्ययन किया जाता है। साथ ही बौद्धिक क्षमताओं, प्रेरणा, संवेगात्मक भाव, अभिक्षमता, सामर्थ्य, संभावनाओं, आकांक्षा, सामाजिक अंतः क्रिया, व्यक्तित्व, समायोजी व्यवहार, मानसिक स्वास्थ्य, मनोवृत्ति, आदि अनेक मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। यह एक विज्ञान है क्योंकि एक विज्ञान की समस्त विशेषताएँ मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में पायी जाती हैं। मनोविज्ञान का मुख्य उद्देश्य वर्णन एवं व्याख्या करना, पूर्वानुमान करना एवं नियंत्रण करना होता है। पाश्चात्य मनोविज्ञान की अध्ययन की विषय वस्तु के अध्ययन मात्र से मानव मन के रहस्यों को पूर्णतः स्पष्ट नहीं किया जा सकता है इसके लिए भारतीय योग एवं दर्शन में मनोविज्ञान का अध्ययन आवश्यक है। क्योंकि यह मनुष्य के अन्तर्जगत की यात्रा का ज्ञान विज्ञान है।

1.7 शब्दावली

मनोविज्ञान (Psychology)– 'मानसिक प्रक्रियाओं एवं व्यवहार के अध्ययन का विज्ञान ही मनोविज्ञान है।

मानसिक प्रक्रियायें (Mental Processes)– चिंतन, समस्या समाधान, निर्णय, प्रत्यक्षण, विचार आदि मानसिक प्रक्रियाओं के विभिन्न उदाहरण हैं।

व्यवहार (Behavior) – सार रूप में व्यक्ति जो कहता एवं करता है वही व्यवहार कहलाता है। तकनीकी रूप में हर प्रकार की शारीरिक, ग्रंथीय एवं पेशीय क्रिया को व्यवहार कहा जाता है।

स्पष्ट व्यवहार (Overt behavior) – वे व्यवहार जो पूर्णत प्रेक्षणीय होते हैं जैसे, चलना, बातचीत करना, लड़ना आदि स्पष्ट व्यवहार कहलाते हैं।

अस्पष्ट व्यवहार (Covert Behavior) – व्यक्ति के शरीर के अन्दर होने वाली अनुक्रियायें अस्पष्ट व्यवहार की श्रेणी में आती हैं। जैसे – धड़कन का बढ़ जाना, श्वास–प्रश्वास तीव्र हो जाना, चिंताग्रस्त एवं भयग्रस्त हो जाना।

चित्त (Chitta) – चित्त त्रिगुणात्मक प्रकृति का होता है। इसका निर्माण त्रिगुणों यथा सत, रज एवं तमों गुण से होता है। यह जड़ होता है तथा चेतन सत्ता के प्रकाश से प्रकाशित होने पर ही क्रियाशील होता है।

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1– मनोविज्ञान एक समर्थक विज्ञान है जो वातावरण के साथ सर्वांगीण समायोजन से संबंधित प्राणी की अनुभूतियों और व्यवहारों का अध्ययन करता है।

उत्तर 2– पाश्चात्य दृष्टिकोण में मन को शरीर में स्थित माना गया है। परन्तु इसे शरीर से भिन्न कहा गया है। इसमें मन एवं आत्मा को समतुल्य माना गया है। तथा संवेदना एवं भावनात्मक अहसास एवं प्रतिभा को इसकी शक्तियों के रूप में समझा गया है।

उत्तर 3– व्यवहारों का वर्णन प्रस्तुत करना, व्यवहारों को समझना, व्यवहार के बारे में पूर्वानुमान लगाना अथवा भविष्यवाणी करना तथा व्यक्ति के बाहरी एवं भीतरी अवस्थाओं एवं परिस्थितियों को नियंत्रित कर व्यवहार को दिशा प्रदान करना।

उत्तर 4– विलियम जेम्स प्रकार्यवाद के प्रमुख प्रवर्तक माने जाते हैं वे टिचनर एवं वुण्ट के समान मन को स्थितज (Static) नहीं मानते हैं और न ही वे इसे समझने के लिए इसके अलग अलग खण्डों में बॉटकर अध्ययन की वकालत ही करते हैं। उनके अनुसार तो मन सतत् परिवर्तनशील चेतना प्रवाह है।

उत्तर 5– भारतीय मनोविज्ञान में मन एवं आत्मा को जड़ एवं चेतन सत्ता माना गया है। मन को त्रिगुणात्मक प्रकृति द्वारा निर्मित माना गया है जो कि चेतन सत्ता से प्रकाशित होने पर अपना क्रिया व्यापार करता है। वहीं पाश्चात्य मनोविज्ञान में मन एवं आत्मा को समतुल्य माना गया है तथा आधुनिक काल में मन के अध्ययन हेतु विभिन्न वस्तुनिष्ठ विधियों की वकालत की जा रही है। इसमें मन को स्वयं सक्रिय माना गया है।

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. रॉबर्ट ए. बैरोन (2006) साइकोलॉजी, दिल्ली – पियर्सन प्रेंटिस हाल।
2. सैमुअल वुड एवं एलेन वुड (2000) द इसेंशियल वर्ल्ड ऑफ साइकोलाजी, यू एस ए– एलिन एण्ड बेकन।
3. ब्रज कुमार मिश्र (2011) मनोविज्ञान – मानव व्यवहार का अध्ययन, नई दिल्ली – पी एच आई प्राइवेट लिमिटेड।
4. शांतिप्रकाश आत्रेय (1964) योग मनोविज्ञान –वाराणसी।
5. डॉ अरूण कुमार सिंह (2010) मनोविज्ञान के सम्प्रदाय एवं इतिहास, दिल्ली – मोतीलाल बनारसीदास।

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. मनोविज्ञान की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए पाश्चात्य दृष्टिकोण के अनुसार मनोविज्ञान को समझाइये।
2. पाश्चात्य दृष्टिकोण के अनुसार आत्मा, मन व चेतना को स्पष्ट कीजिए।

इकाई 2–मनोविज्ञान के अध्ययन की विधियॉ

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 मनोविज्ञान के अध्ययन की विधियॉ

- 2.3.1 अन्तर्निरीक्षण विधि
- 2.3.2 निरीक्षण विधि
- 2.3.3 सर्वे विधि
- 2.3.4 कालानुक्रमिक विधि
- 2.3.5 अनुप्रस्थ काट विधि
- 2.3.6 क्रास–सांस्कृतिक विधि
- 2.3.7 क्षेत्र अध्ययन विधि
- 2.3.8 सहसंबंधात्मक विधि
- 2.3.9 प्रयोगात्मक विधि
- 2.3.10 मेटा विश्लेषण

2.4 सारांश

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

2.6 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.8 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

मनोविज्ञान के अर्थ एवं अवधारणा से परिचित होने के उपरान्त मनोविज्ञान विषय में होने वाले नित नये अध्ययन हम सभी के मन मस्तिष्क में कई प्रकार की जिज्ञासाओं को जन्म देते हैं कि प्राप्त होने वाले निष्कर्ष किस भांति प्राप्त हुए, अर्थात् निष्कर्षों तक पहुॅचने में कौन सी विधि अपनायी गयी और क्यों अपनायी गयी। मनोविज्ञान बहुत विस्तृत विषय है। इस विषय का गहराई पूर्ण अध्ययन करने हेतु कोई भी एक विधि पर्याप्त नहीं हो सकती है। अतएव बहुत सी विधियों की आवश्यकता पड़ती है। ये सभी विधियॉ अलग अलग परिस्थितियों में प्रयुक्त होती हैं। इन सभी अध्ययन विधियों के बारे में विस्तृत एवं तुलनात्मक जानकारी इस इकाई की विशेषता है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- मनोविज्ञान विषय के अध्ययन की आवश्यकता के बारे में जानेंगे।
- मनोविज्ञान के अध्ययन की विभिन्न विधियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- अध्ययन की विभिन्न विधियों की उपयोग प्रक्रिया के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- अध्ययन की विभिन्न विधियों की अलग अलग परिस्थितियों में उपयोग करने के संबंध में उनका तुलनात्मक विश्लेषण कर सकेंगे।
- आत्मा, मन, चेतना एवं व्यवहार का अध्ययन करने हेतु विभिन्न्न विधियों की समालोचना कर सकेंगे।

2.3 मनोविज्ञान के अध्ययन की विधियाँ।

प्रिय पाठको मनोविज्ञान के अध्ययन की प्रमुख विधियॉ इस प्रकार है।

2.3.1 अन्तर्निरीक्षण विधि– अन्तर्निरीक्षण विधि को व्यक्ति के मनोविज्ञान के अध्ययन की प्रथम विधि के रूप में जाना जाता है। इस विधि के प्रतिपादक विलियम वुण्ट एवं उनके शिष्ट ई.बी. टिचनर कहे जाते हैं। विलियम वुण्ट मनोविज्ञान को 'फादर ऑफ साइकोलाजी' भी कहा जाता है क्योंकि विलियम वुण्ट ही वह प्रमुख अनुसंधानकर्ता हुए हैं जिन्होंने जर्मनी के शहर में सर्वप्रथम विश्व के प्रथम मनोविज्ञान प्रयोगशाला की स्थापना सन् 1979 में कर के मनोविज्ञान को विज्ञान के रूप में मान्यता दिलवायी। विलियम वुण्ट की शिक्षाओं पर चलते हुए टिचनर ने मनोविज्ञान के प्रथम संप्रदाय संरचनावाद (स्कूल ऑफ स्ट्रक्चरलिज्म) की स्थापना की। अन्तर्निरीक्षण इसी संरचनावाद के अन्तर्गत मनोविज्ञान के अध्ययन की एक प्रमुख विधि के रूप में प्रचलित हुआ। वुण्ट एवं टिचनर ने मनोविज्ञान को चेतन अनुभूतियों के विज्ञान के रूप में परिभाषित किया, तथा इसके अध्ययन हेतु अन्तर्निरीक्षण की विधि को उपयुक्त बताया। इनके अनुसार चेतन अनुभूतियॉ मुख्य रूप में तीन तत्वों को अपने आप में समाहित करती हैं। 1) संवेदन, 2) भाव एवं 3) छवि। अपने दिन प्रतिदिन के जीवन में व्यक्ति प्रतिपल–प्रतिक्षण विभिन्न प्रकार की अनुभूतियों से गुजरता है, इन अनुभूतियों में से जो अनुभूतियॉ चेतन होती हैं उनमें उपरोक्त तीनों तत्व प्रमुखता से सम्मिलित होते हैं। उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति सुबह सवेरे एक बाग में टहलने हेतु जाये एवं किसी सुगंधित पुष्प को

देखकर उसे कुछ चेतन अनुभूतियॉ हों जिसका वर्णन वह स्वयं ही इस प्रकार वर्णन करे कि –

'बाग में गुलाब के सुन्दर पुष्प को देखकर उसे बहुत ही प्रसन्नता हुई और ठीक इसी तरह के पुष्प उसके दादा जी के बाग में भी खिला करते थे।'

यह वर्णन अन्तर्निरीक्षण विधि का एक उत्तम उदाहरण है क्योंकि इसमें हम पाते हैं कि व्यक्ति ने अपने चेतन अनुभूति में तीनों तत्वों का समावेश किया है। खिले पुष्प को देखना एक दृष्टि संवेदन का उदाहरण है। गुलाब के खिले पुष्प को देखकर व्यक्ति को प्रसन्नता के भाव का अनुभव हुआ। गुलाब के फूलों को देखकर उसके मन में एक खास छवि उत्पन्न हुई, जो उसे उसके दादा जी के बगीचे की याद दिला रही थी। इस तरह से स्पष्ट है कि जब व्यक्ति अपनी चेतन अनुभूतियों का वर्णन इस प्रकार से करता है जिसमें एक खास संवेदन, भाव एवं छवि (प्रतिमा) सम्मिलित होती है तो उसे अन्तर्निरीक्षण विधि की संज्ञा दी जाती है।

अन्तर्निरीक्षण से ही मिलता जुलता एक संप्रत्यय है आत्मनिरीक्षण (सेल्फ आब्जरवेशन)। आत्मनिरीक्षण एवं अन्तर्निरीक्षण में पर्याप्त भिन्नता है अतएवं विद्यार्थियों को इससे भ्रमित नहीं होना चाहिए। अन्तर्निरीक्षण में जहॉ व्यक्ति अपनी चेतन अनुभूति के तीनों तत्वों का वर्णन करता है वहीं आत्मनिरीक्षण में व्यक्ति आन्तरिक अनुभूतियों का वर्णन न करके स्वयं से संबंधित तथ्यात्मक जानकारी का वर्णन करता है। उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति अपने सिर के बालों को देखकर कहता है कि उसके अधिकांश बालों का रंग सफेद हो गया है तो यह केवल आत्मनिरीक्षण का उदाहरण होगा। क्योंकि इस उदाहरण में व्यक्ति ने अपने बालों के रंग के संदर्भ में तथ्यात्मक जानकारी का वर्णन किया है वहीं यदि व्यक्ति यह कहता कि अपने सफेद बालों को देखकर उसे दुख अथवा प्रसन्नता हो रही है तथा सफेद बाल उसे उसके दादाजी की याद दिलाते हैं एवं ऐसे ही सफेद बाल उसके दादा जी के भी थे तो यह अन्तर्निरीक्षण विधि का उदाहरण होगा। स्पष्ट है कि आत्मनिरीक्षण को अन्तर्निरीक्षण कहलाने के लिए चेतन अनुभूतियों का सम्मिलित किया जाना एक अनिवार्य शर्त है।

2.3.2 निरीक्षण विधि– मनोविज्ञान के अध्ययन हेतु निरीक्षण विधि के प्रयोग की शुरूआत प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जे.बी. वाटसन के काल से हुई। वाटसन को मनोविज्ञान में व्यवहारवाद का जनक माना जाता है। वाटसन का मानना था कि विलियम वुण्ट एवं टिचनर की अन्तर्निरीक्षण विधि के द्वारा मानव चेतना अथवा मानव मन का अध्ययन पक्षपात रहित एवं दोष रहित तरीके से किया जाना संभव नहीं है। इसलिए जिन तत्वों (संवेदन, भाव एवं प्रतिमा) को इन मनोवैज्ञानिकों द्वारा अध्ययन की विषयवस्तु बनाया गया है इनका वास्तविक जगत में यथार्थ रूप से अवलोकन नहीं किया जा सकता है अतएव ये तत्व मनोविज्ञान के वैज्ञानिक अध्ययन की विषय वस्तु के रूप में शामिल नहीं किये जाने चाहिए। वाटसन ने इन तत्वों की जगह पर प्रेक्षणीय व्यवहार को मनोविज्ञान के अध्ययन की विषयवस्तु माना है। उनका कहना है कि केवल प्रेक्षण विधि द्वारा ही मनोविज्ञान का उचितएवं वैज्ञानिक सीमाओं के अन्तर्गत वस्तुनिष्ठ प्रकार से अध्ययन किया जा सकता है।

इस विधि में अध्ययनकर्ता व्यक्ति के व्यवहारों का निष्पक्ष भाव से निरीक्षण या अवलोकन करता है। अपने अवलोकन के आधार पर वह एक विशेष रिपोर्ट तैयार करता है जिसका

विश्लेषण कर वह उस व्यक्ति के व्यवहार के बारे में एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचता है। निरीक्षण को वस्तुनिष्ठ बनाने के लिए व्यक्ति के व्यवहारों का अवलोकन कई भिन्न परिस्थितियों में किया जाता है। कई निरीक्षणकर्ता मिलकर व्यक्ति के व्यवहारों का अवलोकन एक साथ करते हैं। इसी कारण से इसे वस्तुनिष्ठ प्रेक्षण विधि कहा जाता है। इस विधि में दो प्रकार के व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है। 1) बाह्य व्यवहार एवं 2) आन्तरिक व्यवहार। बाह्य व्यवहारों को पूर्णतः अवलोकनीय व्यवहारों जैसे कि खेलना, रोना, दौड़ना जैसे व्यवहारों तथा आन्तरिक व्यवहारों को पूर्णतः आन्तरिक परन्तु परोक्ष रूप से निरीक्षणीय, मापनीय व्यवहारों जैसे–रक्तचाप में परिवर्तन, हृदयगति में बदलाव आदि के रूप में अध्ययन किया जाता है।

परिस्थिति विशेष के आधार पर प्रेक्षण तीन प्रकार का होता है।

(अ) स्वाभाविक प्रेक्षण

स्वाभाविक परिस्थिति में किया गया प्रेक्षण स्वाभाविक प्रेक्षण कहलाता है। स्वाभाविक परिस्थिति से तात्पर्य ऐसी परिस्थिति से होता है जिसमें प्रेक्षण किये जा रहे लोगों के व्यवहारों का उनके स्वाभाविक रूप से निवास करने वाले स्थानों, कार्यस्थलों आदि में अध्ययन किया जाता है। मनोविज्ञान के क्षेत्र में इस प्रकार के अध्ययन की शुरूआत सर्वप्रथम जीवों जैसे कि बन्दरों, मधुमक्खियों, चींटियों, चूहों आदि के व्यवहार के प्रेक्षण से की गयी। प्रायः ऐसे जीवों में शोधकर्ता आक्रामकता, प्यार, सामाजिकता, संवेदनशीलता आदि का अध्ययन करते हैं। मनुष्यों में इस तरह के की अध्ययन विधि का उपयोग शिशुओं एवं बच्चों के व्यवहार के अध्ययन हेतु सर्वाधिक किया गया है।

स्वाभाविक प्रेक्षण का उदाहरण– मान लीजिए कि एक अध्ययनकर्ता विकसित देशों के नागरिकों द्वारा रेल यात्रा के दौरान दिखलाये जाने वाले व्यवहार का विकासशील देशों के नागरिकों की रेल यात्रा के दौरान किये जाने वाले व्यवहारों के बीच तुलनात्मक अध्ययन करना सुनिश्चित करता है। इसके लिए सर्वप्रथम एक विकासशील देश एवं एक विकसित देश का चयन करना होगा। यदि वह इसके लिए क्रमशः भारत एवं अमेरिका का चयन करता है तो उसे इन देशों में जाकर वहॉ की स्वाभाविक परिस्थिति में रेलयात्रा करनी होगी तथा बिना किसी यात्री को अपने अध्ययन का उद्देश्य बताये ही उसे उनके व्यवहारों का विभिन्न परिस्थितियों में अवलोकन एवं अंकन करना होगा। इसके उपरान्त ही अध्ययनकर्ता दोनों देशों के नागरिकों के रेलयात्रा के दौरान किये गये व्यवहारों का उचित रूप से तुलनात्मक विश्लेषण कर किसी खास निष्कर्ष पर पहुँच सकेगा।

(ब) सहभागी प्रेक्षण

सहभागी प्रेक्षण वैसे प्रेक्षण को कहा जाता है जिस प्रेक्षण विधि में अध्ययनकर्ता अध्ययन के दौरान अध्ययन परिस्थिति में अध्ययन किये जाने वाले व्यक्तियों के साथ सहभाग करता है। इस विधि में अध्ययनकर्ता लोगों द्वारा किये जा रहे कार्य में ठीक उन्हीं की तरह प्रतिभाग करता है तथा साथ ही गुप्त रूप से उनके व्यहारों का अध्ययन भी करता है। इस प्रेक्षण में प्रतिभागियों जिनके व्यवहार का अध्ययन किया जा रहा है उन्हें उनका प्रेक्षण किया जा रहा है इसकी जानकारी नहीं होती है। उदाहरण के लिए यदि कोई अध्ययनकर्ता कॉल सेन्टर में कार्य करने वाले कर्मचारियों के व्यवहार का अध्ययन करना चाहता है तो वह स्वयं एक काल सेन्टर कर्मी के रूप में नौकरी कर यदि अन्य कर्मचारियों के व्यवहार का अध्ययनकर्ता है तो यह सहभागी प्रेक्षण का उपयुक्त उदाहरण होगा।

सहभागी प्रेक्षण के गुण एवं दोष

– सहभागी प्रेक्षण में अध्ययनकर्ता के स्वयं सहभाग करने से वह व्यक्तियों के सूक्ष्म व्यहारों एवं संवेगों का गहराई से अध्ययन करने में समर्थ होता है। इससे व्यक्तियों के व्यवहार संबंधी गहन, विस्तृत एवं सूक्ष्म जानकारी प्राप्त होती है। यह सहभागी प्रेक्षण का एक प्रमुख गुण है।

– इस प्रेक्षण द्वारा प्रेक्षण किये जा रहे व्यक्तियों के व्यवहार एवं संवेग के बारे में स्वाभाविक एवं वास्तविक जानकारी प्राप्त होती है।

– इस प्रेक्षण का प्रमुख दोष यह है कि प्रेक्षण के दौरान प्रतिभागियों के साथ समय बिताने के कारण अध्ययनकर्ता में स्वयं ही एक मनोवैज्ञानिक प्रभाव उत्पन्न हो जाता है जिसके कारण कुछ व्यक्तियों के प्रति अध्ययनकर्ता को लगाव व कुछ के प्रति विलगाव उत्पन्न हो जाता है दूसरे शब्दों में कहें तो पसन्द एवं नापसन्द का भाव उत्पन्न हो जाता है। इससे अध्ययनकर्ता सभी प्रतिभागियों के व्यवहार एवं संवेगों का अंकन पक्षपातरहित रूप से नहीं कर पाता है। इससे अंकन वस्तुनिष्ठता में कमी आ जाती है। इस दोष की विशेषता यह है कि यह स्वाभाविक दोष होता है एवं अध्ययनकर्ता को इसका अहसास प्रायः नहीं हो पाता है।

– अध्ययनकर्ता लोगों के साथ उनके व्यवहारों में हाथ बॅटाने के कारण उनके सभी व्यहारों पर नजर नहीं रख पाता है परिणामस्वरूप कुछ व्यवहारों का वह अवलोकन नहीं कर पाता है। साथ ही अपनी पहचान गुप्त रखने के कोशिश में कई बार उससे अवलोकन में त्रुटि की संभावना बनी रहती है।

– सभी प्रकार की परिस्थितयों में सहभागी प्रेक्षण कर पाना संभव नहीं होता है। क्योंकि सभी प्रकार की परिस्थितियों में सहभाग कर पाने की योग्यता अध्ययनकर्ता में होना संभव नहीं होता है। सहभागी प्रेक्षण में अध्ययनकर्ता की आयु, उसका लिंग, जाति, धर्म, संस्कृति शिक्षा एवं मूल्यों का प्रभाव तथा परिस्थिति की जटिलतायें बाधा बन जाती हैं। उदाहरण के लिए यदि अध्ययनकर्ता फुटबाल खिलाड़ियों द्वारा खेल के दौरान किये जाने वाले व्यवहारों के अध्ययन करना चाहता है तो उसे खिलाड़ी के रूप में स्वाभाविक परिस्थिति में प्रतिभाग करना होगा। यदि अध्ययनकर्ता कॉलेज के छात्रों के समूह व्यवहार का अध्ययन करना चाहता है तो उसे कॉलेज छात्र के रूप में कॉलेज में प्रवेश प्राप्त कर उनके साथ रहना होगा। इस तरह से यह ज्ञात होता है कि अध्ययनकर्ता को सहभागी प्रेक्षण विधि अपनाने के लिए अभिनय कला का भी ज्ञान होना आवश्यक है। जो कि सभी अध्ययनकर्ताओं के लिए संभव नहीं है।

(स) असहभागी प्रेक्षण

असहभागी प्रेक्षण वैसे प्रेक्षण को कहा जाता है जिसमें अध्ययनकर्ता लोगों के व्यवहार का अध्ययन उनके साथ सहभाग न कर बल्कि दूर रहकर करता है। दूसरे शब्दों में वह व्यक्तियों के उन व्यवहारों में हाथ नहीं बॅटाता जिनका उसे प्रेक्षण करना होता है। नैदानिक, शैक्षिक, सामाजिक तथा आद्योगिक परिस्थितियों के व्यवहारों का प्रेक्षण प्रायः इस विधि से किया जाता है। उदाहरण के लिए यदि कोई अध्ययनकर्ता क्लास रूम में विद्यार्थियों द्वारा शिक्षक की उपस्थिति में किये जाने वाले व्यवहारों का अवलोकन करना चाहता है। तथा इसके लिए वह शिक्षक की अनुमति प्राप्त कर कक्षा में विद्यार्थियों के पीछे बैठकर अथवा खड़े रहकर उनका अवलोकन करता है तो यह असहभागी प्रेक्षण का उदाहरण होगा।

असहभागी प्रेक्षण के गुण एवं दोष

– असहभागी प्रेक्षण की प्रमुख गुण यह है कि इस प्रेक्षण के लिए अध्ययन कर्ता को विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती है जैसे कि अभिनय कला आदि। इस प्रकार का प्रेक्षण करना सहभागी प्रेक्षण की अपेक्षा कहीं अधिक सरल होता है। इस प्रेक्षण हेतु अध्ययनकर्ता अपने साथ कापी कलम आदि लेकर बैठ सकता है।

– असहभागी प्रेक्षण में अध्ययन किये जाने वाले व्यक्तियों के सभी व्यवहारों पर एक साथ नजर रख पाना संभव होता है क्योंकि अध्ययनकर्ता स्वयं उन व्यवहारों में शामिल नहीं होता है।

– अवलोकन किये जा रहे व्यक्तियों के साथ लगाव एवं पसंद नापसंद की स्थिति उत्पन्न नहीं होने के कारण अवलोकन इनके प्रभावों से मुक्त रहता है एवं प्रेक्षण की वस्तुनिष्ठता बरकरार रहती है।

– इस प्रेक्षण विधि का दोष यह है कि अध्ययनकर्ता प्रेक्षण किये जाने वाले व्यक्तियों के सूक्ष्म व्यवहारों एवं जटिल संवेगों का अवलोकन नहीं कर पाता है फलतः व्यवहार के पीछे के कारणों को ज्ञात कर पाना संभव नहीं हो पाता है।

2.3.3 सर्वे विधि

सर्वे विधि को सर्वेक्षण विधि भी कहा जाता है। इस विधि का प्रयोग समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा सर्वाधिक किया जाता है। आजकल इसका प्रयोग मीडिया जगत द्वारा भी राजनैतिक परिणामों जैसे कि चुनाव परिणाम अथवा लोकप्रिय नेता कौन है? जैसे उद्देश्यों के लिए भी किया जा रहा है। सर्वे विधि का प्रयोग मनोवैज्ञानिक प्रमुख रूप से मनोवृत्ति के अध्ययन हेतु करते हैं। समाज में विभिन्न मुद्दों पर लोगों की राय लेने के रूप में इस विधि की शुरूआत हुई थी। कानून व्यवस्था, आरक्षण, पठन–पाठन विधि, बच्चों का पालन–पोषण, दहेज प्रथा, धार्मिक भावनाएँ, आदि जैसे मुद्दों पर लोगों की मनोवृत्ति के विश्लेषण हेतु सर्वे विधि द्वारा ऑकड़े इकट्ठा किये जाते हैं एवं एक खास निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है।

सर्वे विधि का प्रयोग करने से पूर्व जिस समस्या अथवा विषय पर अध्ययन किया जा रहा है। उससे संबंधित जनसंख्या को परिभाषित कर लिया जाता है तथा इस जनसंख्या के एक बड़े समूह को, जिसमें उस परिभाषित जनसंख्या के समस्त गुण विशेषताएँ विद्यमान होती हैं को प्रतिनिधिक समूह मानकर प्रतिदर्श चयन कर लिया जाता है। तथा प्रतिदर्श में सम्मिलित लोगों की राय उपयुक्त विधि द्वारा संग्रहित का ली जाती है। संग्रहित जानकारी एवं ऑकड़ों का उपयुक्त विधि द्वारा विश्लेषण कर निष्कर्ष निकाला जाता है।

उदाहरण के लिए यदि कोई अध्ययनकर्ता 'बच्चों को मोबाइल की सुविधा उपलब्ध कराना' विषय पर शिक्षक, माता–पिता, राजनीतिज्ञ, समाजशास्त्री, मनोवैज्ञानिक आदि की राय जानना चाहता है तो वह इन श्रेणियों के लोगों के प्रतिनिधिक समूहों का चयन कर उनसे इस विषय पर राय लेकर ऑकड़े संग्रहित कर तदनुपरान्त विश्लेषण कर एक खास निष्कर्ष पर पहुँच सकता है।

सर्वे विधि की ऑकड़ा संग्रहण विधियॉ

सर्वे विधि में विभिन्न प्रकार के ऑकड़ों के संग्रहण की प्रमुख रूप से पॉच विधियॉ हैं।

1. साक्षात्कार सर्वे
2. मेल सर्वे
3. पैनल सर्वे
4. टेलीफोन/मोबाइल सर्वे
5. इन्टरनेट सर्वे

साक्षात्कार सर्वे विधि में किसी समस्या के बारे में ऑकड़े संग्रह करने के लिए प्रतिदर्श में सम्मिलित किये गये सभी प्रतिभागियों का एका–एक करके अध्ययनकर्ता साक्षात्कार लेता है। साक्षात्कार एक उद्देश्यपूर्ण बातचीत होती है। इसमें प्रमुख रूप से अध्ययनकर्ता प्रतिभागी से कुछ पूर्व निर्धारित प्रश्न पूछता है। इन प्रश्नों के उत्तरों को संग्रहित कर लिया जाता है। सभी व्यक्तियों द्वारा दिये गये उत्तर के आधार पर अध्ययनकर्ता एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचता है।

मेल सर्वे विधि में अध्ययनकर्ता अध्ययन विषय से संबंधित प्रश्नों की एक पुस्तिका छपवाकर उसे डाक द्वारा प्रतिभागियों के घर भेज देता है। इस पुस्तिका में प्रश्नों के उत्तर देने का तरीका एवं निर्देश छपा हुआ होता है। प्रतिभागियों प्रश्नों के उत्तर देकर इस पुस्तिका को पुनः डाक द्वारा अध्ययनकर्ता को लौटा देते हैं। इस प्रकार अध्ययन हेतु ऑकड़ों का संग्रह हो जाता है।

पैनल सर्वे विधि में व्यक्तियों के एक प्रतिनिधिक समूह जिसे कि प्रतिदर्श कहा जाता है का कई बार विभिन्न समय अन्तराल पर साक्षात्कार लिया जाता है। इस विधि की खास विशेषता यह है कि प्रतिनिधिक समूह से एक ही समस्या से संबंधित प्रश्नों के उत्तर अलग–अलग समय अन्तराल पर हूबहू पूछे जाते हैं एवं प्राप्त उत्तरों को ऑकड़ों के रूप में सम्मिलित कर लिया जाता है। इस विधि से एक अतिरिक्त लाभ यह होता है कि अध्ययनकर्ता को यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाता है कि वे कौन से कारक हैं जो समस्या के प्रति व्यक्तियों की मनोवृत्ति में अन्तर लाते हैं।

टेलीफोन/मोबाइल सर्वे विधि में अध्ययकर्ता अध्ययन में सम्मिलित किये गये व्यक्तियों द्वारा ही प्रश्नों के उत्तर टेलीफोन पर पूछ लेता है। इस विधि द्वारा सर्वाधिक शीघ्रता से ऑकड़ा संग्रहण का कार्य पूर्ण हो जाता है। परन्तु देखा गया है कि टेलीफोन पर व्यक्ति प्रश्नों का सही–सही जवाब विशेषकर वैसे प्रश्नों का जवाब जिसका सम्बंध नैतिकता से होता है, नहीं दे पाता है। वे देश जहॉ टेलीफोन अथवा मोबाइल की सुविधा बहुत कम व्यक्तियों के पास उपलब्ध है इस विधि का उपयोग नहीं हो पाता है।

इन्टरनेट सर्वे विधि में मोबाइल एवं मेल सर्वे विधि दोनों ही की विशेषताएँ सम्मिलित हैं। इन्टरनेट पर मेल के साथ ही चैट की सुविधा सहज ही उपलब्ध है। तथा इसमें प्रश्नों को छपे हुए फार्मेट में लोगों के पास भेज पाना अत्यन्त ही सहज है। इस विधि द्वारा समय एवं श्रम दोनों की ही बचत होती है। इस विधि का दोष यह है कि यह सुविधा भी सभी देशों के सभी नागरिकों के पास उपलब्ध नहीं होने के कारण प्रतिनिधिक ऑकड़ों का संग्रह इस विधि से भी पूरी तरह संभव नहीं है।

सर्वे विधि के गुण एवं दोष

इस विधि द्वारा प्राप्त परिणामों में सामान्यीकरण का गुण पाया जाता है क्योंकि चयनित प्रतिदर्श आकार में बड़े होने के कारण उन पर प्राप्त निष्कर्षो को जनसंख्या के बड़े समूह पर लागू किया जा सकता है।

इस विधि से जसे ऑकड़े संग्रह किये जाते हैं उसकी वैधता पर लोगों को शक बना रहता है। उदाहरण के लिए मेल सर्वे द्वारा प्राप्त सूचनायें सही हैं इस पर निश्चिंत होना संभव नहीं है क्योंकि हो सकता है कि प्रश्नों के जवाब उचित व्यक्ति द्वारा न दिया जा कर किसी और द्वारा दिया गया हो। ऐसा भी संभव है कि व्यक्ति कुछ ही प्रश्नों का जवाब देकर प्रश्न पुस्तिका को लौटा दें। अतः यह कहा जा सकता है कि सर्वे विधि द्वारा प्राप्त ऑकड़ों की

वैधता बहुत अधिक नहीं होती है। इसके बावजूद इसके महत्व को नकारा नहीं जा सकता है।

2.3.4 कालानुक्रमिक विधि (Longitudinal Method)

कालानुक्रमिक विधि – जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि इस विधि में समय अन्तराल का विशेष महत्व होता है। इस विधि उपयोग ऐसे चरों के अध्ययन हेतु किया जाता है जिनमें समय एवं परिस्थिति के बदलने के कारण बदलाव आने की काफी संभावना होती है। जैसे कि परिपक्वता, बुद्धि, स्मरण शक्ति, शारीरिक बदलाव, रहन–सहन आदि। जैण्डन ने इस परिभाषित करते हुए कहा है कि 'यह एक ऐसी शोध विधि है जिसमें वैज्ञानिक व्यक्तियों के एक ही समूह का अध्ययन भिन्न–भिन्न समयों पर उनके व्यवहार एवं अन्य गुणों में होने वाले परिवर्तनों के आधार पर करता है।' इस विधि में दो प्रमुख विशेषतायें हैं। 1. इसमें व्यक्तियों के एक ही समूह का अध्ययन किया जाता है। 2. अध्ययन अलग–अलग समय अन्तराल पर दोहराया जाता है। अध्ययन कितनी बार दोहराया जायेगा यह अध्ययन के उद्देश्य पर निर्भर करता है। विशेष रूप से कालानुक्रमिक विधि का प्रयोग मानव विकास का अध्ययन करने के लिए किया जाता है।

उदाहरण के लिए यदि कोई अनुसंधानकर्ता मानवीय विशेषताओं जैसे कि बुद्धि विकास, भाषा विकास, संज्ञानात्मक विकास, शारीरिक विकास आदि का अध्ययन करना चाहता है तो यह विधि काफी उपयुक्त साबित होती है।

कालानुक्रमिक विधि के गुण एवं दोष

–यह विधि व्यवहारों एवं मानसिक प्रक्रियाओं में होने वाले क्रमिक परिवर्तनों का क्रमबद्ध रूप से करने में सहायक होती है।

– इस विधि द्वारा कारण–प्रभाव संबंध की यथार्थ व्याख्या करना संभव होता है क्योंकि अध्ययन क्रमबद्ध रूप से एवं विभिन्न अवस्थाओं में किया जाता है।

– इस विधि का दोष यह है कि यह काफी खर्चीली एवं समय व्यय कराने वाली विधि है, क्योंकि यह बहुत लम्बे समय तक चलती है। इस विधि के साथ एक समस्या यह है कि लम्बे समय तक चलने वाले अध्ययन में प्रायः कुछ प्रतिभागी विभिन्न कारणों से अध्ययन में सहयोग करना बंद कर देते हैं। परिणाम स्वरूप प्राप्त परिणामों की वैधता पर प्रश्न चिह्न लग जाता है।

2.3.5 अनुप्रस्थ काट विधि (Cross-section method)

अनुप्रस्थ काट विधि कालानुक्रमिक विधि से विपरीत विधि है। इस विधि में अध्ययनकर्ता लम्बे समय तक मनोवैज्ञानिक समस्या का अध्ययन न कर समय के एक ही विभाग में विभिन्न प्रकार के अध्ययन समूहों के बीच चयनित समस्या का तुलनात्मक रूप से अध्ययन करता है। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि अध्ययनकर्ता उम्र एवं भाषा विकास के बीच विकास संबंध की जॉच करना चाहता है एवं इस हेतु वह विभिन्न उम्र समूहों के बच्चों से लेकर वयस्कों के विभिन्न उम्रसमूह तैयार करता है एवं एक ही अध्ययन वर्ष में उनके ऑकड़े एकत्र कर उनका विश्लेषण कर किसी निष्कर्ष पर पहुॅचता है तो उसे अध्ययन की अनुप्रस्थ काट विधि का उत्तम उदाहरण माना जाएगा।

दूसरे शब्दों में यदि कहें तो इस विधि में अध्ययनकर्ता भिन्न–भिन्न आयुवर्गो एवं सामाजिक–आर्थिक स्तरों से व्यक्तियों का चयन कर कई समूह निर्मित करता है जिनका अध्ययन एक ही समय में एक साथ किया जाता है। ये निर्मित समूह दस्ता समूह (cohort

group) कहलाते हैं। उदाहरण के लिए सन 2010 में जन्मे उत्तराखण्ड के सभी नागरिक एक दस्ता समूह के उदाहरण होंगे वहीं सन् 2011 में जन्मे सभी व्यक्ति दूसरे दस्ता समूह के सदस्य होंगे। इस विधि से प्राप्त परिणामों की सफलता विभिन्न उम्र समूहों से चयनित समूहों के प्रतिनिधित्व के गुण से सम्पन्न होने की सीमा से होती है। इसके लिए प्रतिभागियों का चयन यादृच्छिक विधि द्वारा उत्तम होता है।

अनुप्रस्थ–काट विधि के गुण एवं दोष

– इस विधि से मनोवैज्ञानिक विकास का अध्ययन करने में समय एवं श्रम दोनों की बचत होती है। इसके अलावा अध्ययन में सम्मिलित सभी प्रतिभागियों के दीर्घावधि सहयोग की भी जरूरत नहीं रहती है।

– इस विधि का दोष यह है कि अध्ययन करने में प्रतिभागियों के समूह में होने वाले परिवर्तन की दिशा ज्ञात नहीं हो पाती है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि अध्ययन भिन्न–भिन्न समय अंतरालों में न करके एक ही समय में कर लिया जाता है।

2.3.6 क्रास–सांस्कृतिक विधि (Cross-cultural method)

क्रास–सांस्कृतिक विधि का उपयोग समाजशास्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों द्वारा सर्वाधिक किया जाता है। यह विधि अनुप्रस्थ–काट विधि से काफी मिलती जुलती है क्योंकि अनुप्रस्थ काट विधि में विकासात्मक समस्या का अध्ययन करने के लिए विभिन्न आयुवर्ग निर्मित कर उनसे प्रतिनिधिक समूहों का चुनाव कर उनके बीच विकास प्रक्रिया की तुलना की जाती है वैसे ही क्रास–सांस्कृतिक विधि में विभिन्न सांस्कृतिक समूहों से प्रतिनिधिक समूहों का चुनाव कर उन संस्कृतियों के विकास एवं नियम आदि की तुलना की जाती है।

क्रास सांस्कृतिक विधि के कई उदाहरण उपलब्ध हैं जिनमें से यहॉ उदाहरण के रूप में प्रसिद्ध मानवशास्त्री रैडक्लिफ–ब्राउन द्वारा किए गए अध्ययन का वर्णन किया जा रहा है। इस अध्ययन की परिकल्पना यह थी कि विशेष प्रशिक्षण एवं अनुशासन जैसे मुद्दों पर माता–पिता तथा बच्चों के बीच तनाव उत्पन्न होने पर दादा–दादी तथा पोते–पोतियों के बीच संबंध मधुर हो जाते हैं। इस परिकल्पना की जॉच के लिए विभिन्न संस्कृतियों से ऑकड़े एकत्र किए गए और उनका विश्लेषण करने पर पाया गया कि माता–पिता एवं बच्चों में मतभेद होने पर केवल उन संस्कृतियों में दादा–दादी एवं उनके पोते–पोतियों में स्नेह बढ़ जाता है जिनमें पारिवारिक सत्ता दादा–दादी से संबंधित नहीं होती है और वे अनुशासन के रूप में कार्य नहीं करते हैं। जिन संस्कृतियों में दादा–दादी अनुशासन पर अधिक जोर देते हैं वहॉ उन दोनों के बीच उस ढंग का स्नेहपूर्ण एवं दोस्ताना संबंध नहीं पाया जाता है।

क्रास सांस्कृतिक विधि के गुण एवं दोष

– क्रास–सांस्कृतिक विधि में सामान्यीकरण का गुण पाया जाता है अर्थात् अध्ययन के परिणाम आसानी से संस्कृति विशेष पर लागू किया जाना आसान होता है।

– इस विधि का दोष यह है कि विभिन्न संस्कृतियों के पर्याप्त रूप से भिन्न होने पर प्राप्त ऑकड़ों की गुणवत्ता एक सी नहीं रह पाती है। ऐसे में वे अध्ययन जो कि प्रशिक्षित अनुसंधानकर्ता द्वारा संचालित किए जाते हैं उन्हें छोड़कर अन्य अध्ययनों में एकत्रित आंकड़ों की गुणवत्ता विश्वसनीय नहीं होती है।

2.3.7 क्षेत्र अध्ययन विधि (Field study method)

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक करलिंगर ने क्षेत्र अध्ययन को परिभाषित करते हुए कहा है कि 'क्षेत्र अध्ययन एक ऐसा अप्रयोगात्मक अनुसंधान है जिसका उद्देश्य वास्तविक सामाजिक संरचना में समाजशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षिक चरों में अन्तःक्रियाओं एवं उसके संबंधों की खोज करना है' ('Field studies are non-experimental scientific inquires aimed at discovering the relations and interactions among sociological, psychological and educational variables in real social structure.' - Kerlinger, 1986)।

सामान्य रूप में क्षेत्र अध्ययन विधि का मूल अर्थ उसके नाम 'क्षेत्र' में ही विद्यमान है। इस विधि में क्षेत्र से तात्पर्य अध्ययन की वास्तविक परिस्थिति से होता है। उदाहरण के लिए यदि कोई अध्ययनकर्ता स्कूल के विद्यार्थियों के उनके शिक्षक के साथ की जा रही बातचीत के पैटर्न का अध्ययन स्कूल की वास्तविक परिस्थिति में जाकर करता है तो वह क्षेत्र अध्ययन विधि का एक उपयुक्त उदाहरण होगा। इसी प्रकार इस विधि में मानव व्यवहारों का कॉलेज, फैक्टरी, ऑफिस आदि में स्वाभाविक परिस्थिति में किया जाता है। इसका मतलब यह हुआ कि मनोविज्ञान की इस विधि में व्यवहार के जिन पहलुओं के बारे में मनोवैज्ञानिक अध्ययन करते हैं, उनमें अपनी ओर से किसी तरह का जोड़–तोड़ नहीं किया जाता है बल्कि उसका हू–ब–हू ठीक उसी रूप में अध्ययन किया जाता है जिस रूप में वह घटित होता है।

क्षेत्र अध्ययन विधि के गुण एवं दोष

– इस अध्ययन विधि द्वारा प्राप्त निष्कर्ष अधिक वैध होते हैं क्योंकि अध्ययन स्वाभाविक एवं वास्तविक क्षेत्र–परिस्थिति में किया गया होता है।

–इसका दोष यह है कि अध्ययन परिस्थिति पर अध्ययनकर्ता का कोई नियंत्रण नहीं होने के कारण वह अध्ययन के दौरान उपस्थित होने वाले विघ्नों को नियंत्रित करना संभव नहीं हो पाता है, यदि अध्ययनकर्ता परिस्थिति को नियंत्रित करने की कोशिश करता है तो वह परिस्थिति अवास्तविक हो जाती है उसकी स्वाभाविकता समाप्त हो जाती है।

2.3.8 सहसंबंधात्मक शोध विधि (Correlational Method)

सह संबंधात्मक विधि मनोविज्ञान विषय के अध्ययन की एक बहुत ही प्रचलित विधि है। इस विधि में मनोविज्ञान विषय के विभिन्न चरों के बीच सहसंबंधों का अध्ययन किया जाता है। उदाहरण के लिए यदि कोई अनुसंधानकर्ता यह जानना चाहता है कि उम्र बढ़ने के साथ साथ बुद्धि एवं स्मृति में किस प्रकार की बढ़ोत्तरी एवं घटोत्तरी पायी जाती है। तो उसे उम्र के साथ बुद्धि एवं स्मृति के बीच सहसंबंधों का अध्ययन करना होगा। इस हेतु उसे सहसंबंध परिकलन की सांख्यिकी विधि का प्रयोग करना होगा। इस हेतु उसे उम्र एवं बुद्धि तथा उम्र एवं स्मृति का मापन कर ऑकड़ों के दो सेट तैयार करने होंगे। जिनके बीच सांख्यिकी का प्रयोग कर सहसंबंध परिकलित किया जायेगा। इस सहसंबंध की मात्रा एवं चिह्न के आधार पर सहसंबंध की सीमा एवं दिशा का निर्धारण संभव होगा। सहसंबंध तीन प्रकार का होता है। धनात्मक सहसंबंध, नकारात्मक सहसंबंध, एवं शून्य संहसंबंध। धनात्मक सहसंबंध वह सहसंबंध होता है जब एक चर में बढ़ोत्तरी होने पर दूसरे चर में भी बढ़ोत्तरी होती जाती है। नकारात्मक सहसंबंध वह सहसंबंध होता है जब एक चर में बढ़ोत्तरी होने पर दूसरे चर में घटोत्तरी होने लगती है। शून्य सहसंबंध में एक चर में होने वाले बदलाव से दूसरा चर स्वतंत्र होता है। सहसंबंध की सीमा -1 से +1के बीच होती है। पूर्ण धनात्मक

1 पूर्ण सकारात्मक संबंध का संकेत करता है। पूर्ण नकारात्मक 1 पूर्ण नकारात्मक संबंध का संकेत करता है। सहसंबंध की मजबूती चिह्नों पर निर्भर नहीं करती है। चिह्न केवल दिशा का संकेत करते हैं। सहसंबंध के अध्ययन द्वारा कारण–प्रभाव की व्याख्या नहीं की जा सकती है क्योंकि दो चरों के बीच बढ़ोत्तरी किसी तीसरे चर के प्रभाव स्वरूप भी हो सकती है।

2.3.9 प्रयोगात्मक विधि (Experimental Method)

प्रयोगात्मक विधि मनोविज्ञान विषय के अध्ययन की एक वैज्ञानिक विधि है। अध्ययन की इस वैज्ञानिक विधि में विज्ञान की सभी विशेषताएँ जैसे कि क्रमबद्धता, व्यवस्था, विश्लेषण, प्रेक्षण, निरीक्षण एवं नियंत्रण इसमें व्याप्त होती हैं। मनोविज्ञान का विज्ञान होने का दावा इसमें होने वाले वैज्ञानिक प्रयोगों के कारण ही मजबूत हो पाया है। आज का मनोविज्ञान इतना प्रायोगिक हो गया है कि सही अर्थों में केवल उन्हीं तथ्यों एवं सिद्धान्तों को मान्यता प्राप्त रह गयी है जिन्हें वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा साबित किया गया है। सवाल उत्पन्न होता है कि प्रयोगात्मक विधि क्या है? इसे समझने के लिए प्रयोग के स्वरूप को समझना होगा क्योंकि प्रयोगात्मक विधि का आधार प्रयोग होता है। सामान्य रूप में किसी व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रिया का किसी नियंत्रित दशा में क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित प्रेक्षण करना ही प्रयोग कहलाता है।

प्रायोगिक विधि में समस्या के निर्धारण के उरान्त परिकल्पना का निर्माण किया जाता है यह परिकल्पना दो या दो से अधिक चरों के बीच अनुमानित संबंध का कथन होता है। चर को एक ऐसे संप्रत्यय के रूप में परिभाषित किया जाता है जिस में मात्रात्मक अथवा गुणात्मक परिवर्तन संभव होता है। प्रायोगिक विधि में प्रमुख रूप से तीन प्रकार के चरों का वर्णन मिलता है। 1. स्वतंत्र चर 2. परतंत्र चर एवं 3. बाह्य चर।

स्वतंत्र चर ऐसे चरों को कहा जाता है जिनका कि प्रभाव अन्य चरों पर प्रयोग के माध्यम से देखा जाना सुनिश्चित किया जाता है। इन चरों में मात्रात्मक अथवा गुणात्मक परिवर्तन करने में प्रयोगकर्ता स्वतंत्र एवं सक्षम होता है। परतंत्र चर ऐसे चरों को कहा जाता है जिनमें कि प्रयोग की दशा में प्रयोगकर्ता स्वतंत्र चर के माध्यम से होने वाले बदलावों का अध्ययन करता है। इस प्रकार परतंत्र चर की मात्रा में परिवर्तन अथवा बदलाव होना स्वतंत्र चर के परिचालन पर निर्भर करता है। बाह्य चर उन चरों को कहा जाता है जिनका अध्ययन करने में प्रयोगकर्ता अथवा अनुसंधानकर्ता की रूचि नहीं होती है परन्तु ये चर बाह्य रूप में अध्ययन परिस्थिति को प्रभावित करते पाये जाते हैं जिनसे परतंत्र चर में स्वतंत्र चर के प्रभाव में वृद्धि अथवा कमी हो जाती है।

उदाहरण के लिए यदि कोई शोधकर्ता ध्यान के अभ्यास का प्रयोज्यों के स्मृति निष्पादन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना चाहता है तथा इसके लिए वह परिकल्पना विनिर्मित करता है कि 'ध्यान के नियमित अभ्यास से प्रयोज्यों के स्मृति निष्पादन में बढ़ोत्तरी होती है।' इस परिकल्पना में दो चर हैं, ध्यान एवं स्मृति। ध्यान स्वतंत्र चर है एवं स्मृति परतंत्र चर। ध्यान का प्रभाव प्रयोज्यों की स्मृति पर देखा जा रहा है। अब यदि प्रायोगिक दशा में अन्य चर नियंत्रित हैं अर्थात ध्यान के अलावा अन्य किसी प्रकार का बाह्य हस्तक्षेप स्मृति निष्पादन को प्रभावित नहीं कर रहा है तो प्राप्त परिणाम यह इंगित करेंगे कि प्रयोज्यों की स्मृति में आने वाले बदलाव केवल ध्यान के अभ्यास का परिणाम हैं। परन्तु यदि किसी कारण प्रयोगकर्ता बाह्य चरों के प्रभाव को नियंत्रित करने में असमर्थ रहता है तो प्राप्त परिणाम वैध नहीं कहलायेंगे। उदाहरण के लिए उपर्युक्त परिस्थिति में यदि प्रयोग की

परिस्थिति में कहीं से शोर की आवाज सुनाई पड़ने लगे तो प्रयोज्यों की स्मृति निष्पादन गंभीर रूप से प्रभावित हो सकता है। जिससे प्राप्त परिणाम शुद्ध नहीं होंगे।

प्रायोगिक अध्ययन विधि के गुण एवं दोष

1. प्रायोगिक अध्ययन विधि में प्रयोगकर्ता का अध्ययन परिस्थिति पर काफी हद तक नियंत्रण रहता है जिससे प्राप्त परिणामों की विश्वसनीयता एवं वैधता में वृद्धि होती है।
2. प्रायोगिक अध्ययन विधि में स्वतंत्र चर एवं परतंत्र चर का वैज्ञानिक ढंग से प्रयोग किये जाने के कारण तथा बाह्य चरों के प्रभाव को नियंत्रित किये जाने के कारण, कारण–प्रभाव संबंध स्थापित कर पाना अत्यंत सरल होता है।
3. प्रायोगिक अध्ययन विधि में नियंत्रण का गुण पाये जाने के कारण परिणामों की आंतरिक वैधता में वृद्धि होती है।
4. अध्ययन को दूसरे अनुसंधानकर्ता द्वारा पुनः दुहराये जाने पर पूर्व में प्राप्त परिणामों को प्राप्त करने की संभावना काफी अधिक रहती है जिससे अध्ययन विश्वसनीय माना जाता है।
5. प्रायोगिक अध्ययन विधि का प्रमुख दोष यह है कि सभी प्रकार की परिस्थियों में इसका प्रयोग कर पाना संभव नहीं हो पाता है अतएव इसकी प्रयोग सीमित रह जाता है।
6. प्रायोगिक अध्ययन विधि का दूसरा दोष यह है कि अध्ययन परिस्थिति में अत्यधिक नियंत्रण होने की दशा में प्रयोज्यों का व्यवहार स्वाभाविक नहीं रह पाता है फलतः इसकी बाह्य वैधता में कमी आ जाती है।

   इन कमियों के बावजूद प्रयोगात्मक विधि के गुण अधिक होने के कारण वैज्ञानिक अध्ययन हेतु इसका प्रयोग सर्वाधिक किया जाता है।

2.3.10 मेटा विश्लेषण

मेटा विश्लेषण मनोविज्ञान के अध्ययन की एक प्रमुख विधि है इसका प्रयोग उन परिस्थितियों में किया जाता है जबकि किसी एक विषय विशेष से संबंधित बहुत से अध्ययन पूर्व में किये जो चुके होते हैं एवं उन अध्ययनों के परिणामों में प्रत्यक्ष रूप से संगति देखने में नहीं आती है। ऐसी परिस्थिति में उचित निष्कर्ष पर पहुॅच पाना अनुसंधानकर्ता के लिए संभव नहीं होता है। इस स्थिति को दूर करने हेतु अनुसंधानकर्ता विभिन्न अनुसंधानों से प्राप्त परिणामों को एक साथ एकत्र कर पुनः व्यवस्थित करते हैं एवं उपयुक्त सांख्यिकीय विधि का इस्तेमाल कर उचित सांख्यिकीय विश्लेषण करते हैं। इस विश्लेषण के उपरांत प्राप्त परिणाम पूर्व शोधों के संबंध में एक दिशा विशेष की ओर संकेत करते हैं जिसके आधार पर निष्कर्ष प्रतिपादित किये जाते हैं।

मेटा विश्लेषण की विशेषतायें

1. मेटा विश्लेषण का प्रमुख गुण यह है कि इस विधि द्वारा पूर्व में किये गये अध्ययनों की सांख्यिकीय विश्लेषण कर परिणामों को किसी एक दिशा में झुकाव का अंदाजा लगा पाना संभव होता है, जिससे दुविधा की स्थिति समाप्त होती है।
2. मेटा विश्लेषण में नया अध्ययन करने की आवश्यकता नहीं होती है बल्कि पूर्व के अध्ययनों के ऑकड़ों का उपयोग किये जाने के कारण समय, श्रम एवं धन की बचत भी होती है।

3. मेटा विश्लेषण के लिए अध्ययनकर्ता का शोध एवं सांख्यिकी में निष्णात होना आवश्यक होता है। अन्यथा ऑकड़ो की प्रकृति ठीक प्रकार नहीं समझ पाने पर गलत परिणाम प्राप्त हो सकते हैं।

मेटा विश्लेषण का प्रयोग मनोविज्ञान, शिक्षा, पर्यटन , समाजशास्त्र आदि से संबंधित शोधो में काफी अधिक किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न–

1 – अन्तर्निरीक्षण विधि की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

2 – जे. बी. वाटसन ने मनोविज्ञान के अध्ययन हेतु कौन सी विधि को उत्तम कहा है तथा उनके अनुसार मनोविज्ञान के अध्ययन की विषय–वस्तु क्या है?

3 – सर्वे विधि की ऑकड़ा संग्रहण विधियों के नाम का उल्लेख कीजिए।

4 – कारण–प्रभाव संबंध की व्याख्या हेतु किस अध्ययन विधि का उपयोग करना चाहिए और क्यों?

5 – सहसंबंधात्मक विधि एवं प्रयोगात्मक विधि के बीच अंतर स्पष्ट करें।

2.4 सारांश

मनोविज्ञान विषय को योग के परिप्रेक्ष्य में शोध अनुसंधान की दृष्टि से समझना अत्यंत ही आवश्यक है। क्योंकि योग स्वयं में एक उच्चस्तरीय मनोविज्ञान है। मनोविज्ञान विषय की विशालता एवं इसकी गंभीरता के कारण यह बहुआयामी विज्ञान है जिसे समझने के लिए विभिन्न प्रकार की अध्ययन विधियों की आवश्यकता होती है इन अध्ययन विधियों में अंतःनिरीक्षण विधि, निरीक्षण विधि, सर्वे विधि, कालानुक्रमिक विधि, अनुप्रस्थ काट विधि, क्रास–सांस्कृतिक विधि, क्षेत्र अध्ययन विधि, सहसंबंधात्मक विधि, प्रयोगात्मक विधि, एवं मेटा विश्लेषण प्रमुख हैं।

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

अंतःनिरीक्षण विधि (Introspection)– चेतन अनुभूतियॉ मुख्य रूप में तीन तत्वों को अपने आप में समाहित करती हैं। 1) संवेदन, 2) भाव एवं 3) छवि। इनका आत्मनिष्ठ निरीक्षण ही अंतर्निरीक्षण कहलाता है।

निरीक्षण विधि (Observation method)– प्रेक्षणीय व्यवहारों के अध्ययन की विधि निरीक्षण विधि कहलाती है। यह दो प्रकार की होती है। सहभागी प्रेक्षण एवं असहभागी प्रेक्षण विधि।

सर्वे विधि (Survey)– समूह की राय जानने हेतु लोगों की राय लेकर किया गया अध्ययन सवेंक्षण अध्ययन कहलाता है।

कालानुक्रमिक विधि (Longitudinal method)– मानव विकास का दीर्घावधि में आयु के साथ होने वाले बदलावों का अध्ययन करने की विधि कालानुक्रमिक विधि कहलाती है।

अनुप्रस्थ काट विधि (Cross-sectional method)– एक समय विशेष में विभिन्न आयु समूहों के बीच मानव विकास से संबंधित तुलनात्मक अध्ययन की विधि अनुप्रस्थ काट विधि कहलाती है।

क्रास–सांस्कृतिक विधि (Cross-cultural method)– एक ही समय में विभिन्न संस्कृतियों के समूहों के बीच सांस्कृतिक विकास को लेकर किया गया अध्ययन क्रास–सांस्कृतिक विधि द्वारा किया जाता है।

क्षेत्र अध्ययन विधि (Field study)– वास्तविक क्षेत्र परिस्थिति में परिस्थितियों को बिना नियंत्रित किये प्रयुक्त की जाने वाली विधि क्षेत्र अध्ययन विधि कहलाती है।

सहसंबंधात्मक विधि (Corelational method)– दो या दो से अधिक चरों के बीच सहसंबंधों के अध्ययन की विधि सहसंबंधात्मक विधि कहलाती है।

प्रयोगात्मक विधि (Experimental method)– चरों एवं अध्ययन परिस्थिति को नियंत्रित कर कारण–प्रभाव संबंध की जॉच करने की विधि प्रयोगात्मक विधि कहलाती है।

मेटा विश्लेषण (Meta analysis)– पूर्व में हुए शोध के ऑकड़ो को एक साथ व्यवस्थित कर उनके सांख्यिकीय विश्लेषण द्वारा निष्कर्ष पर पहुॅचने की विधि मेटा विश्लेषण कहलाती है।

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1– इस विधि के प्रतिपादक विलियम वुण्ट एवं उनके शिष्ट ई.बी. टिचनर कहे जाते हैं। विलियम वुण्ट की शिक्षाओं पर चलते हुए टिचनर ने मनोविज्ञान के प्रथम संप्रदाय संरचनावाद (स्कूल ऑफ स्ट्रक्चरलिज्म) की स्थापना की। अन्तर्निरीक्षण इसी संरचनावाद के अन्तर्गत मनोविज्ञान के अध्ययन की एक प्रमुख विधि के रूप में प्रचलित हुआ। वुण्ट एवं टिचनर ने मनोविज्ञान को चेतन अनुभूतियों के विज्ञान के रूप में परिभाषित किया, तथा इसके अध्ययन हेतु अन्तर्निरीक्षण की विधि को उपयुक्त बताया। इनके अनुसार चेतन अनुभूतियॉ मुख्य रूप में तीन तत्वों को अपने आप में समाहित करती हैं। 1) संवेदन, 2) भाव एवं 3) छवि। अपने दिन प्रतिदिन के जीवन में व्यक्ति प्रतिपल–प्रतिक्षण विभिन्न प्रकार की अनुभूतियों से गुजरता है, इन अनुभूतियों में से जो अनुभूतियॉ चेतन होती हैं उनमें उपरोक्त तीनों तत्व प्रमुखता से सम्मिलित होते हैं।

उत्तर 2– वाटसन ने मनोविज्ञान के अध्ययन हेतु निरीक्षण विधि को उत्तम माना है। उनके अनुसार वे तत्व जिनका निरीक्षण किया जा सकता है केवल वे ही मनोविज्ञान के अध्ययन की विषय–वस्तु होने के योग्य है। उनका कहना है कि केवल प्रेक्षण विधि द्वारा ही मनोविज्ञान का उचित एवं वैज्ञानिक सीमाओं के अन्तर्गत वस्तुनिष्ठ प्रकार से अध्ययन किया जा सकता है।

इस विधि में अध्ययन कर्ता व्यक्ति के व्यवहारों का निष्पक्ष भाव से निरीक्षण या अवलोकन करता है। अपने अवलोकन के आधार पर वह एक विशेष रिपोर्ट तैयार करता है जिसका विश्लेषण कर वह उस व्यक्ति के व्यवहार के बारे में एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुॅचता है।

उत्तर 3 – सर्वे विधि में विभिन्न प्रकार के ऑकड़ों के संग्रहण की प्रमुख रूप से पॉच विधियॉ हैं।

1. साक्षात्कार सर्वे
2. मेल सर्वे
3. पैनल सर्वे
4. टेलीफोन/मोबाइल सर्वे
5. इन्टरनेट सर्वे

उत्तर 4– कारण प्रभाव संबंध की व्याख्या हेतु प्रायोगिक अध्ययन विधि का उपयोग करना उपयुक्त रहता है क्योंकि इस विधि में बाह्य परिस्थियों पर बाह्य चरों पर नियंत्रण के माध्यम से नियंत्रण किया जाता है जिससे स्वतंत्र चर एवं आश्रित चर के बीच अन्य किसी प्रभाव की संभावना समाप्त हो जाती है। स्वतंत्र चर एवं अध्ययन परिस्थिति पर अनुसंधानकर्ता का पूर्ण नियंत्रण होता है।

उत्तर 5– प्रयोगात्मक विधि में स्वतंत्र चर का प्रभाव परतंत्र चर पर देखा जाता है। स्वतंत्र चर एवं अध्ययन परिस्थिति प्रयोगकर्ता के नियंत्रण में होती है। प्रयोगकर्ता बाह्य चरों को नियंत्रित कर परतंत्र चर पर केवल स्वतंत्र चर का प्रभाव पड़ना सुनिश्चित करता है। इससे कारण–प्रभाव संबंध स्थापित करना संभव होता है। सहसंबंधात्मक विधि का प्रयोग उन प्रश्नों के उत्तर पाने हेतु किया जाता है जहॉ अध्ययनकर्ता केवल दो या दो से अधिक चरों के बीच संबंधों की सीमा एवं दिशा जानने में रूचि रखता है। यहॉ अध्ययनकर्ता का उद्देश्य एक चर में होने वाले बदलावों के साथ दूसरे चर में होने वाले बदलावों के बीच संगति एवं संगति की मात्रा को देखना होता है। इसमें कारण प्रभाव संबंध स्थापित नहीं किया जाता है।

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

अरूण कुमार सिंह (2010) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, दिल्ली– मोतीलाल बनारसीदास।

डॉ महेन्द्र कुमार मिश्रा (2007) विकासात्मक मनोविज्ञान, जयपुर – यूनीवर्सिटी बुक हाउस।

रॉबर्ट ए. बैरोन (2006) साइकोलॉजी, दिल्ली – पियर्सन प्रेंटिस हाल।

सैमुअल वुड एवं एलेन वुड (2000) द इसेंशियल वर्ल्ड ऑफ साइकोलाजी, यू एस ए– एलिन एण्ड बेकन।

2.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. निरीक्षण विधि से आप क्या समझते है। निरीक्षण विधि का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।
2. कालानुक्रमिक विधि तथा अनुप्रस्थ काट विधि का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।

इकाई 3 – मनोविज्ञान के प्रमुख सम्प्रदाय व्यवहारवाद, गेस्टाल्टवाद, मनोविश्लेषणवाद

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 स्कूल/सम्प्रदाय का अर्थ एवं प्रकार
3.4 व्यवहारवाद
3.5 गेस्टाल्टवाद
3.5.1 गेस्टाल्टवाद – एक सम्प्रदाय के रूप मे
3.6 मनोविश्लेषणवाद
3.7 सारांश
3.8 पारिभाषिक शब्दावली
3.9 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.11 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

मनोविज्ञान विषय के सामान्य अर्थ से तो हम सभी प्रायः कमोबेश परिचित हैं। परिभाषा के संदर्भ में सामान्य रूप में 'मानसिक प्रक्रियाओं एवं व्यवहार' के वैज्ञानिक अध्ययन को मनोविज्ञान कहा जाता है। परन्तु इन मानसिक प्रक्रियाओं एवं व्यवहार की व्याख्या का कोई एक सर्वमान्य स्रोत सिद्धान्त अपने पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं हो पाया है। अतएव एक ही प्रकार की मानसिक प्रक्रिया की अनेक परिभाषाएँ देखने में आती हैं तथा इन प्रक्रियाओं की विभिन्न विद्वान अनेक प्रकार से व्याख्या भी करते हैं। इसी प्रकार मनोविज्ञान की विषय–वस्तु एवं अध्ययन विधि के संदर्भ में भी अनेक प्रकार के मत मिलते हैं। वे मनोवैज्ञानिक जिनकी मनोविज्ञान की विषय–वस्तु एवं अध्ययन विधि के संदर्भ में एक समान विचारधारा होती है वे एक समूह में शामिल हो जाते हैं। इन समूहों को मनोविज्ञान के विभिन्न सम्प्रदाय अथवा स्कूल कहा जाता है। वस्तुतः मनोविज्ञान विषय पर क्रमबद्ध रूप से बहुत से मनोवैज्ञानिकों द्वारा अनुसंधान किये जाने के कारण समय के साथ–साथ इसके स्कूलों की संख्या भी बढ़ती रही है। इन संप्रदायों में से व्यवहारवाद, गेस्टाल्टवाद एवं मनोविश्लेषणवाद काफी महत्वपूर्ण एवं चर्चित संप्रदाय रहे हैं। इनसे संबंधित सभी जिज्ञासाओं का परिचय इस इकाई की विशेषता है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- सम्प्रदाय एवं स्कूल के अर्थ का परिचय प्राप्त करेंगे।
- मनोविज्ञान के संप्रदाय के विभिन्न प्रकारों के बारे में जानेंगे।
- विभिन्न स्कूलों के विशिष्ट सिद्धान्तों, तथ्यों तथा व्याख्याओं को समझ सकेंगे।

- व्यवहारवाद, गेस्टाल्टवाद एवं मनोविश्लेषणवाद की तुलनात्मक व्याख्या कर सकेंगे।

3.3 स्कूल/सम्प्रदाय का अर्थ एवं प्रकार

मनोविज्ञान विषय के अवतरण पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट होता है कि यह विषय अत्यंत ही प्राचीन काल से प्रकाश में आ गया था, तथा अरस्तू एवं प्लेटो जैसे दार्शनिकों के काल से ही यह दर्शन के अन्तर्गत समाहित था। या यूँ कहा जा सकता है कि इसका अध्ययन दर्शन विषय के एक प्रमुख अंग के रूप में किया जाता रहा।

मनोविज्ञान विषय की विषय–वस्तु एवं अध्ययन विधि के संदर्भ में 1879 के उपरान्त तथा बीसवीं शताब्दी की शुरूआत में बहुत से मनोवैज्ञानिकों ने अपने विचार व्यक्त किये। ये विचार करीब–करीब समान थे। समान विचारों वाले लोगों के समूह की एक विशेष पहचान बनती गयी। इसी प्रकार अन्य दूसरे मनोवैज्ञानिकों के भी समूहों का आविर्भाव होता रहा, तथा ये समूह ये दूसरे समूह के मनोविज्ञान के संदर्भ में व्यक्त किये गये विचारों में कमियॉ गिनाते हुए विरोध भी जताते रहे। परिणामस्वरूप कई विशिष्ट प्रकार की दृष्टि रखने वाले समूह प्रकाश में आये। इन समूहों को स्कूल (School) एवं संप्रदाय (System)की संज्ञा दी गई। मैक्यूक ने 1933 में प्रकाशित अपने एक लेख में मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय को परिभाषित करते हुए लिखा है कि 'विषय के विशिष्ट सिद्धान्तों एवं तथ्यों का एक संगत एवं अन्तर्वेशित किन्तु साथ ही लचीला संगठन एवं व्याख्या का तात्पर्य ही मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय होता है।' इस परिभाषा से स्पष्ट होता है कि सम्प्रदाय में वैसे ही विद्वान सम्मिलित होते हैं जो एक संगत एवं क्रमबद्ध उन्मुखतता विकसित कर लेते हैं और सभी प्रकार की मनोवैज्ञानिक घटनाओं की व्याख्या उसी दृष्टिकोण या उन्मुखता के अनुसार करते हैं। इन्हीं मनोवैज्ञानिकों के समूह को स्कूल कहा जाता है। कुछ विद्वान स्कूल एवं सम्प्रदाय को करीब करीब समान बताते हुए दोनों पदों में कुछ विशिष्ट अन्तर संबंधी व्याख्या करते हैं। उनके अनुसार जब किसी मनावैज्ञानिक घटना की व्याख्या करते समय सम्बंधित मनोवैज्ञानिक अथवा मनोवैज्ञानिकों पर अधिक बल दिया जाता है तो इसे स्कूल कहा जाता है। किन्तु इस प्रकार की व्याख्या में जब मनोवैज्ञानिकों के विचारों एवं घटना संबंधी विश्लेषण पर अधिक बल दिया जाता है तो इसे सम्प्रदाय कहा जाता है। इन संप्रदायों में अब तक कई सामान्य एवं विशिष्ट संप्रदाय आविर्भूत हो चुके हैं। ये निम्न हैं–

सम्प्रदाय/स्कूल एवं प्रमुख विचारक	विवरण (Description)
संरचनावाद (Structuralism) ई. बी. टिकनर	मनोविज्ञान का पहला औपचारिक स्कूल। यह आत्मकेंद्रण विधि द्वारा सचेतन मानसिक अनुभवों के मूल तत्वों या संरचना के विश्लेषण पर केंद्रित था।
प्रकार्यवाद (Functionalism) विलियम जेम्स	यह मनोविज्ञान का प्रथम अमेरिकी स्कूल था। यह मुख्य रूप से मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन एवं वातावरण के साथ व्यक्ति के समायोजन में इनकी भूमिका से संबंधित था। इसके दायरे में

	अध्ययन की विषय–वस्तु के रूप में मानसिक प्रक्रियाओं के साथ–साथ व्यवहार को भी शामिल किया गया था। इसके साथ ही बच्चों, मानसिक विक्षिप्त एवं पशुओं को भी अध्ययन का विषय बनाया गया।
गेस्टाल्टवाद (Gestalt psychology) मैक्स वरदाइमर, कोफ्का एवं कोहलर	गेस्टाल्टवाद का जोर इस बात पर है कि व्यक्ति वस्तुओं एवं पैटर्न को समग्रता में प्रत्यक्ष करता है। और यह प्रत्यक्षित समग्र विभागों के समुच्चय से कहीं अधिक व्यापक एवं गहरा अर्थ रखता है इसे संरचनावाद के अंतर्निरीक्षण विधि द्वारा नहीं समझा जा सकता है।
व्यवहारवाद (Behavirousim) जॉन वाटसन एव ंबी. एफ. स्कीनर	इसके अन्तर्गत उसे प्रेक्षणीय, मापनीय व्यवहार को मनोविज्ञान के अध्ययन की विषय–वस्तु माना जाता है न कि आन्तरिक मानसिक प्रक्रियाओं को। मान्यता है कि अधिगम के द्वारा तथा वातावरण के प्रभाव से मानवीय व्यवहार का निर्धारण होता है।
मनोविश्लेषणवाद (Psychoanalysis) सिगमण्ड फ्रायड	यह व्यवहार का निर्धारण में अचेतन मानसिक बलों एवं संघर्ष की भूमिका को महत्व देता है
मानवतावादी मनोविज्ञान (Humanistic psychology) अब्राहम मैस्लो, एवं कार्ल रोजर्स	यह मनुष्य की अद्वितीयता को महत्वपूर्ण मानता है तथा यह पूर्वकल्पना करता है कि मानव में चुनने, पसन्द करने, विकास करने एवं मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य की क्षमता होती है। इसे व्यवहारवाद एवं मनोविश्लेषणवाद के उपरान्त मनोविज्ञान के तृतीय बल के रूप में मान्यता प्राप्त है।
संज्ञानात्मक मनोविज्ञान (Cognitive psychology)	संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का संबंध स्मृति, समस्या–समाधान, तर्कणा, निर्णय, भाषा एवं प्रत्यक्षण आदि की मानसिक प्रक्रियाओं से होता है। यह सूचना–संसाधन उपागम का उपयोग करता है।

3.4 व्यवहारवाद–

मनोविज्ञान में व्यवहारवाद की स्थापना जे. बी. वाटसन द्वारा 1913 में की गयी है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक संप्रदायों के इतिहास में व्यवहारवाद एक अत्यंत प्रभावशाली सम्प्रदाय के रूप में प्रकट हुआ। व्यवहारवाद के उद्भव के पीछे कई पूर्ववर्ती कारण रहे हैं जिनमें वस्तुनिष्ठता पर जोर, पशु मनोविज्ञान का अध्ययन, अरस्तू का दर्शन, पैवलॉव का अनुबंधित प्रतिवर्त एवं प्रकार्यवाद को प्रमुख माना जाता है।

अरस्तू ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'डी. एनीमा' में शरीर तथा उसके कार्यों जैसे कि गति, पाचन क्रिया, संवेदन तथा तर्कणा आदि पर गंभीर प्रकाश डाला था तथा यह कहा था कि ये सभी कार्य शरीर की क्रियायें हैं तथा शरीर से किसी भी अर्थ में भिन्न नहीं हैं। इस अर्थ में अरस्तू को पहला व्यवहारवादी माना जा सकता है जिसने मनोविज्ञान में वस्तुनिष्ठता तथा निरीक्षणीय घटनाओं एवं व्यवहार के अध्ययन को प्रोत्साहित किया। वाटसन अरस्तू से काफी प्रभावित थे अतएवं उनकी विचारधारा में अरस्तू का प्रभाव स्पष्ट है। पैवलव द्वारा प्रतिपादित अनुबंधन प्रविधि का भी वाटसन के व्यवहारवाद के उद्भव में काफी महत्वपूर्ण

प्रभाव पड़ा। इनमें दो प्रभाव विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पहला, अनुबंधन प्रयोग , व्यवहार के विकास एवं परिमार्जन हेतु एक वस्तुनिष्ठ तथा वैज्ञानिक पद्धति के रूप में उभरना। दूसरा वाटसन द्वारा सीखने की व्याख्या हेतु पैवलव द्वारा प्रतिपादित प्रयोगात्मक रूपावली (experimental paradigm) को व्यवहारवाद में स्थान देना। इसके अलावा वाटसन पर उनके शोध निर्देशक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक एंजिल के प्रकार्यवाद का भी काफी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। इस प्रभाव के दो लक्षण थे। पहला, वस्तुनिष्ठता पर अधिक जोर देना तथा मानसिक प्रक्रियाओं एवं चेतन अनुभूतियों को मनोविज्ञान की विषय–वस्तु के रूप में स्वीकार नहीं करना। दूसरा, प्रकार्यवाद की सफलता से प्रभावित होकर व्यवहारवाद द्वारा पशुओं, बच्चों तथा असामान्य व्यक्तियों के अध्ययन में रूचि दिखलाना।

स्पष्ट है कि व्यवहारवाद की स्थापना अचानक से नही हुई बल्कि इसकी स्थापना में कई महत्वपूर्ण कारकों का योगदान रहा है।

प्रमुख व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक – व्यवहारवाद के प्रचार, प्रसार एवं विकास में जिन मनोवैज्ञानिकों का महत्वूपर्ण योगदान रहा है उनके नाम निम्नांकित हैं।

1. जे.बी. वाटसन – 1878 से 1958
2. वाल्टर एस. हन्टर – 1889 से 1953
3. इडविन वी. हॉल्ट – 1873 से 1946
4. कार्ल लैशले – 1890 से 1958
5. इडविन आर. गथरी – 1886 से 1959
6. क्लार्क एल. हल – 1885 से 1952
7. बी. एफ. स्कीनर – 1904 से 1989
8. ई. सी. टॉलमैन – 1886 से 1959
9. जे. आर. कैन्टोर – 1888 से 1984
10. अलवर्ट वैण्डूरा – 1925–

व्यवहारवाद की स्थापना संरचनावाद एवं प्रकार्यवाद के विरोध रूप में हुई। मनोविज्ञान का यह स्कूल काफी प्रबल रहा और अपनी इस प्रबलता के कारण ही इसे मनोविज्ञान मे द्वितीय बल के रूप में भी जाना जाता है। प्रथम बल के रूप में मनोविश्लेषण को मान्यता प्राप्त है।

वाटसन के व्यवहारवाद के दो उपसम्प्रदाय है – प्राथमिक (primary) तथा द्वितीयक (secondary)। वाटसन के प्राथमिक व्यवहारवाद के दो मुख्य पहलू हैं–धनात्मक पहलू तथा नकारात्मक पहलू। वाटसन के धनात्मक पहलू में वस्तुनिष्ठता पर बल डाला गया है। वे पशु मनोविज्ञान की प्रविधियों एवं नियमों को मानव मनोविज्ञान पर लागू करना चाहते थे। उनके लिए व्ययवहारवाद का अध्ययन न कि चेतना का अध्ययन मनोवैज्ञानिकों के लिए वैज्ञानिक ऑकड़े के मुख्य स्रोत हैं। व्यवहारवाद के इस पहलू को आनुभाविक व्यवहारवाद (empirical behaviourism) या कार्य–विधि व्यवहारवाद (methodological behaviourism) कहा गया। वाटसन के व्यवहारवाद का नकारात्मक पहलू टिचेनर तथा वुण्ट के अन्तर्निरीक्षणात्मक मनोविज्ञान तथा एंजिल के प्रकार्यवाद को अस्वीकृत किया जाना था। उन्होंने टिचेनर के अन्तर्निरीक्षणात्मक ऑकड़ों को अस्वीकृत कर दिया तथा एंजिल के प्रकार्यवाद का भी विरोध किया क्योंकि प्रकार्यवाद द्वारा अन्तर्निरीक्षणात्मक ऑकड़ों को स्वीकार किया गया था। 1919 में वाटसन ने मानव की अतीन्द्रिय दशा पर बल डाला परन्तु

इसमें उन्होंने चेतना एवं मन के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया। इसी कारण से वाटसन के मनोविज्ञान को 'मन–रहित मनोविज्ञान' (mindless psychology) कहा गया है।

व्यवहारवाद में मनोविज्ञान की परिभाषा

वाटसन के अनुसार मनोविज्ञान प्राकृतिक विज्ञान की एक शाखा है जो मानव व्यवहार का अध्ययन करता है। 'व्यवहार' को यहॉ विस्तृत अर्थ में लिया गया है, जिसमें शाब्दिक अभिव्यक्ति भी सम्मिलित है। अतः व्यक्ति द्वारा कुछ कहना और बोलने को भी व्यवहार में ही सम्मिलित किया गया है। इसमें मनोविज्ञान की विषय वस्तु के रूप में चेतना एवं मानसिक प्रक्रियाओं तथा मनोदैहिक प्रक्रियाओं को भी स्वीकार नहीं किया गया है। अगर हम वाटसन के व्यवहारवाद पर ध्यान दें तो यह स्पष्ट होगा कि वाटसन का सम्प्रदाय उद्दीपक–अनुक्रिया मनोविज्ञान (stimulus-response psychology) है। उद्दीपक सरल या जटिल कुछ भी हो सकता है। जटिल उद्दीपक द्वारा एक ऐसी उद्दीपक परिस्थिति का निरूपण होता है जिसे लघु इकाइयों में विश्लेषित किया जा सके। अनुक्रिया से तात्पर्य उन सभी क्रियाओं से है जिसे प्राणी करता है। अनुक्रिया अर्जित भी हो सकती है एवं अनार्जित भी तथा स्पष्ट(overt) भी हो सकती है एवं छिपी (covert) हुई भी। बातचीत करना, टहलना, दौड़ना तथा खेलना अर्जित स्पष्ट अनुक्रिया (learned overt response) के उदाहरण हैं। चिन्तन तथा प्रत्यक्षण अस्पष्ट अर्जित अनुक्रिया (covert unlearned response) के उदाहरण हैं। सभी स्वाभाविक प्रतिवर्त (reflexes) जैसे – ऑख झपकाना, रोना, सांस लेना आदि स्पष्ट अनार्जित अनुक्रिया के उदाहरण हैं। रक्तचाप, पाचन क्रिया, हृदय की धड़कन, अस्पष्ट अनार्जित अनुक्रिया के उदाहरण हैं। वाटसन के व्यवहारवाद के दो विशिष्ट उद्देश्य हैं– उद्दीपक के बारे में जानकर अनुक्रिया के बारे में पूर्वकथन करना तथा अनुक्रिया के बारे में जानकर उद्दीपक के बारे में पूर्वकथन करना (prediction)।

व्यवहारवाद में अध्ययन की विधियॉ

वाटसन ने प्रकार्यवाद एवं संरचनावाद द्वारा खोजी गयी मनोविज्ञान के अध्ययन कि अन्तर्निरीक्षण विधि को मनोविज्ञान के अध्ययन के लिए उपयुक्त नहीं माना है। उनके अनुसार यह विधि आत्मनिष्ठता पर जोर देती है जिसे कि वैज्ञानिक नहीं माना जा सकता है। इसके स्थान पर उन्होंने वस्तुनिष्ठता पर जोर दिया है। वाटसन द्वारा मनोविज्ञान के अध्ययन हेतु चार विधियों को उपयुक्त माना गया है–

1. प्रयोग एवं प्रेक्षण
2. अनुबंधित प्रतिवर्त प्रविधि (conditioned-reflex technique)
3. मनोवैज्ञानिक मापनी/परीक्षण का उपयोग
4. शाब्दिक रिपोर्ट विधि (method of verbal report)।

स्पष्ट है कि व्यवहारवादियों ने मनोविज्ञान की विषय–वस्तु के संबंध में स्पष्ट रूप से कहा है कि चूँकि मनोविज्ञान विशुद्ध रूप से प्राकृतिक विज्ञान की एक शाखा के रूप में प्रायोगिक विज्ञान है, अतः चेतन अनुभूतियों का अध्ययन किसी भी स्थिति में वस्तुपरक एवं वैज्ञानिक अध्ययन परिधि के अंतर्गत नहीं आ सकता। अतएव, व्यवहार का अध्ययन मनोविज्ञान की मुख्य विषय–वस्तु है क्योंकि व्यवहार, तथा घटनाओं का वस्तुपरक निरीक्षण किया जा सकता है। व्यवहारवादियों ने इस विषय–वस्तु के अध्ययन हेतु वस्तुनिष्ठ निरीक्षण विधि के

उपयोग करने पर जोर दिया है जो कि वस्तुपरक अध्ययनों की एक प्रमुख विशेषता होती है।

व्यवहारवादी दृष्टिकोण की तीन मुख्य विशेषताएँ

व्यवहारवादी नजरियों को तीन मुख्य विशेषताओं के आलोक में बेहतर ढंग से समझा जा सकता है।

प्रथम विशेषता – प्रथमतः व्यवहारवादियों ने व्यवहार की संरचनात्मक इकाइयों के रूप में अनुबंधनात्मक प्रतिवर्त प्रतिक्रियाओं को माना है जिसका विश्लेषण अनुबंधात्मक विधि द्वारा किया जा सकता है। जहॉ तक जटिल व्यवहारों की संरचना का प्रश्न है, इस प्रकार की संरचना का निर्माण प्रारंभिक प्रकार की अनुबंधात्मक प्रतिवर्त्तों द्वारा होती है। व्यवहार की दोनों संरचनात्मक इकाइयों क आलोक में व्यवहारवाद और संरचनावाद के विचारों में समानता देखने को मिलती है क्योंकि दोनों में व्यवहार के संरचनात्मक तत्वों की चर्चा की गयी है। अंतर केवल इतना ही है कि व्यवहारवादी व्यवहार के संरचनात्मक तत्वों में अनुबंधनात्मक प्रतिवर्त्त प्रतिक्रियाओं को मानते हैं जबकि संरचनावादी सांवेदनिक अनुभूतियों को संरचनात्मक इकाई के रूप में मानते हैं।

द्वितीय विशेषता– व्यवहारवादियों ने अर्जित व्यहारों की चर्चा की है। उनकी दृष्टि में मूलप्रवृत्तियों की कोई खास अहमियत नहीं हैं यह बात स्वयं 'वाटसन' के एक कथन से स्पष्ट हो जाती है। वाटसन ने एक अवसर पर यह घोषणा की है कि 'पर्याप्त अनुकूल वातावरण एवं प्रशिक्षण द्वारा वे किसी भी बच्चे को भिखारी, चोर, डकैत या वकील, वैज्ञानिक, डॉक्टर आदि जो भी चाहें बना सकते हैं। व्यवहारवादी दृष्टिकोण में पायी जाने वाली इस विशेषता क संदर्भ में वाटसन को पर्यावरणवादी मनोवैज्ञानिक भी कहा जाता है। उनके अनुसार मानव के व्यवहार का निर्धारण वातावरण द्वारा संभव होता है। स्वयं वाटसन ने अपने दृष्टिकोण में पर्यावरणीय नैतिकता का वर्णन किया है जिसके अन्तर्गत पुनर्वास एवं पुनर्शिक्षण की व्यवस्था द्वारा सामाजिक व्यवस्था में आवश्यक सुधार लाना संभव है।

तृतीय विशेषता – इसकी तीसरी विशेषता पशुओं पर किये गये अध्ययन से संबंधित है। व्यवहारवादियों की दृष्टि में मनुष्य और पशुओं में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है। अतएव पशुओं का अध्ययन कर मनुष्यों की मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं एवं व्यवहार घटनाओं के मारे में सम्यक् जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इसका प्रभाव यह हुआ कि मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में पशुओं पर अध्ययन की परंपरा प्रारंभ हुई जो आज भी जारी है। सीखना, चिंतन, प्रत्यक्षीकरण एवं अन्यान्य मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं पर अधिकतर प्रयोगात्मक अध्ययन पशुओं पर ही किए गए हैं तथा अनेक सिद्धान्तों का भी प्रतिपादन हुआ है जो मानवीय मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं की व्याख्या करने में सक्षम सिद्ध हुए हैं।

व्यवहारवाद वस्तुतः उत्तेजना अनुक्रिया व्यापार है जिसमें चेतन अनुभूतियों का कोई महत्व नहीं है। लेकिन मनुष्य की चेतन अनुभूतियॉ भी काफी महत्व रखती हैं क्योंकि चेतन अनुभूतियॉ उत्तेजना और निरीक्षण योग्य अनुक्रियाएँ केंद्रीय मध्यवर्ती चर के रूप में कार्य करती हैं इस कमी के आधार पर व्यवहारवादी विचारों की कटु आलोचना की जाती है। इसके बावजूद व्यवहारवाद का प्रभाव व्यापक रूप में अनुभव किया जाता है।

3.5 गेस्टाल्टवाद

गेस्टाल्टवाद का उदय व्यवहारवाद की स्थापना के साथ ही समानान्तर रूप से हुआ। वर्ष 1912 में वाटसन द्वारा कोलम्बिया यूनीवर्सिटी में दिये गये व्याख्यान के परिणाम के रूप में

वर्ष 1913 में व्यवहारवाद की स्थापना हुई उसी वर्ष मैक्स वर्दाइमर ने आभासी गति पर किये गये कई प्रयोगों का एक संयुक्त विश्लेषण प्रस्तुत किया। ये प्रयोग वूल्फगैंग कोहलर तथा कोफ्का के सहयोग से किया गया था। इन्हीं सब प्रयोगों के आधार पर मैक्स वर्दाइमर द्वारा जिस सम्प्रदाय की स्थापना की गयी, उसे गेस्टाल्ट मनोविज्ञान कहा गया, जो मनोविज्ञान का एक महत्वपूर्ण स्कूल सिद्ध हुआ। कोहलर एवं कोफ्का को इस स्कूल का सहसंस्थापक माना गया। गेस्टाल्ट एक जर्मन शब्द है जिसका अर्थ संगठित आकृति (configuration) या आकार (figure, shape) होता है। इस स्कूल का शुरूआत में प्रत्यक्षण के अध्ययन पर काफी जोर रहा। इस स्कूल की मुख्य अवधारणा यह थी कि समग्रता का प्रत्यक्षण उसके अंशों के प्रत्यक्षण का योग नहीं होता है। बल्कि यह उससे भी गहरा अर्थ रखता है। बाद में गेस्टाल्ट मनोविज्ञान ने अपना कार्य–क्षेत्र सीखना, चिन्तन तथा स्मृति को भी बनाया। परिणामस्वरूप 1930 के दशक तक गेस्टाल्ट मनोविज्ञान ने अपने आप को मनोविज्ञान के एक सम्प्रदाय के रूप में पूर्णतः स्थापित कर लिया। गेस्टाल्ट मनोविज्ञान के सम्प्रदाय के विकास में कई मनोवैज्ञानिकों ने महत्वपूर्ण योगदान किया है उनके नाम निम्नांकित हैं–

1. मैक्स वर्दाइमर – 1880 से 1943
2. वुल्फगैंग कोहलर – 1887 से 1967
3. कर्ट कौफ्का – 1887 से 1941
4. कर्ट लेविन

3.5.1 गेस्टाल्टवाद – एक सम्प्रदाय के रूप में

गेस्टाल्ट सम्प्रदाय को एक सिस्टम के रूप में निम्न भागों में बॉटकर अध्ययन किया जा सकता है।

(1)गेस्टाल्टवाद की दृष्टि में मनोविज्ञान की परिभाषा एवं विषय–वस्तु–

शुरूआती गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों जैसे – कोहलर, कोफ्का तथा वर्दाइमर का मत था कि मनोविज्ञान तात्कालिक अनुभूति का अध्ययन करता है जिसमें मूल रूप से स्मृति, चिन्तन, प्रत्यक्षण एवं सीखना जैसे कार्यों का अध्ययन किया जाता है। उन्होंने इसकी शुरूआत प्रत्यक्षण के अध्ययन से की और बाद में अन्य क्षेत्रों का अध्ययन भी किया। परन्तु उत्तरकालीन गेस्टाल्टवादी जैसे कर्ट लेविन ने इस बात पर बल डाला कि व्यवहार को भी मनोविज्ञान के अध्ययन विषय के रूप में सम्मिलित किया जाना चाहिए। उन्होंने कई अध्ययन किये जिसमें व्यवहार का सम्बंध प्रत्यक्षण से जोड़ने की कोशिश की गयी। वर्तमान स्थिति यह है कि गेस्टाल्टवादियों के अनुसार मनोविज्ञान प्राणी के व्यवहार तथा तात्कालिक अनुभूति दोनों का अध्ययन करता है। इस विचारधारा में मनोविज्ञान के अध्ययन हेतु प्रयोग एवं अन्तर्निरीक्षण को उत्तम विधि माना गया है। लेकिन उनकी यह विधि संरचनावादियों के अन्तर्निरीक्षण से भिन्न है।

(2) गेस्टाल्टवाद के प्रमुख अभिगृहीत (postulates) –गेस्टाल्टवादियों ने दो प्रकार के अभिगृहीतों की चर्चा की है। पहला प्राथमिक अभिगृहीत (primary postulates) तथा दूसरा द्वितीयक अभिगृहीत (secondary postulates)। प्राथमिक अभिगृहीत में समग्रता की पूर्वकल्पना की गयी है तथा समग्र–अंश मनोविज्ञान (whole-part psychology) की व्याख्या की गयी है। इसके अनुसार समग्रता का प्रत्यक्षण उसके अंशों के प्रत्यक्षण का योग नहीं होता है। समग्रता की विशेषताएँ अंश की विशेषताओं से भिन्न होती हैं। द्वितीयक

अभिगृहीत में गेस्टाल्वादियों ने कुछ विशेष नियमों का उल्लेख किया है जिनमें– समकृतिकता का नियम (principle of isomorphism), प्रत्यक्षणात्मक संगठन के नियम (principle of perceptual organization) , अधिगम का सातत्यता रहित नियम (uncontinuity view of learning) आदि प्रमुख हैं।

(3) मन–शरीर समस्या – गेस्टाल्टवादियों की दृष्टि में मन–शरीर समस्या को उचित रूप में समकृतिकता के नियम द्वारा आसानी से समझाया जा सकता है। इस नियम के अनुसार जो व्यक्ति वास्तविक रूप में देखता है तथा जो मस्तिष्क में घटना घटित होती है, के बीच एक–एक बिन्दु का सम्बंध होता है। अर्थात् देखने का कार्य भी मस्तिष्क के किसी केंद्र बिन्दु द्वारा किया जाता है एवं उसे मस्तिष्क में दिखाने का कार्य भी मस्तिष्क के किसी केंद्र बिन्दु द्वारा किया जाता है एवं ये दोनों बिन्दु आपस में संबंधित होते हैं। यह नियम निश्चित रूप में एक समानान्तरवाद को बताता है। परन्तु यह समानान्तरवाद वुण्ट एवं टिचनर के समान्तरवाद से भिन्न है। गेस्टाल्टवादियों के लिए यह एक मनोवैज्ञानिक समानान्तरवाद (psychological parallelism) है क्योंकि उसमें प्रत्यक्षित क्षेत्र या मानसिक क्षेत्र तथा मस्तिष्कीय क्षेत्र में बिन्दु से बिन्दु का सम्बन्ध होता है जबकि संरचनावादियों के लिए इन दोनों के बीच मनोदैहिक समानान्तरवाद (psychophysical parallelism) है क्योंकि इसमें मानसिक घटना तथा दैहिक घटना में बिन्दु से बिन्दु का संबंध होता है। इन दोनों क्षेत्रों के अलावा एक और क्षेत्र जिसे भौतिक क्षेत्र या भौगोलिक क्षेत्र जो प्रत्यक्षित क्षेत्र या मानसिक क्षेत्र से नहीं मिल सकता है इसका उदाहरण मनुष्य को होने वाले विभिन्न प्रकार के भ्रमों के रूप में मिलता है।

(4) गेस्टाल्टवाद में अध्ययन के ऑकड़ों का स्वरूप

घटनाओं के तात्कालिक अनुभव से प्राप्त ऑकड़े गेस्टाल्ट मनोविज्ञान के अध्ययन हेतु उपयोग किए जाने वाली प्रमुख ऑकड़े हैं। इसे प्रदत्त कहा गया है। गेस्टाल्टवादियों ने सीखने तथा समस्या समाधान के क्षेत्र में व्यवहारात्मक ऑकड़ों को भी स्वीकार किया है। इस प्रकार से गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों द्वारा व्यवहारवाद को भी काफी हद तक स्वीकार किया गया है।

(5) प्रत्यक्षण के नियम – गेस्टाल्टवादियों ने प्रत्यक्षज्ञानात्मक संगठन की व्याख्या हेतु विभिन्न नियमों का प्रतिपादन किया है। इसमें वे प्रत्यक्षण में चयन के नियम पर बल देते हैं एवं इस बात की व्याख्या करते हैं कि किसी विशेष आकृति के प्रकार के प्रत्यक्षण के लिए व्यक्ति किस प्रकार से वस्तुविशेष से संबंधित उद्दीपकों का चयन करता है। उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि प्रत्यक्षण के क्षेत्र में सभी अंशों की भूमिका होती है। अतः उनके लिए यह जानना अधिक महत्वपूर्ण है कि ये सारे अंश किस तरह से संगठित या संगठन के लिये चयनित होते हैं। व्यक्ति क्यों क्षेत्र के कुछ अंश को आकृति के रूप में तथा क्यों क्षेत्र के अन्य अंश को पृष्ठभूमि के रूप में प्रत्यक्षण करता है? प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक रूबिन ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा है कि जो अंश या भाग व्यक्ति को स्पष्ट रूप से प्रत्यक्षण करता है, उसे आकृति समझा जाता है तथा जिस भाग को अस्पष्ट प्रत्यक्षण व्यक्ति करता है, उसे पृष्ठभूमि समझा जाता है।

(6) सम्बन्ध का सिद्धान्त – गेस्टाल्टवादियों के सम्बन्ध की समस्या का स्वरूप साहचर्यवादियों एवं संरचनावादियों से पर्याप्त भिन्न था। संरचनावादियों के लिए चेतन के तत्व साहचर्य के विभिन्न नियमों द्वारा सम्बन्धित होते हैं। इसे गेस्टाल्टवादियों ने बण्डल

परिकल्पना (bundle hypothesis) की संज्ञा दी है तथा इसे अस्वीकृत भी कर दिया है क्योंकि इनका मत था कि समग्रता का प्रत्यक्षण उसके अंशों के प्रत्यक्षण का योग नहीं होता है। इसलिए उसके अंशों को जोड़कर समग्रता का निर्णय करने का प्रत्यक्षण करना एक बेकार एवं अर्थहीन प्रयास है। गेस्टाल्टवादियों का मत है कि यदि बण्डल परिकल्पना को सही मान लिया जाता है तो प्रत्यक्षण को साधारण एवं शुरूआती प्रत्यक्षणों का मात्र एक योग माना जायेगा जो वास्तव में वह नहीं है। गेस्टाल्टवादियों ने यह भी स्पष्ट किया है कि प्रत्यक्षज्ञानात्मक संगठन के नियम को सम्बन्ध का नियम कहना अनुचित होगा क्योंकि इन नियमों से यह पता चलता है कि अमुक संरचना की उत्पत्ति में कौन–से तत्व संबंधित होंगे।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि एक सम्प्रदाय के रूप में गेस्टाल्ट मनोविज्ञान अन्य सम्प्रदायों से कम महत्वपूर्ण नहीं था। इसके विभिन्न अभिगृहीत अभी भी आधुनिक अनुसंधान एवं प्रयोगों के लिए एक महत्वपूर्ण स्रोत हैं।

3.6 मनोविश्लेषणवाद

मनोविश्लेषण मनोविज्ञान का एक ऐसा स्कूल है जिसकी स्थापना ऐसे मनोवैज्ञानिकों द्वारा की गयी जिनका सम्बन्ध मेडिकल एवं क्लीनिकल क्षेत्र से अधिक था। वहीं मनोविज्ञान के अन्य स्कूलों की स्थापना ज्यादातर शैक्षिक संस्थानों से संबंध रखने वाले मनोवैज्ञानिकों द्वारा की गयी।

सिगमण्ड फ्रायड ने मनोविश्लेषण को मनोविज्ञान के अध्ययन की विषयवस्तु एवं अध्ययन विधि के रूप में स्थापित किया। उन्होंने मनोविश्लेषण को मानसिक रूप से बीमार व्यक्तियों के उपचार की विधि, व्यक्तित्व के सिद्धान्त एवं सम्प्रदाय के रूप में स्थापित किया है। मनोविश्लेषण की परम्परा में फ्रायड के अलावा एडलर एवं युंग का भी महतवपूर्ण योगदान रहा है। प्रस्तुत इकाई में एक सम्प्रदाय एवं स्कूल के रूप में आगे की पंक्तियों में इसकी व्याख्या की जा रही है।

फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद का उनके द्वारा प्रतिपादित विभिन्न संप्रत्ययों एवं सिद्धान्तों के प्रकाश में आसानी से समझा जा सकता है। इनका वर्णन क्रमानुसार निम्नांकित है–

1. **मन की आकारात्मक संरचना** : चेतन, अर्द्धचेतन एवं अचेतन (Topographical structure : conscious, preconscious and unconscious)– फ्रायड ने मन की संरचना को तीन स्तरों में बॉटा है ये तीन स्तर चेतन, अर्द्धचेतन एवं अचेतन हैं। चेतन को परिभाषित करते हुए कहा है कि चेतन में वे सभी अनुभूतियॉ एवं संवेदनाएँ होती हैं जिनका सम्बन्ध वर्तमान से होता है। इसमें वे सारे मानसिक तत्व होते हैं जिनसे व्यक्ति एक दिये हुए क्षण से अवगत होता है। फ्रायड ने यह स्पष्ट किया है कि मानसिक जिन्दगी का एक छोटा–सा हिस्सा ही चेतन होता है। अर्द्धचेतन से तात्पर्य वैसे मानसिक स्तर से होता है जो सचमुच में न तेा पूर्णतः चेतन होता है और न ही पूर्णतः अचेतन। इसमें वैसी इच्छाएँ, विचार, भाव आदि होते हैं जो हमारे वर्तमान चेतन या अनुभव में नहीं होते हैं परन्तु प्रयास करने पर वे हमारे चेतन मन में आ जाते हैं। अचेतन का शाब्दिक अर्थ है जो चेतन या चेतना से परे हों हमारे कुछ अनुभव इस प्रकार के होते हैं जो न तो हमारे चेतन में होते हैं और न ही अर्द्धचेतन में। यह मन का सबसे बड़ा हिस्सा होता है। इसमें बाल्यावस्था की लैंगिक इच्छाएँ तथा मानसिक संघर्ष आदि से सम्बन्धित इच्छाएँ

होती हैं जिन्हें सामान्यतः व्यक्ति अपने दिन प्रतिदिन की जिंदगी में पूरा नहीं कर पाता है। फ्रायड का मत था कि अचेतन की इच्छाओं का महत्व मानव व्यवहार के निर्धारण में काफी है। उनके अनुसार अचेतन की इच्छाएँ चेतन में विकृत रूप अपनाकर प्रवेश करती हैं। व्यक्ति अपनी दिन प्रतिदिन की जिंदगी में जो भूलें करता है उसके पीछे अभिप्रेरणात्मक बल यही अचेतन की इच्छाएँ ही होती हैं।

चेतन तथा अचेतन के आकार के स्वरूप की तुलना पानी में डूबे हुए बर्फ के एक विशालखण्ड से की गयी है। बर्फ के टुकड़े का बड़ा भाग पानी में डूबा होता है जो दिखलाई नहीं देता है और जो दिखलाई देता है वह ऊपर का छोटा–सा भाग होता है। ठीक उसी प्रकार चेतन विशाल बर्फ खण्ड का ऊपरी हिस्सा होता है जसे कि आकार में छोटा होता है तथा अचेतन पानी में बर्फ के डूबे हुए बड़े हिस्से के समान आकार में बड़ा होता है और जिस तरह वह बड़ा खण्ड व्यक्ति को दिखाई नहीं देता है, ठीक उसी तरह से अचेतन के बारे में स्वयं व्यक्ति कुछ नहीं जानता है यानी अचेतन के विस्तृत भंडार जिसमें मूलतः दमित, कामुक, अनैतिक, असामाजिक तथा घृणित इच्छाएँ होती हैं, से व्यक्ति स्वयं अवगत नहीं रहता है।

2. **मन का संरचनात्मक मॉडल** – इड, ईगो एवं सुपर ईगो (Structural model : Id, Ego and Super ego)– संरचनात्मक दृष्टि से फ्रायड ने मन को तीन भागों में बॉटा है ये मन के तीन तत्व हैं जो कि आपस में क्रियाव्यापार करते हैं। ये हैं इड, ईगो एवं सुपर ईगो। इड व्यक्तित्व का दैहिक तत्व होता है। यह जन्मजात होता है। यह आनन्द के नियम से संचालित होता है। इड अपनी इच्छाओं की तुरंत पूर्ति करना चाहता है तथा वह उसके परिणाम की चिन्ता नहीं करता। इसका वास्तविकता से कोई सम्पर्क नहीं होता है। अतः यह समय बीतने एवं व्यक्ति की अनुभूतियों से परिवर्तित नहीं होता है। इड इच्छाओं की पूर्ति न होने पर उत्पन्न तनाव व संघर्ष को दूर करने के लिए दो प्रक्रमों को अपनाता है प्रथम प्रक्रम है प्रतिवर्त क्रिया (reflex action) तथा द्वितीय प्रक्रम है प्राथमिक प्रक्रिया (primary process)। प्रतिवर्त प्रक्रिया में प्राणी तनाव उत्पन्न करने वाले स्रोत के प्रति इड स्वतः प्रतिक्रिया करता है और इस तरह से तनाव को दूर करता है। खॉसना, ऑख झपकाना, छींकना आदि प्रतिवर्त क्रिया के कुछ उदाहरण हैं। प्राथमिक प्रक्रिया से तात्पर्य एक ऐसी प्रक्रिया से होती है जिसमें व्यक्ति तनाव दूर करने के लिए उस व्यक्ति या वस्तु की मानसिक छवि विनिर्मित कर लेता है जिसका सम्बन्ध पहले मूल प्रणोदों की तुष्टि से था। इस प्रक्रिया में व्यक्ति वास्तविक तथा अवास्तविक के बीच अन्तर नहीं कर पाता है। एक शिशु पूर्णतः प्राथमिक प्रक्रिया के सहारे ही अपना तनाव दूर करता है।

ईगो – उम्र बढ़ने के साथ ही शिशु की इड की प्रवृत्तियों से ही ईगो का विकास होता है। वह व्यक्ति के पूरे जीवनकाल तक विकसित होता रहता है। इसका संबंध वास्तविकता से होता है। यह वास्तविकता के नियम से संचालित होता है। इसमें व्यक्ति वास्तविकता को ध्यान में रखते हुए अपनी शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जाओं का उपयोग करता है। यह नियम पूल प्रवृत्तिक संतुष्टि की अनुमति तब देता है जब उसके लिये उपयुक्त वातावरणीय अवसर होते हैं। इस तरह से वास्तविकता का मूल उद्देश्य व्यक्तित्व में अखण्डता बनाये रखना होता है। यह व्यक्तित्व की

कार्यपालक शक्ति के रूप में कार्य करता है। यह अंशतः चेतन, अंशतः अचेतन तथा अंशतः अर्द्धचेतन होता है। अतः यह तीनों स्तरों पर कार्य करता है। यह मूलतः दो प्रकार के कार्य करता है। 1. यह रक्षा प्रक्रमों के माध्यम से धमकी भरे आवेगों को चेतन में आने से रोकता है तथा चिन्ता को कम करता है। दूसरा यह इड एव बाहरी दुनिया के बीच उत्तम सम्पर्क बनाये रखता है।

सुपर ईगो– सुपर ईगो आदर्शवादी सिद्धान्त पर कार्य करता है। यह व्यक्तित्व का नैतिक निर्देशक होता है। सुपर ईगो इस अर्थ में ईगो से भिन्न होता है कि इसका वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। इसलिए यह जो पूर्णता की मांग करता है, वह पूर्णतः अवास्तविक होता है। फ्रायड ने सुपर ईगो के दो सब सिस्टम बतलाये हैं। 1. अन्तःकरण (conscience) तथा अहं आदर्श (ego ideal)। जब बच्चों को कोई व्यवहार करने पर दंड मिलता है, तो इससे उनमें अन्तःकरण विकसित होता है तथा जब उन्हें कोई व्यवहार करने के बाद पुरस्कार मिलता है, तो इससे उसमें अहं–आदर्श का विकास होता है।

इन तीनों शाखाओं का विकास प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न–भिन्न मात्रा में होता है। एक सामान्य स्वस्थ व्यक्ति में इड, ईगो एवं सुपर ईगो तीनों ही काफी समन्वित होते हैं तथा एक दूसरे के साथ मिलकर कार्य करते हैं।

3. **मूल प्रवृत्ति का सिद्धान्त एवं साइकिक एनर्जी** – मनुष्य में दो तरह के ऊर्जा तन्त्र कार्य करते हैं। दैहिक ऊर्जा एवं मानसिक ऊर्जा। दैहिक ऊर्जा की उत्पत्ति भोजन से होती है। मानसिक ऊर्जा की उत्पत्ति उत्तेजन के न्यूरोदैहिक अवस्था से होता है। उनका मानना है कि ये दोनों ऊर्जायें एक दूसरे में परिवर्तित हो सकती हैं तथा इसका उपयोग मनोवैज्ञानिक क्रियाओं जैसे, चिन्तन करने में किया जाता है। इड ही वह कड़ी है जो कि दैहिक ऊर्जा एवं मानसिक ऊर्जा के बीच मध्यस्थता करता है। फ्रायड के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में मानसिक ऊर्जा की मात्रा सीमित होती है और इसे व्यक्ति उन मानसिक क्रियाओं के करने में खर्च करता है जो विभिन्न तरह की आवश्यकताओं से उत्पन्न शारीरिक उत्तेजन को कम करने के लिए खर्च किया जाता है। इन शारीरिक उत्तेजनों या आवश्यकताओं के मनोवैज्ञानिक या मानसिक कल्पना या चित्रण को मूलप्रवृत्ति कहा जाता है। यह दो प्रकार की होती है। जीवन मूलप्रवृत्ति एवं मृत्यु मूलप्रवृत्ति। जीवन मूलप्रवृतित को इरोस तथा मृत्यु मूलप्रवृत्ति को थैनाटोस कहा जाता है। जीवन मूलप्रवृत्ति में वे सारे बल होते हैं जो प्राणी के दैहिक प्रक्रियाओं को संयोजित करते हैं तथा प्रजातियों के प्रजनन को प्रोत्साहित करते हैं। इसमें यौन मूलप्रवृत्ति सम्मिलित होती है इसे लिबिडो की संज्ञा दी गयी है। इसका संबंध लैंगिक सुख से होता है। मृत्यु मूलप्रवृत्ति में वे सारे बल सम्मिलित होते हैं जिससे प्रेरित होकर व्यक्ति ध्वंसात्मक कार्य जैसे– आत्महत्या, हत्या, आक्रामकता, निष्ठुरता आदि जैसे कार्य करता है। व्यक्ति में दोनों प्रकार की मूलप्रवृत्ति एक दूसरे के साथ अन्तःक्रिया करती हैं तथा वास्तविकता के नियम के अनुरूप कार्य करती हैं।

4. **सुरक्षा प्रक्रम एवं चिंता** – फ्रायड के अनुसार इच्छाओं की अपूर्ति से उत्पन्न तनाव व चिंता को दूर करने के लिए व्यक्ति विभिन्न सुरक्षा प्रक्रम अपनाता है। इन चिन्ताओं एवं सुरक्षाप्रक्रमों के कई प्रकार हैं जो कि निम्न हैं। 1. वास्तविक दुश्चिंता– बाह्य वातावरण मं व्याप्त खतरे के प्रति की गयी सांवेगिक अनुक्रिया को

वास्तविक चिंता कहा जाता है। जैसे–आग, सांप आदि। इस तरह की चिंता बाह्य वातावरण पर इगो की निर्भरता से उत्पन्न होती है। 2. तंत्रिकातापी चिंता– इस तरह की चिंता में ईगों को इड की प्रवृत्तियों द्वारा धमकी मिलती है। 3. नैतिक चिंता– जब ईगो को सुपर ईगों से धमकी मिलती है तो इससे व्यक्ति में नैतिक दुश्चिंता उत्पन्न होती है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति में दोषभाव, आत्म आलोचना तथा लज्जा की तीव्र मात्रा उत्पन्न हो जाती है।

तीनों प्रकार की दुश्चिंता से बचने के लिए व्यक्ति सुरक्षा प्रक्रमों का प्रयोग करता है जिनमें दमन, प्रतिक्रिया निर्माण, प्रतिगमन, प्रक्षेपण, यौक्तिकरण, उद्दातीकरण, विस्थापन प्रमुख हैं।

मनोलैंगिक विकास की अवस्थायें– फ्रायड के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को मनोलैंगिक विकास की अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है। इन अवस्थाओं में मुखावस्था, गुदावस्था, लिंग प्रधानावस्था, अव्यक्तावस्था तथा जननेन्द्रियावस्था क्रमानुसार आती हैं।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि फ्रायड का मनोविश्लेषणवाद काफी विस्तृत सम्प्रदाय है जिसका प्रभाव मनोविज्ञान पर काफी पड़ा है। इसके विस्तृत प्रभाव के कारण ही इसे मनोविज्ञान का प्रथम बल कहा गया है।

अभ्यास प्रश्न

1 – मनोविज्ञान के प्रमुख सम्प्रदायों के नाम बताइये।

2 – व्यवहारवाद के अनुसार मनोविज्ञान के अध्ययन की विषय वस्तु क्या है?

3 – गेस्टाल्टवाद के प्रमुख अभिगृहीत का वर्णन करें।

4 – फ्रायड द्वारा रचित मन के संरचनात्मक मॉडल के तीन प्रमुख संप्रत्ययों का नाम बतायें?

5 – किन परिस्थितियों में व्यक्ति सुरक्षा प्रक्रमों को अपनाता है? मनोविश्लेषण के आधार पर इसे स्पष्ट करें।

3.7 सारांश

व्यवहारवाद, गेस्टाल्टवाद एवं मनोविश्लेषण मनोविज्ञान के प्रमुख सम्प्रदायों में अग्रगामी हैं। इनमें से मनोविश्लेषण एवं व्यवहारवाद को क्रमशः मनोविज्ञान का प्रथम एवं द्वितीय बल कहा जाता है। व्यवहारवाद मनोविज्ञान की अध्ययन विषय वस्तु के रूप में वस्तुनिष्ठ प्रेक्षणीय व्यवहारों के अध्ययन पर बल देता है तथा तदनुसार उसके मापन हेतु वस्तुनिष्ठ प्रयोगों एवं परीक्षणों पर जोर देता है। गेस्टाल्टवाद समग्रता पर जोर देता है इसके अनुसार चेतना को उसके अंशों का अध्ययन कर तथा अंशो के योग द्वारा नहीं समझा जा सकता है क्योंकि अंशों के योग से जो अर्थ प्रकट होते हैं वे कहीं अधिक गंभीर होते हैं। मनोविश्लेषणवाद व्यवहारवाद के एकदम विपरीत संप्रत्ययों पर टिका हुआ है। इसमें व्यवहार एवं व्यक्तित्व की व्याख्या हेतु फ्रायड ने विभिन्न संप्रत्ययों जैसे कि इड, ईगो एवं सुपर ईगों की रचना की है तथा उनके द्वारा व्यवहार को समझाया है। सार रूप में तीनों ही सम्प्रदायों का मनोविज्ञान पर अत्यंत प्रभाव है तथा तीनों में ही आनुभाविक प्रयोग किये जा सकने की संभावना है।

3.8 पारिभाषिक शब्दावली

व्यवहारवाद (Behaviorism)– इसके अन्तर्गत उसे प्रेक्षणीय, मापनीय व्यवहार को मनोविज्ञान के अध्ययन की विषय–वस्तु माना जाता है न कि आन्तरिक मानसिक प्रक्रियाओं

को। मान्यता है कि अधिगम के द्वारा तथा वातावरण के प्रभाव से मानवीय व्यवहार का निर्धारण होता है।

गेस्टाल्टवाद (Gestaltism)– गेस्टाल्टवाद का जोर इस बात पर है कि व्यक्ति वस्तुओं एवं पैटर्न को समग्रता में प्रत्यक्ष करता है। और यह प्रत्यक्षित समग्र विभागों के समुच्चय से कहीं अधिक व्यापक एवं गहरा अर्थ रखता है इसे संरचनावाद के अंतर्निरीक्षण विधि द्वारा नहीं समझा जा सकता है।

मनोविश्लेषण (Psychoanalysis) – यह व्यवहार का निर्धारण में अचेतन मानसिक बलों एवं संघर्ष की भूमिका को महत्व देता है। इसमें मानसिक प्रक्रियाओं को व्यवहार की तुलना में अधिक महत्व दिया गया है।

इड (Id) –इड व्यक्तित्व का दैहिक तत्व होता है। यह जन्मजात होता है। यह आनन्द के नियम से संचालित होता है। इड अपनी इच्छाओं की तुरंत पूर्ति करना चाहता है तथा वह उसके परिणाम की चिन्ता नहीं करता। इसका वास्तविकता से कोई सम्पर्क नहीं होता है। अतः यह समय बीतने एवं व्यक्ति की अनुभूतियों से परिवर्तित नहीं होता है।

ईगो (Ego) – उम्र बढ़ने के साथ ही शिशु की इड की प्रवृत्तियों से ही ईगो का विकास होता है। वह व्यक्ति के पूरे जीवनकाल तक विकसित होता रहता है। इसका संबंध वास्तविकता से होता है। यह वास्तविकता के नियम से संचालित होता है। इसमें व्यक्ति वास्तविकता को ध्यान में रखते हुए अपनी शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जाओं का उपयोग करता है।

सुपर ईगो (Super-Ego) – सुपर ईगो आदर्शवादी सिद्धान्त पर कार्य करता है। यह व्यक्तित्व का नैतिक निर्देशक होता है।

नैतिक चिंता (Moral anxiety) – जब ईगो को सुपर ईगों से धमकी मिलती है तो इससे व्यक्ति में नैतिक दुश्चिंता उत्पन्न होती है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति में दोषभाव, आत्म आलोचना तथा लज्जा की तीव्र मात्रा उत्पन्न हो जाती है।

तंत्रिकातापी चिंता (Neurotic anxiety) -इस तरह की चिंता में ईगो को इड की प्रवृत्तियों द्वारा धमकी मिलती है। तथा ईगो इड पर लगाम लगाने में स्वयं को असमर्थ पाता है।

वास्तविक चिंता (Realistic anxiety) - बाह्य वातावरण मे व्याप्त खतरे के प्रति की गयी सांवेगिक अनुक्रिया को वास्तविक चिंता कहा जाता है। जैसे–आग, सांप आदि। इस तरह की चिंता बाह्य वातावरण पर इगो की निर्भरता से उत्पन्न होती है

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1– साहचर्यवाद, संरचनावाद, प्रकार्यवाद, गेस्टाल्टवाद, व्यवहारवाद, मनोविश्लेषण एवं मानवतावाद मनोविज्ञान के प्रमुख सम्प्रदाय माने गये हैं।

उत्तर 2– व्यवहारवाद के अनुसार वे सभी क्रियायें एवं व्यवहार जो कि प्रेक्षणीय हैं एवं जिनका वस्तुनिष्ठ प्रकार से मापन किया जा सकता है मनोविज्ञान के अध्ययन की विषय–वस्तु के अन्तर्गत आते हैं। चेतना एवं मन का व्यवहारवाद में अध्ययन की विषय वस्तु नहीं माना गया है।

उत्तर 3– गेस्टाल्टवाद के प्रमुख अभिगृहीत (postulates) –गेस्टाल्टवादियों ने दो प्रकार के अभिगृहीतों की चर्चा की है। पहला प्राथमिक अभिगृहीत (primary postulates)

तथा दूसरा द्वितीयक अभिगृहीत (secondary postulates)। प्राथमिक अभिगृहीत में समग्रता की पूर्वकल्पना की गयी है तथा समग्र–अंश मनोविज्ञान (whole-part psychology) की व्याख्या की गयी है। इसके अनुसार समग्रता का प्रत्यक्षण उसके अंशों के प्रत्यक्षण का योग नहीं होता है। समग्रता की विशेषताएँ अंश की विशेषताओं से भिन्न होती हैं। द्वितीयक अभिगृहीत में गेस्टाल्वादियों ने कुछ विशेष नियमों का उल्लेख किया है जिनमें– समकृतिकता का नियम (principle of isomorphism), प्रत्यक्षणात्मक संगठन के नियम (principle of perceptual organization) , अधिगम का सातत्यता रहित नियम (uncontinuity view of learning) आदि प्रमुख हैं।

उत्तर 4– फ्रायड ने मन की संरचना को समझाने के लिए तीन परिकल्पित संप्रत्ययों की रचना की है। इनमें इड, ईगो एवं सुपर ईगों आते हैं।

उत्तर 5– फ्रायड के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में कुछ अचेतन की इच्छायें एवं आकांक्षायें होती हैं जब ये इच्छायें एवं आकांक्षायें किन्हीं कारणों से पूरी नहीं हो पाती हैं तब इनसे उत्पन्न मानसिक संघर्ष एवं दुश्चिंता से बचने के लिए व्यक्ति सुरक्षा प्रक्रमों को अपनाता है।

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

डॉ महेन्द्र कुमार मिश्रा (2007) विकासात्मक मनोविज्ञान, जयपुर – यूनीवर्सिटी बुक हाउस।

रॉबर्ट ए. बैरोन (2006) साइकोलॉजी, दिल्ली – पियर्सन प्रेंटिस हाल।

सैमुअल वुड एवं एलेन वुड (2000) द इसेंशियल वर्ल्ड ऑफ साइकोलाजी, यू एस ए– एलिन एण्ड बेकन।

ब्रज कुमार मिश्र (2011) मनोविज्ञान – मानव व्यवहार का अध्ययन, नई दिल्ली – पी एच आई प्राइवेट लिमिटेड।

डॉ अरूण कुमार सिंह (2010) मनोविज्ञान के सम्प्रदाय एवं इतिहास, दिल्ली – मोतीलाल बनारसीदास।

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. व्यवहारवाद से आप क्या समझते है।व्यवहारवाद की विस्तार पूर्वक चर्चा कीजिए।
2. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

क–गेस्टाल्टवाद ख– मनोविश्लेषणवाद

इकाई 4 – मानव जीवन का विकासक्रम– शैशवावस्था, बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था में शारीरिक विकास

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 मानव जीवन का विकास – मूल मुद्दे एवं अध्ययनविधि

4.4 आनुवांशिकता एवं जन्मपूर्व (पूर्वप्रसूतिकाल)विकास

4.5 शैशवावस्था में शारीरिक विकास एवं सीखना

4.6 शैशवावस्था एवं बाल्यावस्था में शारीरिक विकास

4.7 किशोरावस्था – शारीरिक विकास

4.8 सारांश

4.9 पारिभाषिक शब्दावली

4.10 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

4.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

4.12 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

मानव का विकास क्रमानुसार सम्पन्न होता है तथा इसके क्रम में प्रत्येक व्यक्ति को जन्म के उपरान्त शैशवावस्था, तदनुपरान्त बाल्यावस्था एवं उसके उपरान्त किशोरावस्था से गुजरना पड़ता है। किशोरावस्था के पड़ाव को पार कर मानव वयस्कावस्था तथा अन्त में वृद्धावस्था के उपरान्त मृत्यु को प्राप्त होता है। आप के मन में विकास की इन सभी अवस्थाओं से संबंधित बहुत से प्रश्न अनुत्तरित होंगे जैसे कि नवजात की क्या विशेषताएँ होती हैं बच्चे चलना किस प्रकार सीखते हैं किशोरावस्था में किस प्रकार के शारीरिक बदलाव होते हैं? आदि। मानव विकास से संबंधित इन सभी जिज्ञासाओं का परिचय इस इकाई की विशेषता है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

1. मानव जीवन के विकास की विभिन्न अवस्थाओं को समझ सकेंगे।
2. मानव जीवन के विकास की अध्ययन विधि एवं मूल मुद्दों का परिचय प्राप्त करेंगे।
3. शैशवावस्था, बचपनावस्था, किशोरावस्था में शारीरिक विकास को समझ सकेंगे।
4. विकास के विभिन्न चरणों की जानकारी प्राप्त करेंगे।
5. मानव विकास को समग्र रूप में जानेंगे।

4.3 मानव जीवन का विकास – मूल मुद्दे एवं अध्ययनविधि

मानव जीवन के विकास का अध्ययन विकासात्मक मनोविज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है। विकासात्मक मनोविज्ञान मानव के पूरे जीवन भर होने वाले वर्धन, विकास एवं बदलावों का अध्ययन करता है। इसमें शैशवावस्था से लेकर वयस्कावस्था के अंतिम स्तर तक के विकास का अध्ययन सम्मिलित होता है।

निम्नलिखित सारणी में इसे आयु के आधार पर क्रम से प्रदर्शित किया गया है।

	विकास की अवस्था	आयु विवरण
1.	गर्भावस्था (prenatal stage)	गर्भाधान से लेकर जन्म तक
2.	शैशवावस्था (infancy stage)	जन्म से तीन वर्ष की आयु तक
3.	बाल्यावस्था(childhood stage)	चौथे वर्ष से 12 वर्ष की आयु तक
4.	किशोरावस्था (adolescence stage)	13 वर्ष से 17 वर्ष तक
5.	वयस्कावस्था (adulthood stage)	18 वर्ष से लेकर मृत्यु तक

मानव विकास के मूल मुद्दे–

1) किस सीमा तक आनुवांशिकता एवं वातावरण मानव विकास को प्रभावित करते हैं? यह मानव विकास का प्रथम मुद्दा है। वास्तव में पिछली कई शताब्दियों तक विचारक इस बात पर बहस करते रहे हैं कि मानव विकास पर आनुवांशिकता एवं वातावरण का क्या प्रभाव पडता है? इस बहस को प्रकृति–पोषण विरोधाभास के

रूप में जाना जाता है। परन्तु वर्तमान में यह बहस प्रकृति एवं पोषण के मध्य न होकर इस पर है कि ये किस सीमा तक मानव विकास के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित करते हैं।

2) क्या विकास निरंतर होता है अथवा यह कई स्तरों से गुजरता है? यह द्वितीय मुद्दा है। जब हम निरंतरता पर विचार करते हैं तब हम अवस्थाओं की चर्चा नहीं करते क्योंकि अवस्थायें दो स्तरों में गुणात्मक भिन्नता को दर्शाती हैं। दो स्तरों या अवस्थाओं में एक अवस्था में होने वाला विकास दूसरी अवस्था में नहीं होता है।

3) किस मात्रा तक व्यक्तिगत शीलगुण समय के साथ स्थिर रहते हैं? यहॉ व्यक्तिगत शीलगुणों से तात्पर्य व्यक्तित्व शीलगुणों से है। जैसे बुद्धि, क्रोध, चित्तप्रकृति आदि।

विकासात्मक परिवर्तनों के अध्ययन की विधियॉ–

विकासात्मक मनोवैज्ञानिक आयु से संबंधित विकासात्मक बदलावों के अध्ययन हेतु दो प्रकार की अध्ययन विधियों का मुख्य रूप से उपयोग करते हैं। 1. दीर्घकालिक अध्ययन विधि एवं 2. क्रॉससेक्सनल विधि।

दीर्घकालिक अध्ययन (Longitudinal study)विधि – इस विधि में प्रतिभागियों के एक ही समूह का अलग–अलग आयु में अनुवर्तन (फॉलोअप) कर अध्ययन किया जाता है, एवं इस कार्य में कई वर्षों का समय लगता है। इसीलिए इसे दीर्घकालिक अध्ययन विधि कहा जाता है। अत्यधिक समय साध्य एवं खर्चीलापन इस विधि की प्रमुख कमियॉ है इसके अलावा इसमें प्रतिभागियों के अध्ययन को बीच में ही छोड़ देने की संभावना भी अधिक होती है।

क्राससेक्शनल अध्ययन (Cross-sectional study) विधि – यह विधि कम खर्चीली एवं कम समय–साध्य होती है जिसके अन्तर्गत अनुसंधानकर्ता अलग–अलग आयु के प्रतिभागियों के कई समूह विनिर्मित कर उनके बीच आयु आधारित परिवर्तनों एवं भिन्नताओं का तुलनात्मक अध्ययन कर लेता है।

मानव विकास बहुत ही रोमांचपूर्ण प्रक्रिया है जो कि जन्म से पूर्व ही प्रारम्भ हो जाती है जिसके बारे में हम आगे की पंक्तियों में जानेंगे।

4.4 आनुवांशिकता एवं जन्मपूर्व (पूर्वप्रसूतिकाल के दौरान) विकास

आनुवांशिक प्रक्रिया के दो महत्वपूर्ण घटकों में जीन्स एवं क्रोमोसोम्स आते हैं। जीन जैविक ब्लूप्रिंट होते हैं कि जो कि सभी आनुवांशिक शीलगुणों एवं विशेषताओं का सीधे रूप में निर्धारित एवं स्थानांतरित करते हैं। जीन DNA का घटक होते हैं एवं क्रोमोसोम्स की संरचना में स्थित होते हैं। ये क्रोमोसोम्स शारीरिक कोशिकाओं के केन्द्रकों में पाये जाते हैं। प्रत्येक सामान्य कोशिका में कुल 23 जोड़े क्रोमोसोम्स पाये जाते हैं जो कि कुल मिलाकर 46 होते हैं। इसके अलावा दो विशेष कोशिकायें भी पायी जाती हैं जिनमें कुल 23 ही क्रोमोसोम्स होते हैं जैसे कि पुरूषों में शुक्राणु कोशिका एवं महिलाओं में अंडाणु कोशिका। गर्भधारण के समय पुरूष के शुक्राणु कोशिका के 23 एवं महिला के अंडाणु कोशिका के 23 क्रोमोसोम्स आपस में मिल जाते हैं एवं एक एकल कोशिका का निर्माण करते हैं जिसे जाइगोट (Zygote) कहा जाता है जिसमें पूरे 23 जोड़े क्रोमोसोम्स होते हैं। इस जाइगोट कोशिका में लगभग 100,000 जीन्स होते हैं जिनमें हर प्रकार वह सूचना

कूटसंकेतिक होती है जिसकी की मानव उत्पत्ति में जरूरत होती है। इन 23 जोड़े क्रोमोसोम्स का आखिरी जोड़ा सेक्स क्रोमोसोम्स कहलाता है। क्योंकि यह लिंग निर्धारण करता है। महिलाओं के सेक्स क्रोमोसोम्स में जोड़े के दोनों क्रोमोसोम्स XX होते हैं। वहीं पुरूषों के सेक्स क्रोमोसोम्स में XYहोते हैं। अंडाणु कोशिका के सेक्स क्रोमोसोम्स में हमेशा X क्रोमोसोम्स ही होते हैं। लड़की का जन्म महिला एवं पुरूष के दो X क्रोमोसोम्स के मिलने से एवं लड़के का जन्म महिला के X एवं पुरूष के Y क्रोमोसोम्स के मिलने से होता है।

इस प्रकार अब तक आप ने जाना कि आनुवांशिकता का मानव विकास में क्या भूमिका है। आइये अब पूर्वप्रसूतिकाल में विकास की अवस्थाओं के बारे में जानें।

पूर्वप्रसूतिकाल के दौरान विकास की अवस्थायें –

शुक्राणु एवं अंडाणु कोशिका के मिलते ही जाइगोट का निर्माण शुरू हो जाता है एवं जन्म से पूर्व तक इसका अलग–अलग आकारों में विभिन्न अवस्थाओं में विकास होता रहता है इन्हें निम्नांकित सारणी के माध्यम से भली प्रकार जाना जा सकता है।

पूर्वप्रसूतिकाल की अवस्थायें

अवस्था	गर्भधारणोपरान्त समय	अवस्था की प्रमुख गतिविधियाँ
जाइगोट (zygote) का काल	एक से दो सप्ताह	जाइगोट यूटेरस से जुड़ जाता है। एवं दो हफ्तों में यह इ वाक्य के अंतिम बिन्दु के बराबर हो जाता है।
एम्ब्रियो (embryo) का काल	3 से 8 सप्ताह	शरीर की संरचना एवं अंगो का के निर्माण का संकेत मिल लगता है। पहली अस्थि कोशिका दिखलाई पड़ने के साथ ही इ काल का अन्त हो जाता है। आठ हफ्तों के उपरान्त एम्ब्रियो ए इंच के बराबर लम्बा हो जाता है, एवं वनज 4 ग्राम।
भ्रूण(fetus)काल	9 सप्ताह से लेकर जन्म तक (38 सप्ताह)	इस दौरान अंगों का विकास जैसे हाथ, पैर, सिर एवं धड़ आ का विकास तीव्रता से होता है, वजन एवं लम्बाई बढ़ती जाती है।

4.5 शैशवावस्था में शारीरिक विकास एवं सीखना

शैशवावस्था में शारीरिक विकास बहुत ही तीव्रता से होता है। अपने जीवन के पहले साल में अच्छा पोषण प्राप्त होने पर शिशु अपने जन्म के वजन में तकरीबन तीन गुना (20 पौण्ड या 09 किलोग्राम) तथा शारीरिक लम्बाई में एक तिहाई (28 से 29 इंच, 71 से 74 सेंटीमीटर) की वृद्धि कर लेते हैं। यद्यपि शिशु जन्म के तुरंत बाद भोजन करने में सक्षम होते हैं बावजूद इसके एक समय में वे कितना पचा सकते हैं इसकी क्षमता उनमें सीमित होती है। उनका पेट एक समय में ज्यादा भोजन नहीं पचा सकता है। इसकी क्षतिपूर्ति वे दिन में कई बाद थोड़ा–थोड़ा भोजन ग्रहण करने के रूप में करते हैं। प्रायः शिशु प्रत्येक तीन से चार घण्टे में थोड़ा–थोड़ा भोजन ग्रहण करते हैं। जन्म के समय अपने शरीर के तापमान को नियंत्रित करने की शिशु में बहुत ही कम क्षमता होती है। यथार्थ तो यह है कि आठ से नौ महीने की आयु का होने तक वे अपने शरीर के सामान्य तापक्रम को मेंनटेन करने में भी असमर्थ होते हैं। इसलिए ऐसी अवस्था में उन्हें गर्म रखने के लिए माता–पिता को खास खयाल रखने की जरूरत होती है।

नवजात (The Neonate)– तुरंत जन्मे शिशु को नवजात कहा जाता है। इन शिशु गर्भावस्था से ही कुछ ऐसी अनुक्रियायें सीखे हुए होते हैं जो कि नवीन वातावरण में उनके

अनुकूलन के लिए आवश्यक होती हैं। इन्हें रिफ्लेक्स कहा जाता है। इन अनुक्रियाओं में चूसना, निगलना, छींकना–खांसना और ऑखें झपकाने की क्रिया शामिल होती है। नवजात किसी पीड़ादायक उद्दीपक से दूर होने के लिए अपने हाथ–पैर एवं अंग आदि हिला सकते हैं एवं जब उनके चेहरे पर कोई चादर अथवा कम्बल आ जाता है तब वे उसे हटा देते हैं। आप किसी शिशु के गालों को थपथपाइये व तुरंत ही दूध हेतु मॉ के स्तन ढूॅढ़ना शुरू कर देगा।नवजात द्वारा प्रदर्शित किये जाने वाले रिफ्लेक्सेस का वर्णन निम्नांकित सारणी में किया गया है।

रिफ्लेक्स (Reflex)	विवरण (Description)
ब्लिंकिंग (Bliniking)	शिशु प्रकाश के प्रति ऑख झपकाकर अनुक्रिया करता है।
रूटिंग (Rooting)	जब शिशु के गालों को स्पर्श अथवा थपथपाया जाता है तब वह स्पर्श की ओर घूम जाता है। तथा अपने होंठ एवं जीभ को चूषण हेतु हिलाता है।
सकिंग (Sucking)	जब निप्पल अथवा अन्य दूसरी वस्तु शिशु के मुख में रखी जाती है तो वह उसे चूसने (निगलने) लगता है।
टोनिक नेक (Tonic neck)	जब शिशु को पीठ के बल इस प्रकार लेटाया जाता है कि उसका सिर एक दिशा में घूमा हुआ हो तो शिशु अपनी बाहों एवं पैरों को उसी दिशा में फैला लेता है जिसमें उसका सिर होता है।
मोरो (Moro)	तीव्र आवाज होने पर अथवा सिर के अचानक लटक जाने पर शिशु तेजी से हाथ पैर पटकने लगता है।
बाबिन्सकी (Babinski)	जब शिशु के पैर को ऐड़ी से अॅगूठे तक थपथपाया जाता है तो उसके पैर की उॅगलियॉ एवं अॅगूठा फैल जाता है।
ग्रैस्पिंग (Grasping)	जब हाथ की हथेलियों को थपथपाया जाता है तक शिशु अपनी हथेलियों से थपथपाने हेतु इस्तेमाल की जाने वाली वस्तु को पकड़ लेता है।
स्टेप्पिंग (Stepping)	जब शिशु को उठाकर सीधा खड़ा किया जाता है तो वह एक पैर को जमीन पर रखकर दूसरे को उठाकर आगे बढ़ने की कोशिश करता है।

शैशवावस्था में प्रत्यक्षणात्मक विकास–

जन्म के समय से ही शिशु की सभी ज्ञानेन्द्रियॉ कार्य करना प्रारंभ कर देती हैं और उनमें कुछ खास तरह की गंध, स्वाद, ध्वनि एवं दृश्य वस्तुओं को महत्व देने की

प्रवृत्ति पायी जाती है। बसनेल के अनुसार बच्चों की सुनने की क्षमता देखने की क्षमता से कहीं अधिक विकसित होती है क्योंकि शिशु जन्म से पूर्व ही सुनना प्रारम्भ कर देता है। एक नवजात अपने सिर को आवाज की दिशा में घुमाने में सक्षम होता है एवं खास तौर पर वह महिलाओं की आवाज को ज्यादा महत्व देता है। पोरटर के अनुसार नवजात दर्द के प्रति संवेदनशील होते हैं एवं विशेष रूप से स्पर्श के प्रति अनुक्रियाशील होते हैं। थपथपाये एवं सहलाये जाने पर वे प्रतिक्रिया अवश्य करते हैं। जन्म के समय एक नवजात की दृष्टि 20/600 होती है एवं शायद ही कभी दो वर्ष का होने से पूर्व 20/20 हो पाती है। फील्ड के अनुसार नवजात लगभग 9 इंच दूर तक की वस्तुओं पर अपना ध्यान केंद्रित कर पाते हैं एवं वे धीरे–धीरे चलायमान वस्तु का पीछे भी जा सकते हैं। 22 से 93 घंटे तक की आयु के शिशु अपरिचित महिलाओं की तुलना में अपनी मॉ के चेहरे को अधिक महत्व देते हैं। ब्राउन के अनुसार यद्यपि नवजात शिशु धूसर रंग की वस्तुओं की तुलना में रंगीन वस्तुओं के प्रति अधिक आकर्षित होते हैं परन्तु वे दो माह के आयु का होने से पूर्व सभी रंगों के बीच भेद नहीं कर पाते हैं। गिब्सन एवं वॉक के अध्ययन के अनुसार जब बच्चे रेंगने की क्रिया में समर्थ हो जाते हैं उनमें गहराई की प्रत्यक्षण क्षमता विकसित हो जाती है।

शैशवावस्था में सीखना

शिशु कब से सीखना शुरू कर देते हैं यदि आप कहेंगे कि जन्म से, तो आप उन्हें कमतर ऑक रहे हैं। वे जन्म से पूर्व ही सीखना आरंभ कर देते हैं। मेल्टजॉफ एवं मूरे ने 1977 में किये गये अपने अध्ययन में पाया है कि 42 मिनट आयु के शिशु दूसरों द्वारा किये जा रहे जीभ को मुख से बाहर निकालने, एवं मुँह को खोलने एवं बन्द करने के व्यवहार का अनुकरण कर सकते हैं। इसके अलावा 42 घंटे की आयु के शिशु सिर के हिलने की गतिविधि का भी अनुकरण भली भॉति कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त 14 महीने के शिशु में प्रेक्षणीय अधिगम के प्रमाण भी प्राप्त होते हैं। मेल्टजॉफ ने 1988 के अपने एक प्रयोग में यह दिखलाया कि – जब शिशुओं को एक टेलीविजन कार्यक्रम में एक व्यक्ति द्वारा खिलौने को विशेष प्रकार से खेलते दिखलाया गया, तो 24 घंटे बाद वही खिलौना जब शिशुओं को दिया गया तो उन्होंने ने भी खिलौने को टेलीविजन पर दिखाये गये व्यक्ति की तरह खेला।

शैशवावस्था में पेशीय विकास–

जीवन के पहले कुछ वर्षों में शिशुओं का विकास बहुत तीव्रता से होता है। कुछ बदलाव परिपक्वता (maturation) की वजह से होते हैं एवं कुछ अधिगम (learning) के कारण। परिपक्वता शिशु के जैविक समय–सारणी के हिसाब से निर्धारित होती है। उदाहरण के लिए पेशीय विकास के बहुत से महत्वपूर्ण पड़ाव जैसे कि बैठना, खड़ा होना, चलना प्रमुख रूप से परिपक्वता का परिणाम होते हैं। लेकिन यह विकास धीमा हो जाता है जब शिशु को कुपोषण एवं मॉ से अलगाव आदि जैसे विपरीत परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। क्रास–सांस्कृतिक शोधों में यह दर्शाया गया है कि कुछ अफ्रीकी देशों जैसे कि यूगांडा और केन्या जहॉ कि बच्चों के पालन–पोषण के तरीके अफ्रीकी संस्कृति से ओतप्रोत हैं, वहॉ कि मातायें बच्चों के पेशीय विकास पर अमेरिकी माताओं की अपेक्षा अधिक ध्यान देती हैं एवं अपने शिशुओं के पेशीय विकास हेतु विशेष तकनीकी प्रशिक्षण का

उपयोग करती हैं जिससे उनके बच्चों का विकास अमेरिकी शिशुओं की तुलना में काफी तीव्र गति से होता है (किलब्राइड एवं किलब्राइड, 1975, सुपर, 1981)। आइये अब शैशवावस्था में शिशुओं के क्रमबद्ध विकास के बारे में जानें।

शिशु की आयु	शिशु का पेशीय विकास
2 माह	इस आयु में शिशु अपना सिर ऊपर उठाना शुरू कर देते हैं।
3 माह	करवट बदलना एवं तकिये की सहायता प्रदान करने पर बैठना शुरू कर देते हैं।
6 माह	छः माह की आयु में शिशु बिना तकिये की अवलम्बन के हर बैठने लगते हैं।
7 माह	सात माह की आयु में शिशु सहारा लेकर खड़े होना सीख लेते हैं।
9 माह	9 माह आते आते ये शिशु सहारे के साथ चलना शुरू कर देते हैं।
10 माह	दस माह की आयु में शिशु कभी–कभी बिना सहारे खड़े होने लगते हैं।
11 माह	ग्यारह माह की आयु में शिशु बिना सहारे के खड़े होने में समर्थ हो जाते हैं।
12 माह	बारह महीने की अवस्था में शिशु बिना अवलम्बन के अकेले चलने में समर्थ हो जाते हैं।
14 माह	14 महीने की आयु में ये इतने कुशल हो जाते हैं कि बिना पीछे देखे ही उल्टा चलने में भी समर्थ हो जाते हैं।
17 माह	इस आयु में शिशु सीढ़ियों पर चढ़ने लगते हैं।
18 माह	इस आयु में शिशु गेंद को अपने सामने की दिशा में किक करने में समर्थ हो जाते हैं।

4.6 शैशवावस्था एवं बाल्यावस्था में सांवेगिक विकास

संजना खुशमिजाज, सरल एवं स्वयं को परिस्थितियों में आसानी से ढाल लेती है। रोनित हमेशा लगा रहता है एवं किसी समस्या के सामने हल करने तक डटा रहता है, लेकिन बहुत ही आसानी से विचलित हो जाता है। उनके माता पिता कहते हैं कि दोनों शिशु हमेशा से ही ऐसे हैं। क्या दोनों बच्चे अलग–अलग व्यवहार शैली के साथ पैदा हुये हैं अथवा वातावरण के प्रति एक विशेष प्रकार के तरीके के साथ–जिसे की चित्तप्रकृति (temperament) कहा जाता है। थामस एवं उनके साथियों का यह विश्वास है कि व्यक्तित्व, चित्तप्रकृति एवं वातावरण के बीच लगातार होने वाली अंतःक्रिया के द्वारा खास रूप में ढल जाता है। यद्यपि वातावरण चित्तप्रकृति की जन्मजात विशेषता को तीव्र करने, मंद करने एवं परिमार्जित करने में सक्षम होता है बावजूद इसके चित्तप्रकृति लम्बे समय, वर्षों बीतने के बाद भी बच्चों में अपने मौलिक स्वरूप में विद्यमान रहती है। बच्चों की समायोजन क्षमता उनकी चित्त्प्रकृति एवं वातावरण के साथ उनकी व्यवहारात्मक

शैली पर निर्भर करती है। हार्ट, कैस्पी एवं सिल्वा आदि अनुसंधानकर्ताओं द्वारा किये गये अध्ययन के अनुसार जो बच्चे शैशवावस्था में अनियंत्रित अथवा आवेगशील होते हैं उन बच्चों में आगे चलकर किशोरावस्था में तीव्र संवेग के साथ आक्रामक होने, खतरा उठाने, एवं उद्विग्नता की प्रवृत्ति पायी जाती है। जिन बच्चों को बचपन में अत्यधिक नियंत्रित करने का प्रयास किया जाता है वे बच्चे किशोरावस्था में समाज से दूरी बनाने की प्रवृत्ति अपना लेते हैं। उनमें सामाजिकता की क्षमता नहीं पायी जाती उनमे दब्बूपन एवं नेतृत्व भूमिकाओं से बचने की प्रवृत्ति होती है एवं उनमें दूसरों को प्रभावित करने की इच्छा नहीं होती है।

भाषा विकास

जन्म के समय, शिशुओं के संचार का साधन उनका रोना होता है, लेकिन 17 वर्ष की आयु में एक औसत हाईस्कूल के छात्र के शब्दकोश में लगभग 80,000 शब्द होते हैं (मिलर एवं गिल्डिया, 1987)। 18 महीने की आयु से लेकर 5 वर्ष की अवस्था तक बच्चा प्रतिदिन 9 शब्द सीखने के औसत से 14,000 शब्दों का ज्ञान प्राप्त कर लेता है (राइस, 1989)।

लेकिन बच्चे अपने शब्दकोश में केवल नये शब्द ही नहीं जोड़ते बल्कि वे इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण कुछ करते हैं। जीवन के पहले 5 वर्षों में बच्चे शब्दों के अर्थ की समझ के विकास के साथ ही शब्दों से वाक्य रचना करना एवं उनका समाज में उपयोग करना भी सीखते हैं। बच्चे आश्चर्यजनक रूप से अपनी भाषा का ज्यादातर हिस्सा बिना किसी औपचारिक शिक्षा अथवा प्रशिक्षण के ही सीख लेते हैं।

भाषा विकास की अवस्थायें–

शिशुओं में भाषा विकास की दृष्टि से ध्वनि का उच्चारण दूसरे अथवा तीसरे माह से ही प्रारम्भ हो पाता है। इससे पूर्व की माह में तो शिशु केवल रो कर ही अपने तनाव एवं खुशी को अभिव्यक्त कर पाते हैं। भाषा विकास की क्रमिक अवस्थाओं का वर्णन निम्नांकित है।

कूजन एवं बबलाना (Cooing and Babbling stage) – दो से तीन माह की आयु में बच्चे कूजन ध्वनि करना प्रारंभ कर देते हैं। जिसमें में वे प्रायः 'अह' एवं 'वू' के स्वर का उच्चारण बार–बार करते हैं। लगभग छः माह का होने पर ये ही शिशु बबलाने की आवाज निकालना लगते हैं। कूजन एवं बबलाना मुख्य रूप से स्वर एवं व्यंज ही होते हैं जो कि किसी भी भाषा की मूल आवाज होते हैं, तथा मिलकर शब्दों का निर्माण करते हैं। स्वर एवं व्यंजन की संयुक्त रूप से बारम्बार उच्चारण एक श्रृंखला में होता है जैसे कि ''मा–मा–मा'' और ''बा–बा–बा''। तीन से लेकर आठ माह की आयु तक शिशु विश्व की भाषाओं मे पायी जाने वाली सभी मूल ध्वनियों का उच्चारण करते हैं। परन्तु आठ माह का होने पर उनका ध्यान केवल अपनी मातृभाषा पर ही केन्द्रित हो जाता है तथा वे अपना उच्चारण माता पिता के उच्चारण के समान ही करने का प्रयास करते हैं।

एक शब्द अवस्था (The One-Word Stage) – लगभग एक साल का होने पर शिशु अपने पहले वास्तविक शब्द का उच्चारण करता है। यह पहला शब्द गतिमान व्यक्तियों जैसे कि माता–पिता अथवा गतिमान वस्तुओं, जीवों जैसे कि बॉल या कुत्ता के लिये ही होता है। इन शब्दों में प्रायः'मम्मा', पापा, डैडी, कुत्ता, बाल आदि होते हैं (नेल्सन, 1973)। 13 से 18 महीने की आयु में बच्चों की शब्द सामर्थ्य का

काफी विकास हो जाता है एवं दो वर्ष की उम्र तक उनके शब्दकोश का आकार 270 शब्दों का हो जाता है (ब्राउन, 1973)। शब्द के उच्चारण के बावजूद बच्चे उनके अर्थ को वयस्कों की भॉति समझ नहीं पाते हैं एवं उनके दो प्रकार की कमियॉ दृष्टिगोचर होती हैं। 1 अतिविस्तारीकरण (overextention) एवं 2. सीमितीकरण (underextention)। अतिविस्तारीकरण के अंतर्गत बच्चे द्वारा प्रत्येक चार पैरों वाले प्राणी को कुत्ता कहने के उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है, यहॉ बच्चा केवल चार पैर देखकर, गधा, गाय, बिल्ली सभी को कुत्ता ही कहता है। वहीं सीमितीकरण के अन्तर्गत बच्चा अपने घर के कुत्ते को तो कुत्ता ही कहता है परन्तु पड़ोसी का कुत्ता भी कुत्ता ही है यह वह नहीं समझ पाता है।

द्वि–शब्द अवस्था और टेलीग्राफिक स्पीच (The Two-Word Stage and Telegraphic Speech) – लगभग 18 से 20 माह की आयु में जबकि बच्चे की शब्द–सामर्थ्य केवल 50 शब्दों की होती है बच्चे संज्ञा, क्रिया एवं विशेषण का प्रयोग दो शब्दों के वाक्य के रूप में करना शुरू कर देते हैं, जैसे कि 'मम्मा खाऊॅगा', पापा–टाफी। हालॉकि इस अवस्था में वाक्य में छिपे अर्थ को बताने के लिए उन्हें अपने शारीरिक संकेतों, हाव–भाव पर निर्भर रहना पड़ता है (स्लोबिन, 1972)। लगभग ढाई वर्ष की आयु होने पर बच्चे छोटे वाक्यों का उपयोग करना प्रारंभ कर देते हैं जिनमें तीन या तीन से ज्यादा शब्द हो सकते हैं। इसे ही रोजर ब्राउन द्वारा टेलीग्राफिक स्पीच कहा गया है। इस अवस्था में बच्चों में वाक्य रचना के नियमों की समझ का आरंभ हो जाता है।

व्याकरण के नियम उपयोग की अवस्था (Stage of Applying Grammatical rule) – टेलीग्राफिक स्पीच का कुछ समय तक अभ्यास करने से बच्चों में व्याकरण की समझ का विकास होने लगता है एवं वे शुद्ध वाक्य रचना करने लगते हैं वे वाक्यों में प्रत्यय, उपसर्ग, एवं, तथा, क्रिया, क्रियाविशेषण आदि का प्रयोग करना सीख जाते हैं। तथा वर्तमान काल, भूतकाल एवं भविष्यकाल की अभिव्यक्ति वाक्यों द्वारा करने लगते हैं।

बालक का सामाजिक विकास

समाज में उन्नत रूप से व्यवहार करने एवं सहज रूप से विकसित होने के लिए बच्चों के लिए उचित अनुचित व्यवहार की समझ होना अति आवश्यक है। इसके लिए सामाजीकरण की प्रक्रिया से गुजरना आवश्यक होता है। समाज द्वारा सहज स्वीकारणीय व्यवहारों, मनोवृत्तियों एवं मूल्यों को सीखने की प्रक्रिया ही सामाजीकरण कहलाती है। सामाजीकरण की इस प्रक्रिया में माता–पिता के अलावा संगी–साथियों, स्कूल, मीडिया एवं धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

सामाजीकरण में माता–पिता की भूमिका

बच्चों के सामाजीकरण में माता–पिता की भूमिका उदाहरण प्रस्तुतकर्ता के रूप में होती है। मैकोबी एवं मार्टिन के अनुसार बच्चों को सामाजिकता का कौशल सिखाने में वे माता पिता अधिक सफल होते पाये गये हैं जो कि अपने बच्चों के प्रति सहृदय, प्रेमपूर्ण, देखभालने वाले एवं समर्थन करने वाले होते हैं। फ्रैन्ज के अनुसार सत्य तो यह है कि एक दीर्घकालिक अनुसंधान जिसमें कि 5 वर्ष से लेकर 41 वर्ष की आयु तक व्यक्तियों का अध्ययन किया गया, में पाया गया कि जिन बच्चों के

माता–पिता उनके प्रति उत्साही एवं प्रेमपूर्ण थे वे बच्चे अपनी वयस्कावस्था में अर्थात् 41 साल की आयु में भी मानसिक रूप से अधिक स्वस्थ, चुनौतियों का बखूबी सामना करने वाले, एवं अपने कार्यों में, सम्बंधों में एवं उदारता में काफी बढ़े–चढ़े थे (फ्रैन्ज एवं उनके सहयोगी, 1991)। इसके विपरीत प्रकार के माता–पिता के बच्चों में कुसमायोजन के दोष पाये गये (मैकोबी, 1992)। सार रूप में माता–पिता की भूमिका से प्रभावित सामाजीकरण की वही प्रक्रिया प्रभावशाली मानी जाती है जिसका परिणाम बच्चों द्वारा आत्मानुशासन एवं स्वयं के व्यवहार के स्वनियमन के रूप में सामने आए।

सामाजीकरण की प्रक्रिया में संगी–साथियों की भूमिका (Peer relationships) –बहुत छोटी सी आयु में ही शिशु एक दूसरे में अपनी रूचि दिखलाना शुरू कर देते हैं। केवल छः माह की आयु में वे दूसरे शिशुओं में अपनी रूचि, उनकी ओर देखकर, पहुॅचने के प्रयास के रूप में, छूने, मुस्कराने एवं देखकर बोलने के रूप में अभिव्यक्त करते हैं (वान्डेल एवं म्यूलर, 1980)। तीन से चार वर्ष की आयु में मित्रता की शुरूआत होती है एवं संगी–साथियों के साथ संबंध अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाते हैं। मध्य बाल्यावस्था में एक बच्चे की खुशी उसके संगी–साथियों के समूह की सदस्यता के कारण होती है। ये समूह प्रायः समान जाति, लिंग एवं सामाजिक स्थिति वाले होते हैं। अपने हमउम्र साथियों के समूह में बच्चे अन्य साथियों के साथ भली प्रकार घुलना–मिलना सीखते हैं, सहयोग करना, भावों की अभिव्यक्ति करना, क्रोध पर नियंत्रण करना एवं सामाजिक व्यवहार कुशलता सीखते हैं।

4.7 किशोरावस्था – शारीरिक एवं मानसिक विकास

किशोरावस्था प्यूबर्टी की अवस्था से ही प्रारम्भ हो जाती है। प्यूबर्टी ऐसी अवस्था होती है जिसमें बड़ी ही तीव्रता से शारीरिक बदलाव होते हैं एवं ये बदलाव लैंगिक परिपक्वता में बदल जाते हैं। लड़कियों के लिए औसतन प्यूबर्टी की शुरूआत 10 वर्ष की आयु में एवं लड़कों के लिए 12 वर्ष की आयु में होती है। प्रत्येक बच्चे के किशोरावस्था में पहुॅचने का समय प्रमुख रूप से आनुवांशिक गुणों एवं वातावरणीय प्रभावों पर निर्भर करता है। प्यूबर्टी की शुरूआत हार्मोन्स के उत्पादन के साथ होती है एवं यह बहुत सारे शारीरिक बदलावों को जन्म देती है। लड़के एवं लड़कियों दोनों में ही प्रजनन अंगों का विकास होने लगता है एवं साथ ही अन्य गौण विशेषतायें भी परिलक्षित होने लगती हैं जो कि पुरूष एवं महिला के रूप में किशोरों की बाह्य पहचान कराती हैं, जैसे कि लड़कियों में स्तनों एवं कटि प्रदेश के नीचे नितंबों का विकास होने लगता है, लड़कों की आवाज में भारीपन तथा चेहरे पर दाढ़ी–मूॅछ और छाती पर बाल आने लगते हैं एवं दोनो ही लिंगों में बगल एवं प्रजनन अंगों में बालों का वर्धन शुरू हो जाता है।

प्यूबर्टी के समय का किशोरों के मानसिक विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। जिन बच्चों में अपने साथियों की अपेक्षा प्यूबर्टी की अवस्था जल्दी आ जाती है वे बच्चे अपने साथ के बच्चों की अपेक्षा ज्यादा लम्बे एवं ताकतवर हो जाते हैं जिसका असर उनकी शारीरिक गतिविधियों जैसे कि खेल आदि पर पड़ता है वे इन गतिविधियों में अन्य बच्चों से आगे निकल जाते हैं। परिणामस्वरूप ये बच्चे आत्मविश्वास से भरपूर होते हैं एवं प्रायः अपनी शिक्षा में उत्तम प्रदर्शन करते हैं।

वहीं जिन बच्चों में किशोरावस्था देर से आती है वे बच्चे अपने साथी बच्चों की दृष्टि में पिछड़े एवं कमजोर पड़ जाते हैं जिसके कारण उनमें आत्मविश्वास की कमी एवं पढ़ाई में पिछड़ापन दिखलाई देने लगता है। पियाजे के संज्ञानात्मक सिद्धान्त के अनुसार किशोरावस्था, औपचारिक संक्रिया की अवस्था होती है। इस अवस्था में किशोर तार्किक सोच के नियमों को समझने लगता है वह जटिल समस्याओं का समाधान, परिकल्पित रूप से करने में सक्षम होने लगता है।

अभ्यास प्रश्न

1 – मानव विकास की अवस्थायें कौन सी हैं?

2 – शैशवावस्था में शारीरिक विकास को समझाइये।

3 – मानव विकास के अध्ययन की प्रमुख विधियों की व्याख्या कीजिए।

4 – जन्म के तुरन्त बाद शिशु द्वारा अभिव्यक्त किये जाने वाले रिफ्लेक्सेस के नाम बताइये है?

5 – किशोरावस्था में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों का वर्णन करें।

4.8 सारांश

मानव का विकास क्रमानुसार सम्पन्न होता है तथा इसके क्रम में प्रत्येक व्यक्ति को जन्म के उपरान्त शैशवावस्था, तदनुपरान्त बाल्यावस्था एवं उसके उपरान्त किशोरावस्था से गुजरना पड़ता है। इन अवस्थाओं में न केवल व्यक्ति का शिशु, बालक एवं किशोर के रूप में शारीरिक विकास होता है बल्कि उसका मानसिक–संज्ञानात्मक एवं भावनात्मक विकास भी साथ ही साथ होते हुए चलता है। शारीरिक विकास की शुरूआत शिशु द्वारा रिफ्लेक्सेस की अनुक्रिया के साथ ही प्रारम्भ हो जाती है तथा शिशु अपने वर्धन के साथ ही आठ से नौ माह की अवस्था में शारीरिक तापमान को नियमित करने में सक्षम हो जाता है इसी के साथ ही उसका पेशीय विकास भी होता रहता है तथा उलटने पलटने से शुरूआत करते हुए वह दो वर्ष की आयु पूरी होते होते चलना भी सीख जाता है। इसे बाद बाल्यावस्था में शरीर में लम्बाई एवं वजन में वृद्धि के अलावा अन्य कोई विशेष शारीरिक बदलाव दृष्टिगोचर नहीं होता है एवं विकास की यात्रा में मुख्य बदलाव संज्ञानात्मक–मानसिक एवं भावनात्मक विकास के रूप में परिलक्षित होता है। लगभग 12 वर्ष की अवस्था में बालक किशोरावस्था में प्रवेश करता है तथा इस अवस्था में उसे महत्वपूर्ण शारीरिक बदलावों एवं चित्तप्रकृति का विकास, मनोदशा में बदलाव अपनी पहचान आदि से जूझना पड़ता है। इन सभी का उसके व्यक्तित्व विकास पर गहरा असर पड़ता है। इस इकाई के अध्ययन से इन्हीं जिज्ञासाओं का समाधान होता है।

4.9 पारिभाषिक शब्दावली

नवजात (Neonate)– तुरंत जन्मे शिशु को नवजात कहा जाता है। इन शिशु गर्भावस्था से ही कुछ ऐसी अनुक्रियायें सीखे हुए होते हैं जो कि नवीन वातावरण में उनके अनुकूलन के लिए आवश्यक होती हैं। इन्हें रिफ्लेक्स कहा जाता है। इन अनुक्रियाओं में चूसना, निगलना, छींकना–खांसना और ऑखें झपकाने की क्रिया शामिल होती है।

शैशवावस्था (Infancy)– जन्म से लेकर तीन वर्ष की आयु तक शैशवावस्था मानी जाती है।

बाल्यावस्था (Childhood) – चार वर्ष की उम्र से लेकर 12 वर्ष की उम्र तक बाल्यावस्था का समय होता है।

किशोरावस्था (Adolescence) – 13 से 17 वर्ष की आयु तक किशोरावस्था का काल माना जाता है।

प्यूबर्टी (Puberty) – बाल्यावस्था के उपरान्त शारीरिक मानसिक एवं भावनात्मक विकास की एक महत्वपूर्ण अवस्था जिसमें महत्वपूर्ण शारीरिक परिवर्तन होते हैं जैसे कि बालकों के जननांगों का विकास, गुप्तांगों पर बालों का वर्धन, लड़कियों के स्तनों एवं कटिप्रदेश का विकास, लड़कों की आवाज में भारीपन आदि।

4.10 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

उत्तर 1– गर्भावस्था (prenatal stage) –गर्भाधान से लेकर जन्म तक, शैशवावस्था (infancy stage) -जन्म से तीन वर्ष की आयु तक, बाल्यावस्था (childhood stage) - चौथे वर्ष से 12 वर्ष की आयु तक, किशोरावस्था (adolescence stage) –13 वर्ष से 17 वर्ष तक, वयस्कावस्था (adulthood stage) –18 वर्ष से लेकर मृत्यु तक की अवस्थायें मानव विकास की प्रमुख अवस्थायें हैं। इन अवस्थाओं का निश्चित क्रम होता है तथा एक अवस्था को पारकर ही दूसरी अवस्था में पहुॅचना संभव होता है।

उत्तर 2– शैशवावस्था में शारीरिक विकास बहुत ही तीव्रता से होता है। अपने जीवन के पहले साल में अच्छा पोषण प्राप्त होने पर शिशु अपने जन्म के वजन में तकरीबन तीन गुना (20 पौण्ड या 09 किलोग्राम) तथा शारीरिक लम्बाई में एक तिहाई (28 से 29 इंच, 71 से 74 सेंटीमीटर) की वृद्धि कर लेते हैं। यद्यपि शिशु जन्म के तुरंत बाद भोजन करने में सक्षम होते हैं बावजूद इसके एक समय में वे कितना पचा सकते हैं इसकी क्षमता उनमें सीमित होती है। उनका पेट एक समय में ज्यादा भोजन नहीं पचा सकता है। इसकी क्षतिपूर्ति वे दिन में कई बाद थोड़ा–थोड़ा भोजन ग्रहण करने के रूप में करते हैं। प्रायः शिशु प्रत्येक तीन से चार घण्टे में थोड़ा–थोड़ा भोजन ग्रहण करते हैं। जन्म के समय अपने शरीर के तापमान को नियंत्रित करने की शिशु में बहुत ही कम क्षमता होती है। यथार्थ तो यह है कि आठ से नौ महीने की आयु का होने तक वे अपने शरीर के सामान्य तापक्रम को मेंनटेन करने में भी असमर्थ होते हैं। इसलिए ऐसी अवस्था में उन्हें गर्म रखने के लिए माता–पिता को खास खयाल रखने की जरूरत होती है।

उत्तर 3– दीर्घकालिक अध्ययन (Longitudinal study)विधि – इस विधि में प्रतिभागियों के एक ही समूह का अलग–अलग आयु में अनुवर्तन (फॉलोअप) कर अध्ययन किया जाता है, एवं इस कार्य में कई वर्षों का समय लगता है। इसीलिए इसे दीर्घकालिक अध्ययन विधि कहा जाता है।

क्राससेक्शनल अध्ययन (Cross-sectional study) विधि – यह विधि कम खर्चीली एवं कम समय–साध्य होती है जिसके अन्तर्गत अनुसंधानकर्ता अलग–अलग आयु के प्रतिभागियों के कई समूह विनिर्मित कर उनके बीच आयु आधारित परिवर्तनों एवं भिन्नताओं का तुलनात्मक अध्ययन कर लेता है।

उत्तर 4– ब्लिंकिंग (Bliniking), रूटिंग (Rooting), सकिंग (Sucking), टोनिक नेक (Tonic neck), मोरो (Moro), बाबिन्सकी (Babinski), ग्रैस्पिंग (Grasping),

एवं स्टेप्पिंग (Stepping) प्रमुख रिफ्लेक्सेस हैं जिनकी अभिव्यक्ति शिशु जन्म के पश्चात तुरंत कर सकता है।

उत्तर 5 – किशोरावस्था प्यूबर्टी की अवस्था से ही प्रारम्भ हो जाती है। प्यूबर्टी ऐसी अवस्था होती है जिसमें बड़ी ही तीव्रता से शारीरिक बदलाव होते हैं एवं ये बदलाव लैंगिक परिपक्वता में बदल जाते हैं। लड़कियों के लिए औसतन प्यूबर्टी की शुरूआत 10 वर्ष की आयु में एवं लड़कों के लिए 12 वर्ष की आयु में होती है। प्यूबर्टी की शुरूआत हार्मोन्स के उत्पादन के साथ होती है एवं यह बहुत सारे शारीरिक बदलावों को जन्म देती है। लड़के एवं लड़कियों दोनों में ही प्रजनन अंगों का विकास होने लगता है एवं साथ ही अन्य गौण विशेषतायें भी परिलक्षित होने लगती हैं जो कि पुरूष एवं महिला के रूप में किशोरों की बाह्य पहचान कराती हैं, जैसे कि लड़कियों में स्तनों एवं कटि प्रदेश के नीचे नितंबों का विकास होने लगता है, लड़कों की आवाज में भारीपन तथा चेहरे पर दाढ़ी–मूँछ और छाती पर बाल आने लगते हैं एवं दोनो ही लिंगों में बगल एवं प्रजनन अंगों में बालों का वर्धन शुरू हो जाता है।

4.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

डॉ महेन्द्र कुमार मिश्रा (2007) विकासात्मक मनोविज्ञान, जयपुर – यूनीवर्सिटी बुक हाउस।
रॉबर्ट ए. बैरोन (2006) साइकोलॉजी, दिल्ली – पियर्सन प्रेंटिस हाल।
सैमुअल वुड एवं एलेन वुड (2000) द इसेंशियल वर्ल्ड ऑफ साइकोलाजी, यू एस ए– एलिन एण्ड बेकन।

4.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. मानव जीवन के विकासक्रम की विस्तारपूर्वक व्याख्या कीजिए।

इकाई –5 बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था में मानसिक विकास

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 मानसिक विकास की अवधारणा

5.4 शैशवावस्था एवं बचपन में मानसिक विकास

5.4.1 मानसिक विकास का पियाजे का सिद्धान्त

5.4.2 मानसिक विकास का विगोत्सकी द्वारा प्रतिपादित सामाजिक सांस्कृतिक सिद्धान्त

5.4.3 बच्चों के मन का सिद्धान्त

5.5 किशोरावस्था में मानसिक विकास

5.5.1 यथार्थ उपागम

5.5.2 संबंधात्मक उपागम

5.5.3 रक्षात्मक–वास्तविकता उपागम

5.5.4 डॉग्मेटिज्म–स्केप्टिसिज्म

5.5.5 संशयोपरान्त तर्कवाद

5.6 भाषा विकास

5.7 सारांश

5.8 पारिभाषिक शब्दावली

5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

5.11 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पूर्व मानव जीवन का विकास नामक इकाई में मानव जीवन में विकास के विभिन्न आयामों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त की। परन्तु इस विस्तृत विवरण को प्राप्त करने के बाद भी बच्चों एवं किशारों के मानसिक विकास से संबंधित गंभीर प्रश्न अनुत्तरित ही रह गए। इन अनुत्तरित प्रश्नों में बच्चों एवं किशोरों की संप्रत्ययीकरण की क्षमता, समस्या समाधान की क्षमता, तर्क करने की क्षमता, तथा आयु विशेष में इनके क्रमिक विकास की अवस्थाओं का विकास आदि सम्मिलित हैं। अत: आद्योपान्त रूप से बच्चों एवं किशोरों से संबंधित विभिन्न प्रश्नों एवं जिज्ञासाओं का समाधान इस इकाई के अध्ययन द्वारा आपको प्राप्त होगा।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- संज्ञानात्मक विकास के बारे में ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- बच्चों में संज्ञानात्मक विकास की विभिन्न अवस्थाओं के बारे में जानेंगे।
- बच्चों के मानसिक विकास को प्रमुख मनोवैज्ञानिकों के दृष्टिकोण से भली प्रकार समझ सकेंगे।

6. किशोरावस्था में किशोरों की चिन्तन प्रक्रिया का व्यावहारिक विश्लेषण कर सकेंगे।
7. बच्चों एवं किशोरों के मानसिक विकास के कारकों के बारे में जानेंगे एवं उनकी तर्कपूर्ण तथा अनुभवजन्य व्याख्याकर सकेंगे।

5.3 मानसिक विकास की अवधारणा

मानसिक विकास, मानव विकास का एक महत्वपूर्ण आयाम है। इसके महत्व का अंदाजा इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि मानसिक विकास के बिना मानव का विकास सही अर्थों में प्रारम्भ ही नहीं हो पाता है। मानसिक विकास के समानान्तर शब्द के रूप में समझ के विकास को समझा जा सकता है, या यूँ कहा जा सकता है कि मानव में समझ का विकास ही उसके मानसिक विकास का द्योतक है।

मानव विकास एक सतत् प्रक्रिया है। विकास की सभी अवस्थाओं में यह सतत् रूप से चलती है। पहले तर्क के प्रारम्भ से ही उत्तरोत्तर मानसिक विकास में निरन्तर प्रगति होती रहती है। मानसिक विकास को समझने के लिए मानसिक विकास के क्षेत्र को समझना अति आवश्यक है। अर्थात् मानसिक विकास के विभिन्न तत्वों के बारे में जानना जरूरी है। तर्क, चिन्तन, भाषा, संकल्पना, बुद्धि, स्मृति, सीखने की क्षमता, समस्या समाधान आदि मानसिक विकास के विभिन्न तत्व हैं। मानसिक विकास स्वतंत्र रूप से कुछ नहीं है। बालक की क्रिया–प्रतिक्रिया से उत्पन्न व्यवहार के द्वारा ही बालक के मानसिक विकास का पता चलता है।

संक्षेप में मानव में समझ का विकास ही उसके मानसिक विकास को परिलक्षित करता है। समझ की अभिव्यक्ति मनुष्य अपनी सभी अवस्थाओं जैसे कि बचपन, कैशौर्य, वयस्क आदि में अपने उत्तरोत्तर क्रिया–व्यवहार द्वारा करता है।

निष्कर्ष रूप में हमारे संसार को समझने की हमारी क्षमता में निरंतर प्रगति उन्मुखी बदलाव ही मानसिक विकास है।

5.4 शैशवावस्था एवं बचपन में मानसिक विकास

मानसिक विकास को संज्ञानात्मक विकास के अध्ययन द्वारा भली प्रकार समझा जा सकता है। तकनीकी रूप में संज्ञानात्मक विकास ही मानसिक विकास है। संप्रत्यय निर्माण, सोचना, तर्क करना, याद रखना, विश्लेषण करना, निर्णय करना यह सब संज्ञानात्मक विकास की ही प्रक्रियाये हैं। इन प्रक्रियाओं को भली प्रकार समझने हेतु मनोवैज्ञानिकों ने बहुत से अनुसंधान किए हैं। इन मनोवैज्ञानिकों में जीन पियाजे , विगोत्सकी, बर्ट तथा ब्लूम का कार्य अति महत्वूर्ण माना गया है।

सैद्धान्तिक दृष्टि में मानसिक विकास

मनोवैज्ञानिकों के सिद्धान्तों के आलोक में मानसिक विकास को तर्कपूर्ण ढंग से समझा जा सकता है। इस क्रम में सर्वप्रथम सिद्धान्त – जीन पियाजे की थ्योरी ऑफ कॉग्निटिव डेवलपमेंट है। इसका वर्णन निम्न है।

5.4.1 मानसिक विकास का पियाजे का सिद्धान्त

जीन पियाजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त प्रमुख रूप से बच्चों एवं किशोरों के संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाओं पर प्रकाश डालता है। पियाजे का यह सिद्धान्त अवस्था सिद्धान्त कहलाता है क्योंकि इस सिद्धान्त में एक अवस्था से दूसरी अवस्था तक होने वाला विकास पहली अवस्था के विकास पर निर्भर करता है। अर्थात् एक अवस्था का विकास होने पर ही दूसरी अवस्था में विकास का होना संभव है। इस सिद्धान्त के अनुसार पूर्ण संज्ञानात्मक विकास के लिए प्रत्येक व्यक्ति को इन अवस्थाओं को क्रमशः उत्तरोत्तर क्रम में पार करना पड़ता है। यदि किसी कारण से किसी अवस्था में विकास अवरूद्ध होने की स्थिति में उससे ऊपर की अवस्था में संज्ञानात्मक विकास नहीं हो पाता है।

पियाजे द्वारा निर्मित संज्ञानात्मक विकास की विभिन्न अवस्थाओं की सारणी निम्न है।

अवस्था (Stage)	आयु (Age)	मुख्य उपलब्धियॉ (major accomplishments)
संवेदी–पेशीय अवस्था (Sensorimotor stage)	0 से 2 वर्ष	बच्चे में कारण–प्रभाव एवं वस्तु स्थिरता की समझ (The child develops basic ideas of cause and effect and object permanence)
प्राक्संक्रियात्मक अवस्था (Preoperational stage)	2 से 6 या 7 वर्ष	बच्चा संसार को संकेतो एवं प्रतीकों से समझना शुरू कर देता है। (The child begins to represent the world symbolically)
ठोस संक्रिया की अवस्था	7 से 11 या 12	बच्चे का संरक्षण के सिद्धान्तों को समझना

(Concrete operations stage)	वर्ष	प्रारम्भ करना। तार्किक विचारों की उत्पत्ति।(The child gains understanding of principles such as conservation: logical thought emerges.)
औपचारिक संक्रिया की अवस्था (Formal operations stage)	12 से वयस्क	किशोर का तार्किक विचारों के विभिन्न स्वरूपों को समझने में सक्षम होना। (The adolescent becomes capable of several forms of logical thought.)

इन अवस्थाओं को समझने के लिए पियाजे के सिद्धान्त की मूलकल्पनाओं को समझना आवश्यक है। इस सिद्धान्त की निम्नांकित चार मूलकल्पनायें हैं।

1. मानव शिशु जन्म से ही वातावरण में घटने वाली घटनाओं के अनिश्चितता से बचने एवं दूर करने के लिए अनुकूलन करता है।
2. जब बालकों के सामने कोई ऐसी घटना घटती है जिसे उसका पहले कभी अनुभव नहीं हुआ है तो इससे उसमें एक तरह संज्ञानात्मक असंतुलन (cognitive disequilibrium) उत्पन्न हो जाता है जिसे वह आत्मसात्मकरण (assimilation) तथा समायोजन (accommodation) की प्रक्रिया अपनाकर संतुलित करता है।
3. संतुलन की यह प्रक्रिया सिर्फ बालकों की पिछले अनुभवों पर ही निर्भर नहीं करती है बल्कि उनके शारीरिक विकास, स्नायुओं की क्षमता पर भी निर्भर करती है।
4. संतुलन का प्रभाव यह होता है कि बालकों की संज्ञानात्मक संरचना उन्नत हो जाती है जिसके कारण संज्ञानात्मक विकास की चारों अवस्थाओं में उनका विकास सहज होता है।

(1) संवेदी–पेशीय अवस्था (Sensorimotor Stage) –यह अवस्था जन्म से दो वर्ष तक की होती है। इस अवस्था में शिशुओं में अन्य क्रियाओं के अलावा वस्तुओं को शरीर द्वारा इधर–उधर करना, वस्तुओं की पहचान करने की कोशिश करना, किसी चीज को पकड़ना और प्रायः उसे मुँह में डालकर अध्ययन करना प्रमुख है।

–जन्म से 30 दिन तक की आयु में बालक अँगूठा आदि चूसने आदि की प्रतिवर्त क्रियायें (reflex activities) ही प्रमुख रूप से करता है।

– एक से चार महीने की आयु में शिशुओं की प्रतिवर्त क्रियाओं में उनकी अनुभूतियों के आधार पर कुछ बदलाव आता है और वे अधिक समन्वित हो जाती हैं।

–चार से आठ महीने की आयु में शिशु वस्तुओं को उलटने–पलटने तथा छूने पर अधिक ध्यान देता है।

–आठ से बारह महीने की आयु में बालक लक्ष्यवस्तु तथा उस तक पहुँचने के साधन में अन्तर करना प्रारम्भ कर देता है। जैसे यदि किसी ने खिलौना छिपा दिया है तो वह उसके लिए वस्तुओं को इधर उधर हटाते हुए खोज जारी रखता है। इस अवधि में शिशु वयस्कों द्वारा किये जा रहे कार्यों का अनुकरण करना भी प्रारम्भ कर देता है।

–12 से 18 महीने की आयु में बालक वस्तुओं की विशेषताओं का ज्ञान प्रयत्न एवं त्रुटि (trail and error) विधि से प्राप्त करने की कोशिश करता है। इस अवस्था में उसकी स्वयं की शारीरिक क्रियाओं में रूचि कम हो जाती है तथा वह वस्तुओं पर प्रयोग करना शुरू कर देता है। जिज्ञासा एवं उत्सुकता बढ़ जाती है। वह वस्तुओं को ऊपर से नीचे गिराकर, फेंककर उसके बारे में जानने की कोशिश करते हैं।

–18 महीने से 24 महीने की आयु में बालक वस्तुओं में बारे में चिन्तन प्रारम्भ कर देता है। इस अवधि में बालक उन वस्तुओं के प्रति भी अनुक्रिया करना प्रारम्भ कर देता है जो सीधे दृष्टिगोचर नहीं होती है। इस गुण को वस्तु स्थायित्व (object permanence) कहा जाता है। दूसरे शब्दों में , बालक 3–4 महीने की आयु में जो यह सोचते थे कि जब कोई वस्तु उनके सामने होती है तब उसका अस्तित्व बना होता है परन्तु जब वस्तु उनके सामने से हट जाती है तब उसका अस्तित्व भी खत्म हो जाता है, को अब वे गलत समझने लगते हैं। परन्तु अब उसका चिन्तन अधिक वास्तविक हो जाता है और वह अब यह सोचता है कि जब वस्तु उसके सामने नहीं भी होती है तो भी उसका अस्तित्व बना रहता है। इसे ही वस्तु स्थायित्व का गुण कहा जाता है।

(2) प्राक्संक्रियात्मक अवस्था (Preoperational Stage) – संज्ञानात्मक विकास की यह अवस्था दो से सात साल की होती है। यह प्रारम्भिक बाल्यावस्था की अवस्था होती है। इसे पियाजे ने दो अवस्थाओं में बॉटा है। 1. प्राक्संप्रत्यात्मक अवधि (Preconceptual period) तथा 2. अन्तर्दर्शी अवधि (Intutive period)।

प्राक्संप्रत्यात्मक अवधि– यह अवधि दो से चार वर्ष की होती है। इस अवस्था में बालक सूचकता विकसिकत कर लेते हैं। सूचकता (signifiers) से तात्पर्य यह होता है कि बालक यह समझने लगते हैं कि वस्तु, शब्द, कल्पना, तथा चिन्तन–विचार किस चीज के लिए किया जाता है। उन्होंने दो तरह की सूचकता पर बल डाला है। संकेत (symbol) तथा चिह्न (sign)। किसी दृश्य ठोस वस्तु के मानसिक रूप का दूसरा नाम भी संकेत है। संकेत तथा उस ठोस वस्तु में बहुत सादृश्यता होती है। उदाहरण के लिए जब बच्चा अपनी मॉ की आवाज सुनता है तब उसके मन में मॉ का रूप या प्रतिमा बनती है, जो संकेत का उदाहरण है। ठोस वस्तुओं के लिए प्रयुक्त शब्द अथवा भाषा उनके चिह्न कहलाते हैं। पियाजे के अनुसार अनुकरण की प्रक्रिया द्वारा बच्चे सूचकता को सीखते हैं। उदाहरण के लिए बच्चा जब अपने पिता को पुस्तक को पुस्तक कहने का अनुकरण करता है, तो धीरे–धीरे पुस्तक एवं उसके अर्थ को समझ जाता है। खेल के द्वारा भी बच्चे सूचकता के अर्थ को भली प्रकार समझते हैं।

इस अवधि में बच्चों के मानसिक विकास की दो प्रमुख कमियॉ भी दृष्टिगोचर होती हैं।

– पहली यह किइस अवधि में बच्चों में जीववाद (Animism) उत्पन्न होता हैं। जीववाद अर्थात् बच्चा निर्जीव किन्तु गतिमान वस्तुओं (पंखा, कार, हवा, बादल) को भी स्वयं के समान सजीव समझता है।

–दूसरी कमी आत्मकेंद्रण (Egocentrism) के रूप में सामने आती है। इसमें बच्चा केवल अपनी सोच को ही सही मानता है। उसे कुछ इस प्रकार का विश्वास हो जाता है कि दुनिया की अधिकतर चीजें उसके इर्द–गिर्द घूमती रहती हैं। जैसे वह तेजी से दौड़ता है, तो सूरज भी तेजी से चलना शुरू कर देता है। उसका गुड्डा वही देखता है जो वह देख

रहा है। पियाजे ने यह भी बताया है कि जैसे–जैसे बच्चों का सम्पर्क का दायरा अन्य बच्चों के साथ बढ़ता है, आत्मकेंद्रण कम होता जाता है।

अन्तर्दशीय अवधि– यह अवधि 4 साल की आयु से लेकर 7 वर्ष की अवस्था तक होती है। इस अवधि में बच्चों का चिन्तन एवं तर्कशक्ति में पहले की अपेक्षा अधिक बेहतर हो जाती है। बच्चा जोड़, घटाव, गुणा, भाग जैसी मानसिक क्रियायें आसानी से करने लगता है। परन्तु इन क्रियाओं के पीछे के सिद्धान्त को वह नहीं समझ पाता है। अन्तर्दशी चिन्तन एक ऐसा चिन्तन होता है जिसमें कोई क्रमबद्ध तर्क नहीं होता है। इस उम्र के बच्चों के चिन्तन में प्रक्रियाओं को उलटकर समझने की विशेषता नहीं होती है। जैसे बच्चा यह तो समझता है कि $2x2 = 4$ हुआ परन्तु $4/2 = 2$ कैसे हुआ, यह वह नहीं समझ पाता है।

3. ठोस संक्रिया की अवस्था (Stage of concrete operation) – यह अवस्था 7 वर्ष की उम्र से प्रारम्भ होकर 12 वर्ष की उम्र तक चलती है। इस अवस्था में बालक ठोस वस्तुओं को मानसिक प्रक्रिया द्वारा मन में परिचालित कर उनसे जुड़ी समस्या का समाधान खोज लेते हैं। परन्तु उन वस्तुओं को उपस्थित न कर यदि उन्हें भाषा का प्रयोग कर समस्या उपस्थित की जाती है तो वे ऐसी समस्याओं पर मानसिक संक्रिया कर किसी परिणाम पर नहीं पहुँच पाते हैं।

उदाहरण के लिए यदि उन्हें तीन वस्तुएं 'अ', 'ब', 'स' दी जाएँ तो उन्हें देखकर वे यह आसानी से बता देंगें कि इनमें अ, ब से बड़ा है और 'ब', 'स' से बड़ा है। अतः सबसे बड़ा 'अ' हुआ। परन्तु यदि उनसे यह कहा जाये कि कमला, विमला से बड़ी है और विमला बड़ी है सपना से तो तीनों में सबसे बड़ी कौन है? तो वे इसका उत्तर देने में असमर्थ रहते हैं। इसका कारण यह है कि इस समस्या में ठोस संक्रिया संभव नहीं है, क्योंकि समस्या शाब्दिक कथन के रूप में उपस्थित की गई है। इस अवस्था में बालको के चिन्तन में प्रक्रियाओं के उलटकर निष्कर्ष पर पहुँचने की योग्यता विकसित हो जाती है। जैसे अब बच्चे यह समझने लगते हैं कि कि $2x2 = 4$ हुआ तो $4/2 = 2$ कैसे हुआ।

इस अवस्था में बच्चों में तीन महत्वपूर्ण नियमों की समझ उत्पन्न हो जाती हैं।

1– संरक्षण (conservation), 2– संबंध (relation), 3– वर्गीकरण (classification)। इस अवस्था में बच्चा द्रव, लम्बाई, भार तथा तत्व के संरक्षण को समझने लगता है वह यह समझ जाता है कि मिट्टी एवं मिट्टी से बना बर्तन दोनों तत्वतः एक ही हैं तथा समान मात्रा में गीली मिट्टी से बनाये गये घड़े को यदि खिलौने का स्वरूप दे दिया जाय तब भी उसका भार उतना ही रहता है और वह तत्व रूप में मिट्टी ही होता है। वे क्रमिक संबंधों से संबंधित समस्याओं का भी समाधान करते पाये जाते हैं। उनमें दी गई वस्तुओं को उनकी लम्बाई या वनज के अनुसार घटते क्रम या बढ़ते क्रम में व्यवस्थित करने की क्षमता विकसित हो जाती है। इसे पंक्तिबद्धता (seriation) कहा जाता है। इसी प्रकार इस अवस्था में बच्चों में वस्तुओं की विशेषताओं के आधार पर उसे किसी एक वर्ग या उपवर्ग में बॉटने की समझ भी विकसित हो जाती है।

4. औपचारिक संक्रिया की अवस्था (Stage of formal operation)–

यह अवस्था 11 वर्ष की उम्र से प्रारम्भ होकर वयस्कावस्था तक चलती है। इस अवस्था में किशोरों के चिन्तन में अधिक लचीलापन आ जाता है। अब वे परिकल्पनाओं का निर्माण करने में सक्षम हो जाते हैं। अब वे समस्याओं के परिकल्पित समाधान खोज लेने में समर्थ हो जाते हैं। इस अवस्था में समस्या के समाधान के लिए समस्या से संबंधित वस्तुओं को

ठोस रूप में उपस्थित होने की आवश्यकता नहीं होती है। किशोरों का चिन्तन अधिक वास्तविक व वस्तुनिष्ठ हो जाता है। पियाजे के अनुसार इस अवस्था में बदलाव तेजी से होते हैं एवं इसका विकास शिक्षा से सीधे रूप में प्रभावित होता है। जिन बालकों को अच्छी शिक्षा प्राप्त नहीं हो पाती है उनमें इस प्रकार की मानसिक संक्रिया काफी निम्नस्तरीय होती है। परन्तु जिस बालका का शिक्षा स्तर उच्च होता है उसकी मानसिक संक्रियाये उत्तम होती हैं।

5.4.2 मानसिक विकास का विगोत्सकी द्वारा प्रतिपादित सामाजिक सांस्कृतिक सिद्धान्त (Sociocultural theory of cognitive development)–

विगोत्सकी द्वारा सन् 1987 में प्रतिपादित संज्ञानात्मक विकास का सामाजिक सांस्कृतिक सिद्धान्त पियाजे के मानसिक विकास के सिद्धान्त की मूल विचार के विपरीत दृष्किोण प्रस्तुत करता है। यह सिद्धान्त बच्चों के मानसिक विकास की व्याख्या करने वाला एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त पियाजे के अवस्था सिद्धान्त से भिन्न है। अवस्था सिद्धान्त में पियाजे ने माना है कि प्रत्येक बालक को क्रमानुसार मानसिक विकास की उच्च अवस्थाओं में पहुॅचने के लिए पूर्व की अवस्थाओं से गुजरना आवश्यक होता है। हालॉकि गोपनिक आदि अनुसंधानकर्ताओं द्वारा प्राप्त शोध परिणाम बतलाते हैं कि मानसिक विकास से संबंधित संज्ञानात्मक बदलाव काफी धीरे–धीरे होते हैं, और ऐसा बहुत ही कम होता है कि किसी एक अवस्था में अनुपस्थित विशेषता दूसरी अवस्था में प्रवेश करते ही अचानक से दिखलायी पड़ने लगती हो। वरन इन विकासात्मक बदलावों के अलग अलग दायरे होते हैं, बच्चे किसी चिन्तन के किसी एक दायरे में अधिक कुशल हो सकते हैं एवं वहीं किसी अन्य में कमजोर हो सकते हैं। जैसा कि हमने जाना कि पियाजे के अनुसार बच्चों में 'समझ का विकास' उनके द्वारा उनके वातावरण में उपस्थित वस्तुओं के साथ सक्रियता पूर्वक किये गये उनके प्रयास एवं परिपक्वता के विकास का परिणाम होता है। यहॉ प्रयास से तात्पर्य बच्चों द्वारा वस्तुओं के साथ किये गये व्यवहार एवं क्रियाओं से होता है।

विगोत्सकी के सामाजिक सांस्कृतिक सिद्धान्त की विशेषता–

विगोत्सकी का सिद्धान्त मूलतः स्कूल जाने की आयु वाले बच्चों पर केंद्रित है। वे बच्चे जिनकी आयु 4 वर्ष से लेकर 12 वर्ष के बीच होती है, विगोत्सकी के सैद्धान्तिक अध्ययन का मुख्य विषय रहे हैं। विगोत्सकी ने अपने सिद्धान्त में मानसिक विकास की व्याख्या के लिए दो कारकों पर सर्वाधिक जोर दिया है। 1. सामाजिक कारक एवं 2. भाषा विकास।

सामाजिक कारक– सामाजिक कारकों को समझाते हुए लिव विगोत्सकी का कहना है कि बच्चे जब स्कूल जाने लगते हैं तब उन्हें परिवार से अतिरिक्त एक अन्य समूह से अन्तःक्रिया का अवसर मिलता है यह समूह परिवार के समूह से भिन्न होता है। इस समूह में बच्चे की कक्षा में सहपाठी के रूप में पढ़ने वाले बच्चे, अन्य कक्षाओं में पढ़ने वाले बच्चे, शिक्षक–शिक्षिकायें एवं अन्य कर्मचारी शामिल होते हैं। ये सब मिलकर बच्चे के लिए एक सामाजिक वातावरण का निर्माण करते हैं। यह वातावरण बच्चे के मानसिक विकास को अत्यंत प्रभावित करता है।

भाषा विकास – विगोत्सकी के अनुसार भाषा बालकों के मानसिक विकास में एक अन्य महत्वपूर्ण कारक होता है। भाषा में भाषा के शब्दकोश का विकास महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जिस बच्चे का शब्दकोश जितना ही अधिक विस्तृत होता है वह अपने विचारों एवं भावों की अभिव्यक्ति करने में उतना ही अधिक समर्थ होता है।

विगोत्सकी के सिद्धान्त मे संज्ञानात्मक विकास के विभिन्न रूप

विगोत्सकी की मान्यता है कि बालकों में संज्ञानात्मक विकास दो तरह की परिस्थितियों अथवा संदर्भ में होता है। 1– अन्तर्वैयक्ति संदर्भ (interpersonal context), 2– सामाजिक संदर्भ (social context)। इन संदर्भो में बच्चे का मानसिक विकास एक स्तर से शुरू होकर दूसरे स्तर तक पहुॅच जाता है। एक स्तर से दूसरे स्तर तक पहुॅचने के बीच में एक दूरी होती है जिसकी संज्ञानात्मक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित विकास के विभिन्न स्तर यह दर्शा रहे हैं कि सामाजिक सांस्कृतिक दृष्टिकोण से वैयक्तिक एवं सामाजिक संदर्भ में बच्चों का विकास, विकास के वास्तविक स्तर को पार संभावित विकास के स्तर तक पहुॅच जाता है, एवं विकास के इन दोनों स्तरों के बीच जो अन्तर होता है वह 'सन्निकट विकास का क्षेत्र' कहलाता है।

विकास का वास्तविक स्तर – इस स्तर से तात्पर्य बच्चों द्वारा बिना सहायता प्राप्त परिस्थिति में उनके द्वारा किये जा सकने वाले स्वयं के मानसिक विकास से है। अर्थात् उन दशाओं में जबकि बच्चे को स्वयं के विकास के लिये केवल स्वयं के प्रयासों पर ही निर्भर रहना पड़ता हो, एवं उसे समाज के लोगों, खासतौर पर उसके परिवार एवं शिक्षकों से कोई सहायता न मिल रही हो।

विकास का संभावित स्तर – इस स्तर से तात्पर्य बच्चों द्वारा सहायता प्राप्ति की परिस्थिति में उनके द्वारा किये जा सकने वाले स्वयं के मानसिक विकास से है। दूसरे शब्दों में यदि बच्चों को समय समय पर उनके बड़ों यानि उनके शिक्षकों, चाचा–चाची आदि लोगों से सहायता मिलती हो तब बच्चों द्वारा स्वयं का किस सीमा तक मानसिक विकास हो सकता है, अर्थात् सहायता मिलने पर बच्चे क्या क्या कर सकते हैं।

सन्निकट विकास का क्षेत्र – उपरोक्त दोनों स्तरों के बीच अन्तर मानसिक विकास के जिस क्षेत्र को प्रदर्शित करता है वही सन्निकट विकास का क्षेत्र है।

एक विकास के स्तर को पार कर दूसरे विकास के स्तर तक पहुॅचने में कुछ महत्वपूर्ण सहायक प्रक्रियायें घटित होती हैं जिनमें परस्पर शिक्षण एवं स्कैफोल्डिंग महत्वपूर्ण हैं–

'परस्पर शिक्षण' (Reciprocal teaching) – बच्चों को बड़ों से जो कि उम्र में वयस्क होते हैं से सामाजिक अंतःक्रिया के द्वारा किस प्रकार की सहायता प्राप्त होती है? इस सवाल के जवाब में विगोत्सकी ने पाया है कि प्रायः यह सहायता 'परस्पर शिक्षण' के रूप में प्राप्त होती है जिसमें बच्चा एवं शिक्षक बारी बारी से किसी गतिविधि में भाग लेते हैं। ये

गतिविधि खेल, सम्भाषण अथवा संगीत आदि के रूप में हो सकती है। यह प्रक्रिया शिक्षक को बालक के सम्मुख एक मॉडल के रूप में प्रस्तुत करती है जिससे बालक सीखता है एवं उसकी समझ विकसित होती है।

स्कैफोल्डिंग (Scaffolding) – बच्चों एवं उनके बड़ों अथवा शिक्षकों के बीच होने वाली अंतःक्रियाओं से बच्चों को स्कैफोल्डिंग का लाभ मिलता है। स्कैफोल्डिंग एक प्रकार की मानसिक संरचना होती है जिनका प्रयोग बच्चे नये कौशलों में महारत हासिल करने के दौरान एवं चिंतन के नये तरीकों में कर सकते हैं।

विगोत्सकी के अनुसार वर्तमान में हुए बहुत से अनुसंधानों से यह प्रमाणित होता है कि बच्चों एवं शिक्षकों के बीच होने वाली उपरोक्त प्रकार की अंतःक्रियाओं से सामाजिक कौशलों के विकास के साथ संज्ञानात्मक विकास होता है जिसके अन्तर्गत बच्चे की पठन–पाठन की क्षमता, नवीन अंतर्दृष्टि, अनुमानात्मक चिंतन, निष्कर्ष तक पहुँचने की क्षमता में उन्नति होती है। इसके अलावा बच्चे अपने सहपाठी बच्चों के साथ अंतक्रिया से बहुत कुछ सीखते हैं जिसमें दूसरों के साथ सहानुभूति प्रदर्शित करने का कौशल, उचित व्यवहार करना, दूसरों के व्यवहार के पीछे की सोच का अनुमान लगाने की कला सीखना जैसे संज्ञानात्मक विकास सम्मिलित हैं।

5.4.3 बच्चों के मन का सिद्धान्त (Children's theory of mind)– बच्चों की थ्योरी ऑफ माइंड से तात्पर्य उनके चिंतन के विषय में किये जाने वाले चिंतन से है। एक वयस्क के रूप में हम सभी विचार एवं चिन्तन प्रक्रिया के सम्बन्ध में एक सुलझी हुई समझ रखते हैं। हम यह जानते हैं कि समय के साथ हमारे अपनी सोच में बदलाव आते हैं एवं हमारे विश्वास, निष्कर्ष एवं धारणायें गलत भी हो सकती हैं। इसी प्रकार हम यह भी जानते हैं कि हमारे लोगों के अपने उद्देश्य, लक्ष्य एवं इच्छायें हो सकती हैं जो कि हमारी स्वयं की इच्छाओं एवं उद्देश्यों से भिन्न हो सकती हैं, एवं दूसरे लोग हमसे अपनी इच्छाओं एवं लक्ष्यों को छिपा भी सकते हैं। इसके आगे हम इससे भी परिचित हैं कि एक समय में, एक परिस्थिति में प्राप्त समान जानकारी के बावजूद दूसरे व्यक्तियों के हमसे भिन्न निष्कर्ष हो सकते हैं। दूसरे शब्दों में, हम यह समझते हैं कि किस प्रकार हम स्वयं एवं दूसरे व्यक्ति सोचते हैं। लेकिन क्या बच्चों के साथ भी ऐसा ही होता है? किस आयु में एवं कैसे उनमें यह समझ विकसित होती है? यह थ्योरी ऑफ माइण्ड के अनुसंधानकर्ताओं का विशिष्ट विषय रहा है।

आइये इसकी शुरूआत सोच के सबसे सरल पहलू से करें, जिसका की संबंध बच्चों द्वारा स्वयं की सोच एवं दूसरों की सोच में अन्तर होने की पहचान करने की क्षमता से है। बच्चों के मानसिक विकास के अनुसंधान में सहज ही यह प्रश्न उठता है कि क्या बच्चों में यह समझने की क्षमता होती है कि दूसरों की धारणायें एवं विश्वास उनकी धारणाओं से अलग हो सकते हैं एवं गलत भी हो सकते है। यह बच्चे इस मूल तथ्य को समझते हैं? इस प्रश्न के उत्तर में पाया गया है कि चार वर्ष के अवस्था से पूर्व बच्चे इस तथ्य को समझने में असमर्थ होते हैं। हालॉकि दो से तीन साल की उम्र के बच्चे दूसरों की सोच को कुछ हद तक समझने की क्षमता रखते हैं परन्तु वे सोच एवं विचार के स्वरूप की अन्तर्दृष्टि नहीं रखते हैं। उदाहरण के लिए उनके लिए यह समझ पाना मुश्किल होता है कि कम दूसरा व्यक्ति चिन्तन कर रहा है। वे यह जानते हैं कि सोचना, बातचीत करने एवं देखने से भिन्न होता है परन्तु वे इसे पूरी तरह नहीं समझ पाते कि यह एक व्यक्तिगत मानसिक घटना होती है। इसी प्रकार ये बच्चे तब यह जानते हैं जब वे किसी चीज के बारे में जानते हैं,

लेकिन वे प्रायः जानकारी के स्रोत से अनभिज्ञ एवं अस्पष्ट होते हैं तथा यह नहीं समझ पाते कि यह जानकारी उन्होंने ने स्वयं प्राप्त की है या किसी और ने उन्हें इसके बारे में बताया है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि 4 वर्ष से कम उम्र के बच्चे इस बात को समझते हैं कि उन्हें जानकारी है परन्तु इस बात को नहीं समझ पाते कि कैसे उन्हे यह जानकारी मिली है।

5.5 किशोरावस्था में मानसिक विकास (Mental development in adolescence)

किशोरावस्था बचपन एवं वयस्कावस्था के बीच की अतिमहत्वपूर्ण अवस्था होती है, एवं प्रत्येक व्यक्ति को इस अवस्था से गुजरना पड़ता है। संज्ञानात्मक विकास के पियाजे द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त की चतुर्थ अवस्था से यह ज्ञात होता है कि किशोरावस्था में किशारों में तर्कपूर्ण विचार करने की क्षमता विकसित हो जाती है। लेकिन किशोर द्वारा विचार करने की इस क्षमता की अभिव्यक्ति हो ही जाये यह आवश्यक नहीं है। स्टैनोविक द्वारा 1993 में किशोरों की औपचारिक संक्रियात्मक चिन्तन की क्षमता की जॉच के लिये किये गये एक अध्ययन के अनुसार वास्तव में पियाजे द्वारा बतायी गयी समस्याओं को केवल 40 प्रतिशत किशोरों ने ही हल किया। इससे यह ज्ञात होता है कि पियाजे के संज्ञानात्मक सिद्धान्त की जॉच हेतु और अधिक अनुसंधान की आवश्यकता है। किशोरों के सोचने–विचारने एवं निर्णय करने के तौर तरीकों को समझने के लिए उनके मन की कार्यशैली को समझना आवश्यक है। इस संदर्भ में थ्योरी ऑफ माइण्ड का विश्लेषण उपयुक्त रहेगा। निम्नांकित पंक्तियों में लेखक द्वारा किशोरों के मन की कार्यशैली की बचपन से वयस्क होने के प्रगति के दौरान सोच में बदलावों पर ध्यान रखते हुए व्याख्या की गयी है।

किशोरों के मन की कार्यशैली (Adolescents theory of mind) – मन की कार्यशैली से तात्पर्य किशोरों की उस समझ से है जो कि उन्हें स्वयं उनके सोचने एवं साथ ही दूसरों के सोचने के तरीकों के संबंध में ज्ञान प्रदान करती है तथा जिसमें निरन्तर बदलाव एवं विकास होता रहता है। बच्चों से लेकर किशोरावस्था की पराकाष्ठा तक निरन्तर बदलती आयु के साथ ही मन की कार्यशैली में निरन्तर बदलाव आते हैं। इन बदलावों को बालकों एवं किशोरों द्वारा अलग–अलग आयु में अपनाये जाने वाले विभिन्न उपागमों की व्याख्या द्वारा समझा जा सकता है।

बालकों एवं किशोरों द्वारा अलग–अलग आयु में अपनाये जाने वाले चिन्तन संबंधी विभिन्न उपागम

1. यथार्थ उपागम (Realist approach)
2. संबंधात्मक उपागम (Relativist approach)
3. रक्षात्मक वास्तविकता उपागम (Defended realism approach)
4. डॉग्मेटिज्म–स्केप्टिसिज्म (Dogmatism-skepticism approach)
5. संशयोपरान्त तर्कवाद (Postskeptical rationalism approach)

आइए अब इन उपागमों के बारे में विस्तार से जानें कि किस प्रकार एवं किस आयु के बच्चे अथवा किशोर अपनी चिन्तन प्रक्रिया को अपनाते हैं, और क्यों? आइये यथार्थ उपागम से इसकी शुरूआत करें।

5.5.1 यथार्थ उपागम– इस उपागम को अपनाते हुए उन बच्चों को पाया गया है जो कि शैशवावस्था से अभी हाल ही में बचपनावस्था में प्रविष्ट हुए हैं तथा जिनकी आयु प्रायः चार–पॉच वर्ष से प्रारम्भ होकर 6–7 वर्ष के मध्य होती है। इन्हें विश्वास होता है कि ज्ञान वास्तविक दुनिया की संपत्ति है एवं इस दुनिया में निश्चित रूप से सही तथ्य एवं सार्वभौमिक सत्य भरा पड़ा है जिसे कि इच्छा होने पर प्रयासों द्वारा जाना जा सकता है। इस विश्वास का अर्थ यह है कि बच्चे को उसकी दृश्य सीमा में आने वाला जो वातावरण अथवा संसार दिखलाई पड़ता है जिसमें वस्तुओं से लेकर उसके रहने का कमरा, कमरे में रहने वाले लोग, माता–पिता एवं पड़ोसी आदि। उनके द्वारा कही गयी बातों एवं किये गए कार्यों उनकी धारणाओं को वह एक न बदलने वाले सच के रूप में स्वीकार करता है। वह यह मानता है कि कि किसी एक व्यक्ति द्वारा किसी वस्तु विशेष के संबंध में की गयी अनुभूति अथवा समझ गयी सूचना अन्य व्यक्तियों के द्वारा भी उसी रूप में अनुभूत एवं समझी जाती है। वह यह नहीं समझता है कि एक ही प्रकार की सूचना का विश्लेषण करने पर लोगों की उस वस्तु विशेष के संदर्भ में भिन्न राय हो सकती है। तथापि वह यह समझता है कि वातावरण में उपस्थित वस्तुओं –व्यक्तियों से संबंधित तथ्यों एवं सत्यों को वह प्रयासों द्वारा जान सकता है। आइये अब अगले उपागम के बारे में जानें।

5.5.2 संबंधात्मक उपागम– छः से सात वर्ष की आयु से अधिक एवं पूर्व किशोरावस्था के बालकों में प्रायः सोच संबंधी संबंधात्मक उपागम को अपनाने की प्रवृत्ति पायी जाती है। ये बालक यर्थावादी सोच से उलट चिंतन प्रक्रिया का उपयोग अपने निष्कर्षो पर पहुॅचने के लिए करते हैं। ये बालक यह भली प्रकार जानते हैं कि किसी एक विषय पर उस विषय के विशेषज्ञ भी अनेकमत हो सकते हैं। अर्थात् यदि कोई एक वस्तु अथवा घटना कई विशेषज्ञों के सम्मुख यदि विचार हेतु प्रस्तुत की जाये तो उनकी राय एवं मत अलग–अलग भी आ सकते हैं, उन सबकी राय का एक जैसा होना आवश्यक नहीं है। यह समझ इस आयु के बच्चों का यह धारणा बनाने को प्रेरित करती है कि यदि अलग–अलग लोगों को एक समान सूचनाये यदि दी जाये तो वे उसकी विपरीत विवेचनायें प्रस्तुत कर सकते हैं। आगे कि पंक्तियों में पूर्वकिशोरवय बच्चों द्वारा अपनायी गयी सोच संबंधी नजरिये पर प्रकाश डाला गया है।

5.5.3 रक्षात्मक–वास्तविकता उपागम – पूर्वकिशोरावस्था वाले बच्चों द्वारा इस उपागम को अपनाते पाये जाते हैं। पूर्वकिशोरावस्था से तात्पर्य ऐसी आयु से होता है जो कि बचपनावस्था की परिपक्वावस्था एवं किशोरावस्था के आरंभ से पहले की अवस्था होती है। इस अवस्था के बच्चे संबंधात्मक उपागम को अपनाने वाले बच्चों से एक कदम आगे निकल जाते हैं। ये बच्चे संबंधात्मक उपागम को अपनाने वाले बालकों की भॉति यह तो मानते हैं कि एक ही प्रकार की सूचना का विवेचन अलग–अलग व्यक्तियों द्वारा किये जाने पर भिन्न–भिनन हो सकता है परन्तु वे तथ्यों एवं मान्यताओं में फर्क करना जानते हैं। अर्थात् ये बच्चे यथार्थ उपागम एवं संबंधात्मक उमागम को अपनी सोच का आधार बनाने वाले बच्चों के विपरीत, सूचनाओं के तथ्यों एवं मान्यता के रूप में अलग अलग श्रेणियों के रूप में व्यक्त करना सीख जाते हैं। हालॉकि वे अभी भी यह विश्वास करते हैं कि संसार के बारे में बहुत सारे ऐसे तथ्य विद्यमान हैं जो कि सभी के लिए एक समान सच होते हैं एवं जो कि पूर्ण रूप से सत्य हैं एवं लोगों की मान्यताओं में जो मतभिन्नता होती है अन्तर होता है वह उपलब्ध सूचनाओं में व्याप्त अन्तर की वजह से उत्पन्न होता है। इससे अधिक उम्र के

किशोरवय बालकों में एक अलग ही प्रकार की सोच संबंधी कार्यशैली देखने को मिलती है जिसे कि डॉगमेटिज्म एवं स्केप्टिसिज्म के नाम से जाना जाता है।

5.5.4 डॉगमेटिज्म–स्केप्टिसिज्म – पूर्वकिशोरावस्था के उपरान्त बालक किशोरावस्था में प्रवेश करता है। इस अवस्था में उसे यह भान होता है कि दुनिया में ज्ञान प्राप्त करने का कोई एक मात्र सीमित आधार व मार्ग नहीं है, एवं जो आधार दिखलाई पड़ते हैं जरूरी नहीं है कि वे पूर्ण रूप से विश्वसनीय एवं वैध हों। इसके अलावा किशोर के मन में यह समझ भी विकसित हो जाती है कि हमारे द्वारा लिए जाने वाले निर्णयों के लिए कोई सुरक्षित मार्ग वस्तुतः नहीं होता है, निर्णय का सही होना या न होना परिस्थितियों एवं संयोग आदि पर निर्भर करता है। निर्णय लेने एवं ज्ञान प्राप्ति के लिए कोई सुरक्षित आधार नहीं खोज पाने की स्थिति में उसका चिन्तन डॉवाडोल होने लगता है जिसमें वह इसके लिए डॉग्मेटिज्म–स्केप्टिसिज्म के उपागम को अपना लेता है। इसके अन्तर्गत किशोर कभी तो किसी अधिकारी व्यक्ति या संस्था की धारणाओं पर अंधविश्वास करने लगता है और कभी हर चीज की सत्यता पर उसे संशय होने लगता है। सार रूप में किशोर इन दोनों स्थितियों अर्थात् पूर्ण अंधविश्वास एवं संशय के बीच भटकने लगता है। सोच संबंधी मन की यह कार्यशैली किशोर के लिए बहुत ही बेचैनी एवं तनाव भरी होती है। इस अवस्था से उबरने पर वह अंततः चिन्तन संबंधी मन की एक अन्य कार्यशैली को अपना लेता है जिसे कि संशयोपरान्त तर्कवाद कहा जाता है।

5.5.5 संशयोपरान्त तर्कवाद– किशोरावस्था की परिपक्वावस्था में किशोर सोच–विचार संबंधी जिस कार्यशैली को अपने भीतर विकसित पाता है उसे संशयोपरान्त तर्कवाद कहते हैं। इसके नाम से ही स्पष्ट होता है कि विभिन्न प्रकार के अनुभवों एवं मन की कार्यशैलियों पर संशय करने के पश्चात् तर्कपूर्ण विचार द्वारा प्राप्त सही दिशा में जाना ही इस संशयोपरान्त तर्कवाद का अर्थ है। इस अवस्था में किशोर को यह बोध होता है कि हालॉकि इस संसार में निरपेक्ष सत्य का सर्वथा अभाव प्रतीत होता है, परन्तु उससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह जानना है कि विशेष प्रकार के दृष्टिकोण के धारण के पीछे अच्छे एवं बुरे अपने–अपने कारण विद्यमान होते हैं। यह उपागम यह समझ विकसित करता है कि दुनिया में घटने वाली हर प्रकार की घटना को देखने का प्रत्येक व्यक्ति का अपना–अपना नजरिया होता है जो कि नितान्त व्यक्तिगत होता है। एवं यह दृष्टिकोण अपनी–अपनी सोच के केन्द्र बिन्दु से सर्वथा सही प्रतीत होता है। इसलिए हम लोगों को केवल अपने दृष्टिकोण को पूर्णतः सही न मानते हुए अन्यों के दृष्टिकोण को उनके नजरिये जॉचपरख कर ही किसी निष्कर्ष अथवा निर्णय पर पहुॅचना चाहिए। मनोवैज्ञानिकों ने इस अंतिम उपागम को किशोर के विकास में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बताया है एवं कहा कि इस तरह का दृष्टिकोण ही वर्तमान लोकतांत्रिक समाज के लिए लाभदायक हो सकता है जिसमें कि सभी को अपनी–अपनी बात रखने का अधिकार होता है एवं जिस बात पर अधिकांश लोग सहमत होते हैं उसे ही समाज के लिए महत्वपूर्ण माना जाता है।

सार रूप में यदि कहा जाये तो क्लाक्जिन्सकी नामक विद्वान के शब्दों में मानसिक विकास की यात्रा बचपन में ही समाप्त नहीं होती है बल्कि इसके विपरीत यह पूरी किशोरावस्था में जारी रहती है एवं परिणामस्वरूप विचारों के उन्नत रूप में विकसित होती है।

5.6 भाषा विकास

भाषा विकास मानसिक विकास का एक विशिष्ट पहलू है। इससे मानसिक विकास उन्नत एवं तीव्र होता है। इसकी चर्चा की बिना मानसिक विकास का जिक्र अधूरा रह जाता है। अतएवं आइये इसके बारे में जानें।

जन्म के समय, शिशुओं के संचार का साधन उनका रोना होता है, लेकिन 17 वर्ष की आयु में एक औसत हाईस्कूल के छात्र के शब्दकोश में लगभग 80,000 शब्द होते हैं (मिलर एवं गिल्डिया, 1987)। 18 महीने की आयु से लेकर 5 वर्ष की अवस्था तक बच्चा प्रतिदिन 9 शब्द सीखने के औसत से 14,000 शब्दों का ज्ञान प्राप्त कर लेता है (राइस, 1989)।

लेकिन बच्चे अपने शब्दकोश में केवल नये शब्द ही नहीं जोड़ते बल्कि वे इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण कुछ करते हैं। जीवन के पहले 5 वर्षों में बच्चे शब्दों के अर्थ की समझ के विकास के साथ ही शब्दों से वाक्य रचना करना एवं उनका समाज में उपयोग करना भी सीखते हैं। बच्चे आश्चर्यजनक रूप से अपनी भाषा का ज्यादातर हिस्सा बिना किसी औपचारिक शिक्षा अथवा प्रशिक्षण के ही सीख लेते हैं।

भाषा विकास की अवस्थायें–

शिशुओं में भाषा विकास की दृष्टि से ध्वनि का उच्चारण दूसरे अथवा तीसरे माह से ही प्रारम्भ हो पाता है। इससे पूर्व की माह में तो शिशु केवल रो कर ही अपने तनाव एवं खुशी को अभिव्यक्त कर पाते हैं। भाषा विकास की क्रमिक अवस्थाओं का वर्णन निम्नांकित है।

कूजन एवं बबलाना (Cooing and Babbling stage) – दो से तीन माह की आयु में बच्चे कूजन ध्वनि करना प्रारंभ कर देते हैं। जिसमें में वे प्रायः 'अह' एवं 'वू' के स्वर का उच्चारण बार–बार करते हैं। लगभग छः माह का होने पर ये ही शिशु बबलाने की आवाज निकालना लगते हैं। कूजन एवं बबलाना मुख्य रूप से स्वर एवं व्यंज ही होते हैं जो कि किसी भी भाषा की मूल आवाज होते हैं, तथा मिलकर शब्दों का निर्माण करते हैं। स्वर एवं व्यंजन की संयुक्त रूप से बारम्बार उच्चारण एक श्रृंखला में होता है जैसे कि ''मा–मा–मा'' और ''बा–बा–बा''। तीन से लेकर आठ माह की आयु तक शिशु विश्व की भाषाओं मे पायी जाने वाली सभी मूल ध्वनियों का उच्चारण करते हैं। परन्तु आठ माह का होने पर उनका ध्यान केवल अपनी मातृभाषा पर ही केन्द्रित हो जाता है तथा वे अपना उच्चारण माता पिता के उच्चारण के समान ही करने का प्रयास करते हैं।

एक शब्द अवस्था (The One-Word Stage) – लगभग एक साल का होने पर शिशु अपने पहले वास्तविक शब्द का उच्चारण करता है। यह पहला शब्द गतिमान व्यक्तियों जैसे कि माता–पिता अथवा गतिमान वस्तुओं, जीवों जैसे कि बॉल या कुत्ता के लिये ही होता है। इन शब्दों में प्रायः'मम्मा', पापा, डैडी, कुत्ता, बाल आदि होते हैं (नेल्सन, 1973)। 13 से 18 महीने की आयु में बच्चों की शब्द सामर्थ्य का काफी विकास हो जाता है एवं दो वर्ष की उम्र तक उनके शब्दकोश का आकार 270 शब्दों का हो जाता है (ब्राउन, 1973)। शब्द के उच्चारण के बावजूद बच्चे उनके अर्थ को वयस्कों की भॉति समझ नहीं पाते हैं एवं उनके दो प्रकार की कमियॉ दृष्टिगोचर होती हैं। 1 अतिविस्तारीकरण (overextention) एवं 2. सीमितीकरण (underextention)। अतिविस्तारीकरण के अंतर्गत बच्चे द्वारा प्रत्येक चार पैरों वाले प्राणी को कुत्ता कहने के उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है, यहॉ बच्चा केवल चार पैर देखकर, गधा, गाय, बिल्ली सभी को कुत्ता ही कहता है। वहीं सीमितीकरण के अन्तर्गत बच्चा अपने घर के कुत्ते को तो कुत्ता ही कहता है परन्तु पड़ोसी का कुत्ता भी कुत्ता ही है यह वह नहीं समझ पाता है।

द्वि–शब्द अवस्था और टेलीग्राफिक स्पीच (The Two-Word Stage and Telegraphic Speech) – लगभग 18 से 20 माह की आयु में जबकि बच्चे की शब्द–सामर्थ्य केवल 50 शब्दों की होती है बच्चे संज्ञा, क्रिया एवं विशेषण का प्रयोग दो शब्दों के वाक्य के रूप में करना शुरू कर देते हैं, जैसे कि 'मम्मा खाऊँगा', पापा–टाफी। हालॉकि इस अवस्था में वाक्य में छिपे अर्थ को बताने के लिए उन्हें अपने शारीरिक संकेतों, हाव–भाव पर निर्भर रहना पड़ता है (स्लोबिन, 1972)। लगभग ढाई वर्ष की आयु होने पर बच्चे छोटे वाक्यों का उपयोग करना प्रारंभ कर देते हैं जिनमें तीन या तीन से ज्यादा शब्द हो सकते हैं। इसे ही रोजर ब्राउन द्वारा टेलीग्राफिक स्पीच कहा गया है। इस अवस्था में बच्चों में वाक्य रचना के नियमों की समझ का आरंभ हो जाता है।

व्याकरण के नियम उपयोग की अवस्था (Stage of Applying Grammatical rule) – टेलीग्राफिक स्पीच का कुछ समय तक अभ्यास करने से बच्चों में व्याकरण की समझ का विकास होने लगता है एवं वे शुद्ध वाक्य रचना करने लगते हैं वे वाक्यों में प्रत्यय, उपसर्ग, एवं, तथा, क्रिया, क्रियाविशेषण आदि का प्रयोग करना सीख जाते हैं। तथा वर्तमान काल, भूतकाल एवं भविष्यकाल की अभिव्यक्ति वाक्यों द्वारा करने लगते हैं। इस प्रकार भाषा का मूल विकास किशोरावस्था तक पूर्ण हो जाता है एवं आगे की आयु में मानसिक विकास को परिपक्वावस्था तक पहुॅचने में सहायक होता है।

अभ्यास प्रश्न

1 – मानसिक विकास के विभिन्न तत्व कौन से हैं?

2 – अवस्था सिद्धान्त किसे कहते हैं? उपरोक्त इकाई में कौन से अवस्था सिद्धान्त का वर्णन किया गया है?

3 – लिव विगोत्सकी ने मानसिक विकास के कौन से सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है? इस सिद्धान्त में संज्ञानात्मक विकास में सहायक कौन सी तकनीकों के बारे में बतलाया गया है?

4 – बच्चों मन के सिद्धान्त (थ्योरी ऑफ माइण्ड)का मूल उद्देश्य क्या है?

5 – किशोरावस्था की परिपक्वावस्था में उसकी चिंतन प्रक्रिया किस प्रकार की हो जाती है जिससे उसके संज्ञानात्मक स्थिति का पता चलता है?

5.7 सारांश

अभी तक आप बचपन एवं किशोरावस्था में होने वाले मानसिक विकास की प्रक्रिया का परिचय प्राप्त कर चुके हैं। सार रूप में यदि कहें तो मानसिक विकास निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है इसकी शुरूआत बच्चे की शैशवावस्था से ही हो जाती है जिसमें उसके संज्ञान के विकसित होने के संकेत प्राप्त होना प्रारम्भ हो जाते हैं। बचपन में विकास की गति तीव्र हो जाती है एवं बालक संसार का ज्ञान प्राप्त करने हेतु जिज्ञासु होने के साथ सही प्रयत्नशील हो उठता है जिसके संकेत उसके द्वारा वस्तुओं के विभिन्न प्रकार से उलटने पलटने के व्यवहार से हो जाता है। प्रारम्भ में वह यह समझता है कि जो वस्तुएं उसे प्रत्यक्ष रूप में दिखलाई पड़ रही हैं वे ही वास्तव में विद्यमान हैं। परन्तु धीरे धीरे उसमें यह समझ विकसित हो जाती है कि नजरों से ओझल होने के बाद भी वस्तुओं का अस्तित्व बना रहता है। बचपन की इस अवस्था के उपरान्त मानसिक विकास की गति और तीव्र हो जाती है एवं बच्चा अलग–अलग प्रकार की चिंतन शैली का अवलम्बन लेते हुए बोध के विकास की ओर अग्रसर होता है। विकास की इस यात्रा में केवल बालक के स्वयं द्वारा

किए गए प्रयास ही पर्याप्त नहीं होते वरन इसमें उसके परिवार, समाज, शिक्षा, स्कूल एवं संस्कृति तथा भाषा का भी पर्याप्त योगदान होता है।

5.8 पारिभाषिक शब्दावली

मानसिक विकास – हमारे संसार को समझने की हमारी क्षमता में निरंतर प्रगति उन्मुखी बदलाव ही मानसिक विकास है।

जीववाद (Animism)– बच्चे द्वारा निर्जीव किन्तु गतिमान वस्तुओं (पंखा, कार, हवा, बादल) को भी स्वयं के समान सजीव समझना है।

आत्मकेंद्रण (Egocentrism) – बच्चे का केवल अपनी सोच को ही सही मानना बच्चे में आत्मकेंद्रण के विकास का संकेत है। बच्चे को कुछ इस प्रकार का विश्वास हो जाना कि दुनिया की अधिकतर चीजें उसके इर्द–गिर्द घूमती रहती हैं। जैसे वह तेजी से दौड़ता है, तो सूरज भी तेजी से चलना शुरू कर देता है। उसका गुड्डा वही देखता है जो वह देख रहा है। पियाजे के अनुसार जैसे–जैसे बच्चों का सम्पर्क का दायरा अन्य बच्चों के साथ बढ़ता है, आत्मकेंद्रण कम होता जाता है।

'परस्पर शिक्षण' (Reciprocal teaching) – शिक्षण की वह विधि जिसमें बच्चा एवं शिक्षक बारी बारी से किसी गतिविधि में भाग लेते हैं। ये गतिविधि खेल, सम्भाषण अथवा संगीत आदि के रूप में हो सकती है। यह प्रक्रिया शिक्षक को बालक के सम्मुख एक मॉडल के रूप में प्रस्तुत करती है जिससे बालक सीखता है एवं उसकी समझ विकसित होती है।

स्कैफोल्डिंग (Scaffolding) – स्कैफोल्डिंग एक प्रकार की मानसिक संरचना होती है जिनका प्रयोग बच्चे नये कौशलों में महारत हासिल करने के दौरान एवं चिंतन के नये तरीकों में कर सकते हैं। बच्चों एवं उनके बड़ों अथवा शिक्षकों के बीच होने वाली अंतःक्रियाओं से बच्चों को स्कैफोल्डिंग का लाभ मिलता है।

5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1– तर्क, चिन्तन, भाषा, संकल्पना, बुद्धि, स्मृति, सीखने की क्षमता, समस्या समाधान आदि मानसिक विकास के विभिन्न तत्व हैं।

उत्तर 2– मानव विकास के वे सभी सिद्धान्त जो विकास की परिपक्वावस्था तक पहुँचने के लिए अन्य पूर्व अवस्थाओं से व्यक्ति के क्रमिक रूप से गुजरने को अनिवार्य मानते हैं अवस्था सिद्धान्त कहलाते हैं। प्रस्तुत इकाई में पियाजे द्वारा प्रतिपादित संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को अवस्था सिद्धान्त कहा गया है।

उत्तर 3– लिव विगोत्सकी ने मानसिक विकास के 'सामाजिक–सांस्कृतिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। इस सिद्धान्त में बच्चों के मानसिक विकास में उनके स्कूल के शिक्षकों की भूमिका को महत्वपूर्ण माना गया है एवं परस्पर शिक्षण एवं स्कैफोल्डिंग नामक दो तकनीकों के बारे में बतलाया गया है।

उत्तर 4– बच्चों के 'मन का सिद्धान्त' का मूल उद्देश्य बच्चों के स्वयं की सोच एवं दूसरों के सोचने की प्रक्रिया की समझ की व्याख्या करना है।

उत्तर 5– किशोरावस्था की परिपक्वावस्था में किशोर 'संशयोपरान्त तर्कवाद' की चिंतन प्रक्रिया अपना लेते हैं जिसमें कि दुनिया में घटने वाली हर प्रकार की घटना को देखने का

प्रत्येक व्यक्ति का अपना–अपना नजरिया होता है जो कि नितान्त व्यक्तिगत होता है। एवं यह दृष्टिकोण अपनी–अपनी सोच के केन्द्र बिन्दु से सर्वथा सही प्रतीत होता है। इसलिए हम लोगों को केवल अपने दृष्टिकोण को पूर्णतः सही न मानते हुए अन्यों के दृष्टिकोण को उनके नजरिये जॉचपरख कर ही किसी निष्कर्ष अथवा निर्णय पर पहुॅचना चाहिए।

5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

डॉ महेन्द्र कुमार मिश्रा (2007) विकासात्मक मनोविज्ञान, जयपुर – यूनीवर्सिटी बुक हाउस।
रॉबर्ट ए. बैरोन (2006) साइकोलॉजी, दिल्ली – पियर्सन प्रेंटिस हाल।
सैमुअल वुड एवं एलेन वुड (2000) द इसेंशियल वर्ल्ड ऑफ साइकोलाजी, यू एस ए– एलिन एण्ड बेकन।

5.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. बाल्यावस्था में एक बच्चे का मानसिक विकास कैसे होता है बच्चों के मानसिक विकास में योग का क्या योगदान है।

इकाई–6 का शीर्षक :– बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था में संवेगात्मक तथा नैतिक विकास

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 बचपन में सांवेगिक विकास

6.4 बचपन व किशोरावस्था में नैतिक विकास

6.5 किशोरावस्था में सांवेगिक विकास

6.6 सारांश

6.7 पारिभाषिक शब्दावली

6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.10 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

हम सभी को शैशवावस्था एवं बचपन के दौर से गुजकर ही किशोरावस्था, वयस्कावस्था एवं तदनुपरान्त वृद्धावस्था के सोपानों को पार करते हुए मानव विकास के क्रमविकास का अनुभव करना पड़ता है। क्रमविकास की ये अवस्थायें क्रमशः पड़ावों के रूप में सामने आती हैं, एवं हम सभी मानवों को नये नये अनुभवों का ज्ञान कराती हैं। ये अनुभव कई प्रकार के एवं विकास के कई आयामों अथवा स्तरों पर होते हैं। उदाहरण के लिए शारीरिक विकास का अनुभव व मनोवैज्ञानिक विकास का अनुभव। मनोवैज्ञानिक विकास के अनुभव का दायरा काफी विस्तृत एवं व्यापक है। इसमें मानसिक, सांवेगिक एवं नैतिक विकास भी आते हैं। किशोरों एवं बच्चों के मानसिक विकास के बारे में हम पूर्व इकाई में ज्ञानार्जन कर चुके हैं। परन्तु इनके सांवेगिक विकास एवं नैतिक विकास के अनुभव के सभी रंगों के बारे में पूर्णतः समझने के लिए इस इकाई के अध्ययन के सभी सोपानों से गुजरना होगा। आप किशोरों के सांवेगिक एवं नैतिक विकास संबंधी जिज्ञासाओं का समाधान इस इकाई के अध्ययन द्वारा प्राप्त कर सकेंगे। यही इस इकाई की विशेषता है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- बच्चों एवं किशोरों के सांवेगिक मनोविज्ञान को समझ सकेंगे।
- बच्चों एवं किशोरों के सांवेगिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं के बारे में जानेंगे।
- बच्चों एवं किशोरों के नैतिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं के बारे में जानेंगे।
- बच्चों एवं किशोरों के सांवेगिक एवं नैतिक विकास को विभिन्न मनोवैज्ञानिकों के दृष्टिकोण से समझ सकेंगे।
- बच्चों एवं किशोरों की सांवेगिक समस्याओं एवं उनके समाधान के बारे में जानेंगे।

6.3 बचपन में सांवेगिक विकास (Emotional development in childhood)

बचपन की अवस्था शैशवावस्था एवं किशोरावस्था के बीच की अवस्था है। यह अवस्था अपने आप में अत्यंत महत्वपूर्ण अवस्था है। सभी प्रमुख मनोवैज्ञानिक मानव विकास की दृष्टि से इस अवस्था में होने वाले अनुभवों को मनुष्य के विकास का प्रमुख आधार मानते हैं। सांवेगिक विकास की इस अवस्था को समझने के लिए शैशवावस्था में होने वाले सांवेगिक विकास को समझ लेना आवश्यक है।

किस आयु में नवजात शिशु संवेगों का अनुभव एवं अभिव्यक्ति करना प्रारम्भ करते हैं? यह बड़ा ही महत्वपूर्ण प्रश्न है। शिशु अपनी आत्मनिष्ठ अहसासों का वर्णन नहीं कर सकते हैं क्योंकि उनमें भाषा एवं परिपक्वता का विकास नहीं हुआ होता है। अतएव उनके भिन्न–भिन्न संवेगों के संकेतों को समझने के लिए अध्ययनकर्ता उनकी मुखाभिव्यक्तियों पर ध्यान केंद्रित करने का प्रयास करते हैं। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक इजार्ड के अनुसार जीवन के प्रारम्भिक कुछ महीनों में ही शिशु द्वारा संवेगों की अभिव्यक्ति के चिह्न दिखलायी पड़ने लगते हैं। दो महीने की उम्र के शिशु मानव चेहरों के दिखलायी पड़ने पर अनुक्रिया के रूप में सामाजिक मुस्कान (social smiling) जिसे की अंग्रेजी में शोशल स्माइलिंग कहा जाता है का प्रदर्शन करने लगते हैं। श्रौफी एवं वाटर्स के अनुसार तीन से चार महीने का होने पर शिशु हंसने (laughter) के संवेग का प्रदर्शन करने लगते हैं। इसके अलावा अन्य संवेग जैसे कि गुस्सा, दुख, एवं आश्चर्य भी शीघ्र ही दिखलाई पड़ने लगते हैं जिन्हें वयस्कों द्वारा पहचाना जाना संभव होता है।

संवेगों के प्रकटीकरण में एक रोचक बात यह होती है कि कुछ संवेग अन्य संवेगों की अपेक्षा काफी पहले से ही दिखलाई पड़ने लगते हैं और ये काफी कॉमन भी होते हैं। उदाहरण के लिए इजार्ड एवं उनके सहयोगी अनुसंधानकर्ताओं के अनुसार दो माह के शिशु दर्द के संवेग की अभिव्यक्ति गुस्से के संवेग की अभिव्यक्ति की अपेक्षा अधिक बारंबारता से करते हैं। हालॉकि कुछ और अधिक महीनों का हो जाने पर वे ही दर्द की बजाय गुस्से के संवेग की अभिव्यक्ति अधिक बारंबारता से करना प्रारम्भ कर देते हैं। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार इसका कारण शिशुओं में सांवेगिक विकास के साथ साथ संज्ञानात्मक विकास का

होना है। संज्ञानात्मक विकास से शिशुओं में संवेग होने के कारण पर ध्यान केंद्रित करने की प्रवृत्ति जन्म लेती है और वो दर्द के संवेग के उत्पन्न होने पर जन्म के बाद के शुरूआती 18 महीनों के दौरान दर्द के कारण पर गुस्सा जताने वाले संवेग को अभिव्यक्त करता है।जैसे जैसे शिशु और बड़े होते जाते हैं उनमें दूसरों की सांवेगिक अभिव्यक्ति को पढ़ लेने की योग्यता का विकास होने लगता है। ट्रॉनिक के अनुसार तीन माह की आयु में वे मॉ द्वारा गति रहित आनन अभिव्यक्ति करने पर बेचैन हो जाते हैं। आठ से दस माह का होने पर वे दूसरों की भावनाओं के बारे में सक्रिय रूप से जानकारी प्राप्त करने की कोशिश शुरू कर देते हैं एवं वे अपनी एवं दूसरों की मनोदशा को समझ सकने के संकेत देना प्रारम्भ कर देते हैं। वालडन एवं ओगन के अनुसार लगभग एक साल की आयु में शिशु अपनी देखभाल करने वालों की ओर प्रायः बार बार देखने की प्रवृत्ति विकसित कर लेते हैं एवं उनकी अनुक्रियाओं के आधार पर रोते एवं हॅसते हैं इस प्रकार शिशु सामाजिक संदर्भ (social refereneing) में सम्मिलित होने लगते हैं।

बच्चों में सांवेगिक विकास (emotional development in children)

शैशवावस्था से बचपन की अवस्था में प्रवेश की शुरूआत में शिशुओं में स्वयं के सांवेगिक प्रतिक्रियाओं का नियमन करने की क्षमता एवं स्वयं के संवेगों को दूसरों को अभिव्यक्त करने की क्षमता अत्यन्त सीमित होती है। परन्तु कुछ ही वर्षों में वे अपनी भावनाओं को समझने एवं नियमन करने का सक्रिय प्रयास में शामिल हो जाते हैं। यदि आपने किसी चार साल के बच्चे को टेलीविजन पर डरावनी फिल्म देखने के दौरान अपनी ऑखों एवं कानो को अपने हाथों से ढॉपते हुए देखा होगा तो आप उसके सीधे भावनात्मक नियमन के गवाह होंगे। बच्चे का अपनी ऑखों एवं कानों को ढॉपने की यह अनुक्रिया उसके द्वारा स्वयं में उत्पन्न भय के संवेग पर नियमन करने के प्रयास को दर्शाता है। सारनी के अनुसार अपने भावों एवं संवेगों पर नियंत्रण करने की योजनाओं एवं युक्तियों के बारे में बच्चे प्राइमरी शिक्षा के शुरूआती दिनों में सीखने लगते हैं।10 वर्ष की अवस्था तक आते आते बच्चे अपने संवेगों को शाब्दिक एवं अशाब्दिक दोनों ही रूपों में अभिव्यक्त करना सीख जाते हैं। जीमान एवं शिपमैन के अनुसार इस अवस्था तक बच्चे सहानुभूति एवं समर्थन हासिल करने के लिए दुख की अभिव्यक्ति करना सीख चुके होते हैं। संवेगो के नियमन एवं अभिव्यक्ति की कला में होने वाली दोनो प्रकार की उन्नति बच्चो में जटिल सामाजिक संबंधों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

बच्चों में चित्तप्रकृति (Temperament in children) – सांवेगिक शैली में वैयक्तिक भिन्नता।

क्या आप किसी ऐसे व्यक्ति को जानते हैं जो कि हमेशा प्रसन्न, एवं उत्साह से लबरेज रहता हो? या फिर किसी ऐसे को जो इससे विपरीत हो अर्थात् हमेशा शान्त, उदास रहता हो। मनोवैज्ञानिक मनोदशा अथवा सक्रियता स्तर में इस प्रकार की स्थिर वैयक्तिक भिन्नताओं को चित्तप्रकृति की सांवेगिक प्रतिक्रिया के रूप में बताते हैं। चित्तप्रकृति का सांवेगिक प्रतिक्रियाओं से बड़ा ही गहरा संबंध है। चित्तप्रकृति सांवेगिक अनुक्रियाओं की गुणवत्ता एवं तीव्रता में स्थिर वैयक्तिक भिन्नता को दर्शाती है। कागान एवं स्नाइडमैन के अनुसार इस प्रकार की वैयक्तिक भिन्नतायें जीवन के काफी शुरूआती दौर में ही जैसे कि जन्म से ही व्यक्ति में पायी जाती हैं। चित्तप्रकृति के मुख्य आयाम कौन से हैं? इस प्रश्न के उत्तर में मनोवैज्ञानिक चार आयामों का वर्णन करते हैं। जो कि निम्न हैं।

चित्तप्रकृति के आयाम (dimensions of temperament)

1. सकारात्मक सांवेगिकता (positive emotionality) – इससे तात्पर्य शिशु द्वारा प्रसन्नता प्रदर्शित करने की मात्रा से होता है, अर्थात् अच्छा, खुशमिजाजीपन
2. विषाद–क्रोध (distress-anger) – इससे तात्पर्य शिशु द्वारा विषाद एवं क्रोध के संवेग के प्रदर्शन की मात्रा है।
3. भय (Fear) – इससे तात्पर्य शिशु द्वारा भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में व्यक्त की गयी डर की मात्रा है।
4. सक्रियता स्तर (Activity level) – एक शिशु की सक्रियता का कुल ऊर्जा स्तर।

चित्तप्रकृति के इन चारों आयामों में वैयक्तिक स्तर पर बड़े अन्तर पाये जाते हैं, एवं कई बार इन आयामों का परिचय शिशुओं के साथ कुछ क्षण बिताने एवं अन्तःक्रिया करने से ही हो जाता है। चित्तप्रकृति में पाये जाने वाले इन अन्तरों के आधार पर शोधकर्ता थामस एवं चेस ने 1999 में शिशुओं को तीन श्रेणियों के अन्तर्गत विभाजित किया है।

थामस एवं चेस (1999) का चित्तप्रकृति आधारित शिशु श्रेणी विभाजन

साध्य बच्चे (Easy children)	लगभग 40 प्रतिशत
असाध्य बच्चे (Difficult children)	लगभग 10 प्रतिशत
स्लो–टू–वार्म–अपबच्चे (Slow-to-warm-up children)	लगभग 15 प्रतिशत
बाकी 35 प्रतिशत बच्चों को इन श्रेणियों में शामिल नहीं किया जा सकता है क्योंकि वे मिश्रित गुणों वाले होते हैं।	

'साध्य बच्चे' उन बच्चों को कहा जाता है जो कि सामान्यतः खुश रहते हैं, नई परिस्थितयों में आसानी से ढल जाते हैं एवं दैनिक कार्यों की ज्यादातर गतिविधियों के लिए श्रीघ्र ही दिनचर्या निर्मित कर लेते हैं।

'असाध्य बच्चे' उन बच्चों को कहा जाता है जो नई परिस्थितियों एवं अनुभूतियों में ढलने में देर लगाते हैं एवं अन्य शिशुओं की अपेक्षा अधिक नकारात्मक व्यवहार दिखलाते हैं। इसके अलावा ये बच्चे अपनी दिनचर्या में भी नियमित नहीं होते हैं।

'स्लो–टू–वार्म–अप बच्चे' वे बच्चे कहलाते हैं जो कि उपरोक्त श्रेणियों के बच्चों की तुलना में कम सक्रिय एवं भावशून्य होते हैं और नई तथा अप्रत्याशित परिस्थितियों एवं घटनाओं का सामना होने पर अधिक नकारात्मक प्रतिक्रिया प्रदर्शित करते हैं।

चित्तप्रकृति में व्याप्त अन्तर की स्थिरता/स्थायित्व

चित्तप्रकृति की स्थायित्व के संबंध में एक जिज्ञासा सहज ही उत्पन्न होती है कि चित्तप्रकृति में पाये जाने वाले इन अन्तरों में कितना स्थायित्व होता है? इस संदर्भ शोधकर्ता लेमरी एवं उनके सहयोगियों के अनुसार शिशु के जन्म से लेकर प्रारंभिक 24 महीनों में इसमें 50 प्रतिशत स्थायित्व पाया जाता है परन्तु इसके उपरान्त यह चित्तप्रकृति काफी अधिक (90 प्रतिशत से भी अधिक) स्थायी हो जाती है। लिटन, मैगई एवं मैक्फेडन आदि अनुसंधानकर्ताओं का मानना है कि चित्तप्रकृति में यह स्थायित्व आनुवांशिक एवं वातावरणीय कारकों की वजह से होता है। हालॉकि

चित्तप्रकृति का वातावरण एवं आनुवांशिकता से कितना संबंध होता है एवं कितना नहीं? परन्तु चेस एवं थामस द्वारा 1984 में किए गए अध्ययन के अनुसार एक बात अवश्य ही स्पष्ट होती है कि बच्चों की सांवेगिक शैली में पायी जाने वाली यह व्यक्तिगत भिन्नता उनके सामाजिक विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है। उदाहरण के लिए साध्य बच्चों के अनुपात में असाध्य बच्चों की संख्या के एक बड़े हिस्से को जीने के आने वाले वर्षों में व्यावहारिक समस्याओं का अधिक सामना करना पड़ता है। ये बच्चे स्कूल में समायोजित नहीं हो पाते एवं इन्हें मित्र बनाने एंव मित्रता स्थापित करने एवं दूसरों के साथ रहने में कठिनाई होती है। इसके साथ ही ऐसे असाध्य बच्चे जो कि जीवन के शुरूआती दिनों में अधिक चंचल रहते हैं वे जैसे–जैसे बड़े होते जाते हैं एवं कई प्रकार की सामाजिक परिस्थितियों के संपर्क में आते हैं उतने ही शर्मीले स्वभाव वाले होते जाते हैं।

बच्चों में परानुभूति (Empathy: Responding to other's emotions) –

परानुभूति बच्चों के सांवेगिक विकास का एक अति महत्वपूर्ण पहलू है तथा यह उनके सामाजिक विकास को गहराई के स्तर तक प्रभावित करता है। डोन्डी एवं उनके सहयोगी अनुसंधानकर्ताओं ने 1999 में नवजात शिशुओं पर किये जा रहे अपने अध्ययन के दौरान यह पाया कि ये शिशु जब अपने आस पास लेटे हुए अन्य शिशुओं के रोने की आवाज सुनते थे तो उनमें विषादी तनाव (distress) उत्पन्न हो जाता था परन्तु जब वे स्वयं रोते थे तो इस तनाव की मात्रा अत्यंत ही कम होती थी। इन शोधकर्ताओं ने इस आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि इसका अर्थ था कि न रोने वाले बच्चे जब रोने वाले बच्चों की आवाज सुनते थे तब वे उन बच्चों की परेशानी एवं बेचैनी का अनुभव उसी प्रकार करते थे जब कि उसी तकलीफ का अनुभव वे स्वयं करते थे। इस प्रकार उन बच्चों में परानुभूति का भाव विकसित होना प्रारम्भ हो गया था। बहुत से मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि ऐसा ही होता है, एवं जीवन के शुरूआती दो वर्षों परानुभूति की क्षमता बच्चों में काफी विकसित हो जाती है। आयु के इन वर्षों में हमारा संज्ञानात्मक विकास इस स्तर का हो जाता है कि हम स्वयं को दूसरें से पर्याप्त भिन्न समझने लगते हैं हममें आत्म का भाव विकसित हो जाता है। एवं इसके साथ ही हम यह समझने लगते हैं कि दूसरों के हमें होने वाले अहसासों से भिन्न प्रकार के अहसासों का अनुभव हो सकता है।

इस संदर्भ में मनोवैज्ञानिक जानवैक्सलर ने 1992 में एक अध्ययन किया जिसमें आधार पर उन्होंने परानतुभूति के विकास पर अपने विचार व्यक्त किये। उनके अनुसार लगभग 18 महीने की आयु के बच्चों में उस अवस्था में जबकि उनके अन्य साथी बच्चों को कोई तकलीफ हो जाती है अथवा वे तनाव में होते हैं उन बच्चों को आराम पहुँचाने का प्रयास करने की प्रवृत्ति विकसित होने लगती है। ये प्रयास प्रायः दूसरे बच्चों को स्पर्श करने, थपथपाने एवं गले लगाने के रूप में होते हैं। लगभग दो वर्ष की आयु को होने पर ये ही बच्चे दूसरे बच्चों को उनकी तकलीफ की अवस्था में खुश करने के लिए अपनी पसंद की वस्तुये जैसे – खिलौना, खाने की कोई वस्तु देने का प्रयास करते हैं। कुछ विशेष परिस्थितियों में ये बच्चे अन्य साथी बच्चों को खुश करने के लिए अपने बड़ों की सहायता लेने में भी संकोच नहीं करते हैं। चार वर्ष की आयु का होने पर ज्यादातर बच्चे यह समझने लगते हैं

कि लोग विपरीत परिस्थितियों में क्यों परेशान हो जाते हैं? तथा उनके सांवेगिक रूप से विक्षुब्ध होने के क्या कारण हैं? अन्ततः परानुभूति का विकास इस सीमा तक हो जाता है कि स्वयं को दूसरे की परेशानी का कारण पाने पर उनमें दोष–भाव (guilt) उत्पन्न हो जाता है। बच्चों में उत्पन्न परानुभूति उनमें प्रतिसामाजिक व्यवहार अर्थात् उस प्रकार के व्यवहार जिन्हें परोपकारी व्यवहार कहा जाता है को बढ़ाने का कार्य करती है। प्रतिसामाजिक व्यवहार (prosocial behaviour) उस प्रकार के व्यवहार को कहा जाता है जो कि व्यक्ति दूसरों को लाभ पहुँचाने के लिए उस अवस्था में भी करता है जबकि उससे उसे स्वयं कोई लाभ मिलने की संभावना नहीं होती है।

6.4 बचपन एवं किशोरावस्था में नैतिक विकास

प्रत्येक समाज के सुव्यवस्थित परिचालन एवं सर्वांगीण विकास हेतु उस समाज के सदस्यों का सर्वरूप में विकसित होना आवश्यक होता है। मानव विकास के सभी महत्वपूर्ण आयामों में नैतिक विकास एक अत्यंत ही विशिष्ट आयाम है। किसी भी देश का विकास उसे देश के नागरिकों के चारित्रिक विकास पर निर्भर करता है। अपने समाज के व्यक्तियों के चारित्रिक विकास की व्यवस्था बनाना प्रत्येक समाज की जिम्मेदारी होती है। लोग मिलकर समाज बनाते हैं इसके लिए प्रत्येक व्यक्ति की इसमें महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कौन सा समाज कितना चरित्रवान है इसकी परख उस समाज विशेष में उसके सदस्यों द्वारा पालन किये जाने वाले नैतिक नियमों एवं मर्यादाओं से होती है। पाठकों के मन में नैतिक विकास या नैतिक मर्यादा के बारे में सहज ही जिज्ञासा उत्पन्न होना स्वाभाविक है। नैतिक विकास को समझने के लिए नैतिकता के संप्रत्यय को मनोवैज्ञानिक रीति से समझना आवश्यक है। सामान्यतः नैतिकता से तात्पर्य समाज के सदस्यों के मन में सही एवं गलत की धारणा एवं उसके पालन से होता है। सही एवं गलत का बोध ही विवेक कहलाता है। नैतिकता व्यक्ति को समाज से भावनात्मक एवं वैचारिक रूप से घनिष्ठता से जोड़ती है। व्यक्ति को स्वयं के विकास संबंधी निर्णय लेने, योजनायें बनाने एवं पालन करने में यह ध्यान रखना पड़ता है कि क्या उसके द्वारा लिये जाने वाले निर्णय आदि से समाज की किसी मर्यादा का उल्लंघन तो नहीं होता है। व्यक्ति में नैतिकता का विकसित होना सहज नहीं होता। यह धीरे–धीरे घटने वाले समयसाध्य प्रक्रिया होती है तथा उम्र अलग–अलग पड़ावों पर अलग–अलग सीमा तक विकसित होती है। प्रायः इसका विकास बचपन एवं किशोरावस्था में ही हो जाता है। इसके विकास की प्रक्रिया को समझाने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने कई सिद्धान्तों की रचना की है उन सिद्धान्तों में कोह्लबर्ग का नैतिक विकास का सिद्धान्त सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। यह सिद्धान्त बच्चों एवं किशोरों में नैतिक विकास की व्याख्या सुव्यवस्थित रूप में करता है। इस सिद्धान्त का वर्णन निम्नांकित पंक्तियों में किया जा रहा है।

कोह्लबर्ग का 'नैतिक विकास का सिद्धान्त'

आइये कुछ प्रश्नों पर विचार करते हैं। कि, क्या विद्यार्थियों द्वारा किसी परीक्षा में नकल करना सही है? क्या उपभोक्ताओं को गलत विज्ञापनों द्वारा भ्रमित कर फायदा उठाना सही है? क्या सरकार द्वारा अत्यधिक सेवाकर वसूलना सही है?

एक वयस्क के रूप में हम प्रायः कई प्रकार के सवालों से जूझते पाये जाते हैं कि दी गयी परिस्थिति में क्या सही है और क्या गलत। और एक वयस्क के रूप में हम पाते हैं कि इस तरह के मामले प्रायः अत्यंत जटिल होते हैं। किसी भी प्रकार के व्यवहार को स्वीकारने अथवा अस्वीकारने के निर्णय लेना बहुत ही दुविधा में डाल देता है क्योंकि ये प्रश्न बहुत विशिष्ट परिस्थितियों, वैधानिक आधारों एवं अन्य अनेक कारकों के साथ–साथ हमारे व्यक्तिगत नैतिक नियमों के पालन पर भी निर्भर करते हैं। ये तो वयस्कों की बात हुई परन्तु इस तरह के प्रश्नों के उत्पन्न होने पर बच्चे एवं किशोर इनसे किस प्रकार निबटते हैं? यह अपने आप में अत्यंत ही महत्वपूर्ण मुद्दा है। उन्हें भी नैतिक निर्णय करने पड़ते हैं, और क्या ये निर्णय वयस्कों की भांति ही लिये जाते हैं अथवा इनमें वयस्कों की भांति ही तर्कशक्ति का प्रयोग किया जाता है? ये कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न हैं जिन पर कई मनोवैज्ञानिकों ने अनुसंधान किये हैं जिनमें सबसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त का विकास लारेंस कोह्लबर्ग द्वारा सन् 1984 में किया गया है।

कोह्लबर्ग ने नैतिक तर्कणा के तीन स्तरों की चर्चा की है। तथा प्रत्येक स्तर को दो दो सोपानों में बॉटा है। कोह्लबर्ग के सिद्धान्त का सारणीकरण निम्न है –

स्तर (Level)	सोपान (Stages)	
प्रथम स्तर – प्रीकन्वेन्शनल लेवल (Preconventional level) (Age 4-10) नैतिक तर्कणा का संचालन दूसरों द्वारा रचित मानकों द्वारा होता है। किसी व्यवहार का अच्छा या बुरा होना उसके द्वारा उत्पन्न पुरस्कार अथवा दण्ड के परिणाम पर निर्भर करता है।	प्रथम सोपान	इस सोपान में वह व्यवहार जिससे दण्ड से बचाव होता है तथा दण्ड नहीं मिलता है सही माना जाता है। बच्चे दण्ड के भय से आज्ञा का पालन करते हैं।
	द्वितीय सोपान	यह स्व–रूचि की अवस्था होती है। वही सही माना जाता है जिससे व्यक्तिगत लाभ होता है अथवा जिस व्यवहार से बाद में लाभ मिलने की संभावना होती है। तुम मेरी पीठ खुजलाओ मैं तुम्हारी पीठ खुजलाऊँगा।
द्वितीय स्तर– कन्वेन्शनल लेवल (Conventional level) (Age 10-13) इस स्तर पर बालक दूसरों के मानकों का आत्मसात कर लेता है तथा इन मानकों के आधार पर सही व गलत का निर्णय करता है।	तृतीय सोपान	यह पारस्परिक संबंधों की नैतिकता की अवस्था होती है। ''अच्छा लड़का – अच्छी लड़की'' होने की ओर झुकाव। इसमें बच्चा अच्छा कहलाने के लिए दूसरों की सहायता करता है।
	चतुर्थ सोपान	यह सामाजिक सिस्टम एवं अन्तर्मन की नैतिकता की अवस्था है। इसमें सत्ता शक्ति की ओर झुकाव होता है। अपने कर्तव्य का पालन, सत्ता को सम्मान देना एवं सामाजिक आदेश का पालन करना नैतिकता

		को परिभाषित करता है।
तृतीय स्तर– पोस्टकन्वेंशनल लेवल (Postconventional level) (Age - After 13 at young adulthood, or never) नैतिक व्यवहार किशोर अथवा वयस्क के आन्तरिक नियंत्रण में होता है। यह सर्वोच्च स्तर होता है एवं यथार्थ नैतिकता का चिह्न होता है।	पंचम सोपान	यह कानूनी, विधि सम्मत नैतिकता की अवस्था है। इसमें लोकतांत्रिक सहमति से व्यक्तिगत अधिकारों एवं कानूनों का आदर किया जाता है। इसें अधिक लोगों के लाभ को महत्व दिया जाता है। यह विश्वास किया जाता है कि समाज के नागरिकों द्वारा कानूनों का पालन करने से समाज की सबसे अच्छी सेवा होती है।
	षष्ठ सोपान	यह सर्वोच्च नैतिकता की अवस्था है। यह सार्वभौमिक, सार्वदेशिक नैतिक सिद्धान्तों की नैतिकता है। इसमें व्यक्ति अपने अनुभवों एवं ज्ञान के आधार पर नैतिक मानकों को स्वयं द्वारा पालन करने के लिए निर्धारित करता है एवं इसके लिए वह विपरीत सामाजिक कानूनों एवं मान्यताओं से विचलित नहीं होता।

नैतिक तर्कणा के विकास के संबंध में कोह्लबर्ग के विचार– कोह्लबर्ग दावा करते हैं कि नैतिक तर्कणा के विकास की प्रत्येक अवस्था से प्रत्येक व्यक्ति को गुजरना पड़ता है। तथा नैतिक तर्कणा के विकास का एक निश्चित क्रम होता है। एक अवस्था से गुजरने के उपरान्त ही व्यक्ति नैतिक विकास की अगली अवस्था में प्रवेश करने के योग्य होता है। यदि किसी एक अवस्था में नैतिक विकास अवरूद्ध हो जाता है तो उस अवस्था को लॉघकर अन्य अवस्था में जाया नहीं जा सकता है। कोह्लबर्ग के अनुसार पोस्टकन्वेंशनल रीजनिंग की अवस्था में तब तक प्रवेश संभव नहीं है जब तक कि व्यक्ति पियाजे के फार्मल ऑपरेशन्स की अवस्था को पार न कर ले। इसके लिए व्यक्ति को सार रूप में सोचना एवं नैतिक सिद्धान्तों को परिकल्पित परिस्थितियों में प्रयुक्त करने की योग्यता एक अनिवार्य आवश्यकता है। कोह्लबर्ग के अनुसार नैतिक मूल्यों की शिक्षा देकर नैतिकता के विकास को गति प्रदान की जा सकती है।

6.5 किशोरावस्था में सांवेगिक विकास

वृहद रूप से यह माना जाता रहा है कि किशोर बहुत ही भावनात्मक होते हैं। किशोरों की भावनात्मकता को उनके मूड में आने वाले त्वरित बदलावों एवं एकाएक सांवेगिक विस्फोट के रूप में देखा जाता रहा है। क्या यह धारणा सत्य है? हॉ कुछ सीमा तक तो सत्य है। इस मुद्दे पर किये गये बहुत से अध्ययनों में

सिक्जेन्तमिहालयी एवं लारसन द्वारा 1984 में किया गया अध्ययन आश्चर्यजनक परिणाम प्रस्तुत करता है। इस अध्ययन में एक बड़ी संख्या में किशोरों को सम्मिलित किया गया तथा उन्हें अपने मूड में होने वाले बदलावों को डायरी में नोट करने को कहा गया। परिणाम में पाया गया कि इन किशोरों की मनोदशा में वयस्क एवं बूढ़े लोगों की तुलना में अधिक उतार–चढ़ाव पाया जाता है। ये भावनात्मक उतार–चढ़ाव काफी तेजी से होते हैं एवं कभी–कभी तो एक मिनट के अंदर ही कई बार मूड बदलता देखा जाता है। अधिक उम्र के व्यक्तियों की मनोदशा में भी भावात्मक उतार–चढ़ाव देखने को मिलता है परन्तु यह बहुत ही कम होता है तथा काफी धीमा होता है। इसके अलावा किशोरों के सांवेगिकता की अन्य स्वीकारणीय धारणाओं में से बहुत ही कम सत्य पायी गयी हैं। उदाहरण के लिए, प्रायः यह माना जाता है कि किशोरावस्था एक अत्यधिक तनावपूर्ण एवं अप्रसन्नतादायक अवस्था होती है। लेकिन सत्य तो यह है कि डाइनर एवं डाइनर द्वारा 1996 में किये गये अध्ययन की रिपोर्ट में इसके उलट परिणाम पाये गये। इस रिपोर्ट में कहा गया है कि यह किशोरावस्था प्रसन्नतापूर्ण एवं आत्मविश्वास से परिपूर्ण अवस्था होती है। इसी प्रकार बचमान द्वारा 1987 के अध्ययन की रिपोर्ट में उल्लेख किया गया है कि अधिकतर किशोरों के उनके माता–पिता के साथ संबंध अत्यंत ही मधुर एवं उल्लास से परिपूर्ण होते हैं। ऐसा भी नहीं है कि किशोरावस्था की स्थिति हमेशा इसी प्रकार सकारात्मक होती है बल्कि इसमें दुविधा एवं भावनात्मक संघर्ष भी देखने को मिलता है। किशोर प्रायः अपने माता–पिता से इस बात पर असहमत होते हैं कि उन्हें अपना खाली समय किस प्रकार बिताना चाहिए और अपने पास उन्हें कितने रूपये रखने चाहिए अथवा खर्च करने चाहिए। इसके अलावा लैंगिक संबंध को लेकर भी किशोरों में अपने माता–पिता की राय से इतर राय देखने को मिलती है। इस प्रकार यह देखने में आता है कि यद्यपि आम धारणा किशोरावस्था को नकारात्मक मानने की है परन्तु वास्तव में यह इस धारणा से कहीं अधिक सकारात्मक बदलावों वाली अवस्था है।

माता–पिता की पालन–पोषण शैली का किशोरों के सांवेगिक विकास पर प्रभाव–

हालॉकि यह सत्य है कि विभिन्न अनुसंधान यह दर्शाते हैं कि किशोर उनके माता–पिता के साथ बेहतर तरीके से अपना समय व्यतीत करते हैं बावजूद इसके आश्चर्यजनक रूप से विकास के इन वर्षो में माता–पिता एवं किशारों के बीच संघर्ष के बहुत से स्रोत भी उत्पन्न होते हैं। विशेष रूप से इस अवस्था में माता–पिता को यह जान लेना चाहिए कि किशोरावस्था में उनके बच्चे शारीरिक मानसिक एवं सांवेगिक बदलावों के एक महत्वूपर्ण चरण से गुजर रहे हैं जो उनको एक वयस्क के रूप में तेजी से बदल रहा है तथा इसे उन्हें समझना चाहिए तथा अपने बच्चों को पहले की अपेक्षा अधिक सुरक्षायुक्त स्वतंत्रता देनी चाहिए। माता–पिता को अपने बच्चों में हो रहे इन बदलावों के प्रति किस प्रकार अनुकिया करनी चाहिए? यह अत्यंत ही महत्वपूर्ण प्रश्न है। इस संदर्भ में हो रहे अध्ययनों के परिणाम यह बतलाते हैं कि हालॉकि कोई भी पालन–पोषण की शैली अपने आप में सर्वांगपूर्ण नहीं है परन्तु फिर भी ऐसी बहुत सी शैलियॉ हैं जो कि अन्यों से बेहतर हैं एवं अधि प्रभावपूर्ण एवं सकारात्मक परिणाम प्रस्तुत करती हैं, जिनके बारे में माता–पिता को जानना चाहिए। पैरेन्टिंग स्टाइल में अन्तर को स्पष्ट करने वाली

दो महत्वपूर्ण विमाओं में पहली है माता–पिता की मॉगपूर्णता (parental demandingness) एवं दूसरी है माता–पिता की बच्चों के साथ भागीदारी (parental responsiveness)। पैरेंटल डिमांडिंगनेस से तात्पर्य माता–पिता द्वारा बच्चों को नियंत्रण में रखे जाने की सीमा से है। इस प्रकार की शैली अपनाने वाले माता–पिता जब यह देखते हैं कि बच्चे उनके द्वारा बनाये गये नियमों का पालन नहीं कर रहे हैं एवं उनकी अपेक्षाओं पर खरे नहीं उतर रहे हैं तो प्रायः वे अपने बच्चों को अपने सामाजिक रूतबे एवं शक्ति–सामर्थ्य द्वारा नियंत्रित करते की कोशिश करते हैं, अनेक प्रकार के अनुशासन लागू करते हैं तथा क्रोधपूर्ण एवं आवेशपूर्ण व्यवहार करते हैं। पैरेंटल रिस्पान्सिवनेस से तात्पर्य माता–पिता द्वारा बच्चों के कार्यों एवं गतिविधियों में सक्रिय एवं सहयोगपूर्ण भागीदारी की सीमा से है। इस शैली का उपयोग करने वाले माता–पिता अपने बच्चों को सावधानीपूर्वक सुनते एवं समझते हैं, उनके निवेदन पर ध्यान देते हैं, अपने बच्चों की चिंताओं एवं रूचियों को उनसे बातचीत कर समझने की कोशिश करते हैं एवं ध्यान देते हैं।
बॉमरिंड ने 1991 में इन विमाओं के आधार पर चार प्रकार के पैरेंटिंग स्टाइल का वर्णन किया है जो कि निम्नलिखित सारणी में दर्शाया गया है।

		Parental Demandingness	
		Low	High
Parental Responsiveness	Low	Rejecting/ Neglecting	Authoritarian
	High	Permissive	Authoritative

उपरोक्त सारणी के अनुसार अथोरिटेरियन माता–पिता अपने बच्चों पर अत्यधिक अनुशासन थोपते हैं साथ ही बच्चों की भावनाओं एवं चिंताओं के प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार प्रदर्शित करते हैं। वे अपने बच्चों के लिए कड़े नियम लागू करते हैं तथा अपने निर्णयों में उन्हें अपने विचार रहने की स्वतंत्रता नहीं देते हैं। अथोरिटेटिव माता–पिता इसके विपरीत अपने बच्चों के लिए कड़े नियम लागू करते हैं परन्तु साथ ही अपने बच्चों की चिंताओं एवं भावनाओं के प्रति संजीदा रहते हैं एवं उन्हें गंभीरतापूर्वक सुनते हैं एवं अपने निर्णयों में उन्हें अपने विचार व्यक्त करने का मौका भी देते हैं। परमिसिव माता–पिता अपने बच्चों को काफी स्वतंत्रता देते हैं वे अपने बच्चों के निर्णयों में हस्तक्षेप नहीं करते हैं। अपने बच्चों के लिए कड़ा अनुशासन नहीं लागू करते हैं परन्तु अपने बच्चों की चिंताओं एवं भावनाओं को भली प्रकार समझने के लिए सक्रिय भूमिका निभाते हैं। रिजेक्टिंग/नेग्लेक्टिंग माता–पिता न तो अपने बच्चों पर नियम अनुशासन लागू करते हैं और न ही वे अपने बच्चों के व्यवहार तथा गतिविधियों पर ही कोई खास ध्यान देते हैं। वे अपने बच्चों की भावनाओं एवं चिंताओं के प्रति भी कोई गंभीरता नहीं दिखलाते हैं एक प्रकार से वे अपने बच्चों के प्रति उपेक्षापूर्ण रवैया रखते हैं।
माता–पिता द्वारा अपनायी गयी पालन–पोषण की इन शैलियों के उनके बालकों के सांवेगिक विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव देखने में आते हैं। बॉमरिन्ड के अनुसार

पालन–पोषण के इन सभी तरीकों में अथोरिटेटिव पैरेन्टिंग स्टाइल सबसे बेहतर परिणाम देने वाली शैली है। जिन किशोरों के माता–पिता इस शैली को अपनाते हैं उनके वे संज्ञानात्मक रूप से एवं भावनात्मक–सामाजिक रूप से काफी क्षमतावान एवं योग्य होते हैं। दूसरे शब्दों में वे आत्मविश्वास से भरपूर होते हैं तथा साथ ही अन्यों के प्रति मित्रवत तथा सहयोगपूर्ण व्यवहार प्रदर्शित करते हैं। इसका परिणाम स्कूल में उनके बेहतर निष्पादन के रूप में परिलक्षित होता है। इसके अलावा जिन किशोरों के माता–पिता रिजेक्टिंग/नेग्लेक्टिंग शैली का उपयोग करते हैं उपरोक्त वर्णित आयामों में काफी पिछड़े हुए होते हैं। वे प्रायः असंगत व्यवहार का प्रदर्शन करते हैं तथा भावनात्मक रूप से अधिक विचलित रहते हैं। दूसरे शब्दों में उनमें भावनात्मक परिपक्वता का अभाव रहता है तथा साथ ही वे असामाजिक व्यवहार प्रदर्शन में संलिप्त रहते हैं। जिन किशोरों के माता पिता अथोरिटेरियन या परमिसिव पैरेंटिंग स्टाइल का प्रयोग करते हैं वे उपरोक्त वर्णित विशेषताओं के बीच की विशेषताओं को परिलक्षित करते हैं।

मित्रता – भावनात्मक विकास का महत्वपूर्ण पहलू

किशोरावस्था में मनोदशा में उत्पन्न होने वाले त्वरित बदलावों तथा शारीरिक बदलावों के कारण किशोर में भावनात्मक संतुष्टि पाने की आकांक्षा तथा अपनी पहचान बनाने की आकांक्षा जन्म लेने लगती है तथा वह इसके लिए परिवार से बाहर रास्ते तलाशने लगता है, इस प्रयास में वह प्रायः अपने समान लिंग के किशोरों के साथ भावनात्मक संबंध स्थापित करता है अपनी भावनाओं एवं विचारों के उनके साथ साझा करता है। समान प्रकार की भावनाओं एवं विचारों के आदान प्रदान से उसे भारी संतुष्टि का अहसास होता है। यह संतुष्टि उसे मित्रता स्थापित करने में मदद करती है। इस मित्रता का उसके आगे के भावनात्मक विकास पर गहरा प्रभाव पड़ता है। किशोर केवल समान लिंग के किशोरों से ही मित्रता नहीं करता है बल्कि उसके लिए विपरीत लिंग के किशोरों से भी मित्रता गंभीर अर्थ रखती है एवं उतनी ही महत्वपूर्ण होती है। इस मित्रता का प्रभाव इतना गंभीर होता है कि प्रायः किशोर अपने माता–पिता के प्रभाव को नकारने लगते हैं एवं अपनी पहचान को अपने संगी साथियों में ही खोजने की कोशिश करते हैं।

सार रूप में किशोरावस्था जीवन के विकास का एक महत्वपूर्ण पड़ाव होता है यह बाल्यावस्था एवं वयस्कावस्था के बीच अन्तरण की अवस्था होती है। इसमें गंभीर सांवेगिक उथलपुथल होती है जिसमें माता–पिता, शिक्षक एवं समाज को समझदारीपूर्ण भूमिका निभानी पड़ती है।

अभ्यास प्रश्न 1 – सांवेगिक विकास के अन्तर्गत चित्तप्रकृति के विभिन्न आयाम कौन से हैं?

अभ्यास प्रश्न 2 – अवस्था सिद्धान्त किसे कहते हैं? उपरोक्त इकाई में कौन से अवस्था सिद्धान्त का वर्णन किया गया है?

अभ्यास प्रश्न 3 – कोह्लबर्ग के नैतिक विकास के सिद्धान्त की विभिन्न स्तरों पर प्रकाश डालें?

अभ्यास प्रश्न 4 – बॉमरिण्ड द्वारा वर्णित किशोरों के पालन–पोषण की विभिन्न शैलियों में सबसे लाभकारी एवं दूसरी सबसे बेकार शैली कौन सी है?

6.6 सारांश

अभी तक आप बचपन एवं किशोरावस्था में होने वाले सांवेगिक एवं नैतिक विकास की प्रक्रिया का परिचय प्राप्त कर चुके हैं। सार रूप में यदि कहें तो सांवेगिक एवं नैतिक विकास निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है इसकी शुरूआत बच्चे की शैशवावस्था से ही हो जाती है जिसमें जीवन के प्रारम्भिक कुछ महीनों में ही शिशु द्वारा संवेगों की अभिव्यक्ति के चिह्न दिखलायी पड़ने लगते हैं। दो महीने की उम्र के शिशु मानव चेहरों के दिखलायी पड़ने पर अनुक्रिया के रूप में सामाजिक मुस्कान (social smiling) जिसे की अंग्रेजी में शोशल स्माइलिंग कहा जाता है का प्रदर्शन करने लगते हैं। श्रौफी एवं वाटर्स के अनुसार तीन से चार महीने का होने पर शिशु हंसने (laughter) के संवेग का प्रदर्शन करने लगते हैं। इसके अलावा अन्य संवेग जैसे कि गुस्सा, दुख, एवं आश्चर्य भी शीघ्र ही दिखलाई पड़ने लगते हैं जिन्हें वयस्कों द्वारा पहचाना जाना संभव होता है। जीवन के शुरूआती दो वर्षों परानुभूति की क्षमता बच्चों में काफी विकसित हो जाती है। किशोरावस्था में सांवेगिक विकास में काफी उथल पुथल देखने में आती है। किशोरों की मनोदशा में काफी तीव्रता से उतार–चढ़ावपूर्ण बदलाव होते हैं जो उनकी भावनात्मक स्थिरता को प्रभावित करते हैं। किशोरों के भावनात्मक विकास में उनके माता–पिता की पालन–पोषण की शैली की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सांवेगिक विकास के साथ ही बच्चों एवं किशोरों में नैतिक विकास भी शुरू से ही प्रारम्भ हो जाता है जिसका परिचय कोह्लबर्ग द्वारा वर्णित तीन स्तरों एवं छः सोपानों में मिलता है। कोह्लबर्ग के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को इन छः अवस्थाओं से क्रमिक रूप से गुजरना पड़ता है। प्रत्येक अवस्था के बाद दूसरी निश्चित अवस्था होती है जिसे पारकर ही अगली अवस्था मे विकास सुनिश्चित होता है। यदि किसी वजह से किसी एक मध्य की अवस्था में नैतिक विकास अवरूद्ध हो जाता है तो आगे का उन्नत नैतिक विकास संभव नहीं हो पाता है।

6.7 पारिभाषिक शब्दावली

सांवेगिक विकास – विभिन्न प्रकार के संवेगों को पहचानने, महसूस करने, समझने एवं अभिव्यक्त करने की क्षमता से संबंधित विकास ही सांवेगिक विकास कहलाता है। संवेग के कई प्रकार हैं जिनमें हॅसना, निराशा, खुशी, दुख, भय, क्रोध एवं आश्चर्य प्रमुख हैं।

नैतिक विकास – नैतिकता से तात्पर्य समाज के सदस्यों के मन में सही एवं गलत की धारणा एवं उसके पालन से होता है। सही एवं गलत का बोध ही विवेक कहलाता है। नैतिकता व्यक्ति को समाज से भावनात्मक एवं वैचारिक रूप से घनिष्ठता से जोड़ती है।

चित्तप्रकृति (Temperament)– चित्तप्रकृति सांवेगिक अनुक्रियाओं की गुणवत्ता एवं तीव्रता में स्थिर वैयक्तिक भिन्नता को दर्शाती है। कागान एवं स्नाइडमैन के अनुसार इस प्रकार की वैयक्तिक भिन्नतायें जीवन के काफी शुरूआती दौर में ही जैसे कि जन्म से ही व्यक्ति में पायी जाती हैं।

पैरेंटल डिमांडिंगनेस (Parental demandingness) – पैरेंटल डिमांडिंगनेस से तात्पर्य माता–पिता द्वारा बच्चों को नियंत्रण में रखे जाने की सीमा से है। इस प्रकार की शैली अपनाने वाले माता–पिता जब यह देखते हैं कि बच्चे उनके द्वारा बनाये गये नियमों का

पालन नहीं कर रहे हैं एवं उनकी अपेक्षाओं पर खरे नहीं उतर रहे हैं तो प्रायः वे अपने बच्चों को अपने सामाजिक रूतबे एवं शक्ति–सामर्थ्य द्वारा नियंत्रित करते की कोशिश करते हैं, अनेक प्रकार के अनुशासन लागू करते हैं तथा क्रोधपूर्ण एवं आवेशपूर्ण व्यवहार करते हैं।

पैरेंटल रिसपान्सिवनेस (Parental responsiveness) – पैरेंटल रिस्पान्सिवनेस से तात्पर्य माता–पिता द्वारा बच्चों के कार्यों एवं गतिविधियों में सक्रिय एवं सहयोगपूर्ण भागीदारी की सीमा से है। इस शैली का उपयोग करने वाले माता–पिता अपने बच्चों को सावधानीपूर्वक सुनते एवं समझते हैं, उनके निवेदन पर ध्यान देते हैं, अपने बच्चों की चिंताओं एवं रूचियों को उनसे बातचीत कर समझने की कोशिश करते हैं एवं ध्यान देते हैं।

6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1– चित्तप्रकृति के आयाम (dimensions of temperament)

सकारात्मक सांवेगिकता (positive emotionality) – इससे तात्पर्य शिशु द्वारा प्रसन्नता प्रदर्शित करने की मात्रा से होता है, अर्थात् अच्छा, खुशमिजाजीपन

विषाद–क्रोध (distress-anger) – इससे तात्पर्य शिशु द्वारा विषाद एवं क्रोध के संवेग के प्रदर्शन की मात्रा है।

भय (Fear) – इससे तात्पर्य शिशु द्वारा भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में व्यक्त की गयी डर की मात्रा है।

सक्रियता स्तर (Activity level) – एक शिशु की सक्रियता का कुल ऊर्जा स्तर।

उत्तर 2– मानव विकास के वे सभी सिद्धान्त जो विकास की परिपक्वावस्था तक पहुँचने के लिए अन्य पूर्व अवस्थाओं से व्यक्ति के क्रमिक रूप से गुजरने को अनिवार्य मानते हैं अवस्था सिद्धान्त कहलाते हैं। प्रस्तुत इकाई में कोह्लबर्ग द्वारा प्रतिपादित नैतिक विकास के सिद्धान्त को अवस्था सिद्धान्त कहा गया है।

उत्तर 3– प्रथम स्तर – प्रीकन्वेन्शनल लेवल (Preconventional level) (Age 4-10) नैतिक तर्कणा का संचालन दूसरों द्वारा रचित मानकों द्वारा होता है। किसी व्यवहार का अच्छा या बुरा होना उसके द्वारा उत्पन्न पुरस्कार अथवा दण्ड के परिणाम पर निर्भर करता है। द्वितीय स्तर– कन्वेन्शनल लेवल (Conventional level) (Age 10-13) इस स्तर पर बालक दूसरों के मानकों का आत्मसात कर लेता है तथा इन मानकों के आधार पर सही व गलत का निर्णय करता है। तृतीय स्तर– पोस्टकन्वेंशनल लेवल (Postconventional level) (Age - After 13 at young adulthood, or never) नैतिक व्यवहार किशोर अथवा वयस्क के आन्तरिक नियंत्रण में होता है। यह सर्वोच्च स्तर होता है एवं यथार्थ नैतिकता का चिह्न होता है।

उत्तर 4– बॉमरिन्ड के अनुसार पालन–पोषण के इन सभी तरीकों में अथोरिटेटिव पैरेन्टिंग स्टाइल सबसे बेहतर परिणाम देने वाली शैली है। जिन किशोरों के माता–पिता इस शैली को अपनाते हैं उनके वे संज्ञानात्मक रूप से एवं भावनात्मक–सामाजिक रूप से काफी क्षमतावान एवं योग्य होते हैं। दूसरे शब्दों में वे आत्मविश्वास से भरपूर होते हैं तथा साथ ही अन्यों के प्रति मित्रवत तथा सहयोगपूर्ण व्यवहार प्रदर्शित करते हैं। इसका परिणाम स्कूल में उनके बेहतर निष्पादन के रूप में परिलक्षित होता है। इसके अलावा जिन किशोरों के माता–पिता रिजेक्टिंग/नेग्लेक्टिंग शैली का उपयोग करते हैं उपरोक्त वर्णित आयामों में

काफी पिछड़े हुए होते हैं। वे प्रायः असंगत व्यवहार का प्रदर्शन करते हैं तथा भावनात्मक रूप से अधिक विचलित रहते हैं। दूसरे शब्दों में उनमें भावनात्मक परिपक्वता का अभाव रहता है तथा साथ ही वे असामाजिक व्यवहार प्रदर्शन में संलिप्त रहते हैं।

6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

डॉ महेन्द्र कुमार मिश्रा (2007) विकासात्मक मनोविज्ञान, जयपुर – यूनीवर्सिटी बुक हाउस।
रॉबर्ट ए. बैरोन (2006) साइकोलॉजी, दिल्ली – पियर्सन प्रेंटिस हाल।
सैमुअल वुड एवं एलेन वुड (2000) द इसेंशियल वर्ल्ड ऑफ साइकोलाजी, यू एस ए– एलिन एण्ड बेकन।

6.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था में संवेगात्मक तथा नैतिक विकास की विस्तार पूर्वक व्याख्या कीजिए।

इकाई – 7 बुद्धि की परिभाषायें, बुद्धि के प्रकार

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 बुद्धि

7.3.1 बुद्धि : अर्थ एवं परिभाषा

7.3.2 बुद्धि का स्वरूप

7.3.3 बुद्धि के प्रकार

7.4 सारांश

7.5 शब्दावली

7.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.8 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना–

प्रिय विद्यार्थियों, बुद्धि शब्द से प्रायः हम सभी परिचित हैं तथा अपने दिन – प्रतिदिन के लगभग सभी कार्यो में बुद्धि का प्रयोग करते हैं। प्रायः जिस व्यक्ति की बुद्धि जितनी कुशाग्र होती है, उसे उतना ही अधिक योग्य एवं प्रतिभाशाली माना जाता है, किन्तु कया हमने कभी विचार किया की कि आखिर यह बुद्धि है क्या? प्राणी की किस क्षमता को बुद्धि को संज्ञा दी जाती है? बुद्धिमान होना क्यों आवश्यक है? कया बुद्धि को बढ़ाया जा कता है? क्या बुद्धि एक ही प्रकार की होती है अथवा इसके भी अनेक भेद हो सकते है, इत्यादि ।

यदि आप अपनी इन समस्त जिज्ञासाओं का समाधान चाहते है तो प्रस्तुत इकाई को ध्यानपूर्वक पढ़े और समझे, क्योंकि इस इकाई में बुद्धि के स्वरूप एवं भेदों के विषय में विस्तापूर्वक चर्चा की जाएगी। जैसे – जैसे आप विषय की गहराई में उतरते जायेंगे।चीजें स्वतः ही समझ में आने लगेंगे।

बुद्धि व्यक्ति की जन्मजात मानसिक क्षमता है। बुद्धि एक ऐसा शब्द है, जिससे हम सभी परिचित हैं। पढ़े–लिखे हों या अनपढ़, हम सभी के जीवन में बुद्धि का महत्वपूर्ण स्थान है, यह ईश्वर–प्रदत्त वह योग्यता है, जो उसके प्रत्येक कार्य में पायी जाती है। सामान्यतः बुद्धि को बुद्धिमान व्यक्ति के साथ सहसंबंधित करके जाना समझा जाता है, जो व्यक्ति जितनी ही सुगमता एवं कुशलतापूर्वक नित्यप्रति जीवन में घटित होने वाली घटनाओं एवं कार्यों का

सामना कर लेता है, वह उतना ही बुद्धिमान माना जाता है अर्थात् उसकी बुद्धि उतनी ही तीव्र होती है; कुछ विद्वानों ने बुद्धि को तर्क, निर्णय एवं आत्मालोचना करने की योग्यता माना है किन्तु परम्परागत रूप में बुद्धि विभिन्न मानसिक गुणों का समुच्चय है जो विभिन्न परिस्थितियों में सघन रूप से कार्य करती है तथा व्यक्ति की समस्याओं का समाधान करने तथा उद्देश्यों की प्राप्ति की ओर ले जाती है।

7.2 उद्देश्य–

प्रिय पाठकों, इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप–

- बुद्धि के अर्थ एवं स्वरूप को स्पष्ट कर सकेंगे।
- बुद्धि की विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
- बुद्धि के विभिन्न प्रकारों का विवेचन कर सकेंगे।
- बुद्धि की महत्ता को स्पष्ट कर सकेंगे।

7.3 बुद्धि

7.3.1 :– बुद्धिः अर्थ एवं परिभाषायें :– बुद्धि एक ऐसा सामान्य शब्द है,जिसका प्रयोग हम साधारण बोलचाल की भाषा में लगभग रोज ही करते है। बुद्धि को सामान्यतः सोचने समझने और सीखने एवं निर्णय करने की शक्ति के रूप में देखा समझा जाता है। परन्तु वास्तव में बुद्धि इससे कुछ अधिक होती है। बुद्धि के विषय में सर्वप्रथम भारतीय दार्शनिकों ने चिंतन किया था। प्राचीन भारतीय दार्शनिकों के अनुसार मनुष्य के अन्तःकरण के तीन अंग हैं मन ,बुद्धि, और अहंकार । इनमें मन वाह्य इन्द्रियों और बुद्धि के बीच संयोजक का कार्य करता है। मन के संयोग से बाहय इन्द्रियॉ क्रियाशील होती है और मन के संयोग से ही बुद्धि क्रियाशील होती है। इनके अनुसार इन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान मन के द्वारा बुद्धि तक पहुँचती है। बुद्धि इसमें काट–छॉट करके इसे अहं से जोड़ती है और अन्त में इसे सूक्ष्म शरीर पर पहुॅचा देती है। जहॉ वह संचित हो जाती है। जब कभी प्राणी विशेष को इस ज्ञान की आवश्यकता होती है। तेा उसकी बुद्धि उसे सूक्ष्म शरीर से मन पर पहुॅचा देती है औॅर मन प्राणी को तदनुकूल क्रियाशील कर देती है।

बुद्धि क्या है? तथा इसका स्वरूप कैसा है? इस सन्दर्भ में आधुनिक मनोवैज्ञानिकों में सदा से ही मतभेद रहा है। अलग अगल मनोवैज्ञानिकों न बुद्धि के अपने–अपने ढंग से समझने का प्रयास किया है किन्तु सभी एकमत होकर अभी तक बुद्धि के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट नहीं कर सकें हैं। परन्तु यह सत्य है कि इस विवाद के बाद भी मनोवैज्ञानिक निरन्तर प्रयास करते हैं और बड़ी महत्वपूर्ण और उपयोगी जानकारी बुद्धि के संबंध में आज उपलब्ध है। सबसे पहले ***बोरिंग (1923)*** ने बुद्धि की एक औपचारिक परिभाषा दी और कहा कि **"बुद्धि परीक्षण जो मापता है, वही बुद्धि है।"** किन्तु इस परिभाषा से बुद्धि के स्वरूप के बारे में स्पष्ट ज्ञान प्राप्त नहीं होता है । बुद्धि मापन के बहुत सारे परीक्षण हैं। इनमें से किस परीक्षण द्वारा किये गये मापन को बुद्धि कहा जायेगा। बोरिंग के बाद अनेकों मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि को भिन्न – भिन्न ढंग से परिभाषित करने की कोशिश की है। इन परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर इन परिभाषाओं को इस प्रकार श्रेणीगत किया जा सकता है :–

1. प्रथम श्रेणी की परिभाषाओं में बुद्धि सीखने की क्षमता का नाम है। तथा जो सीखा जा चुका है , उसे नई दशाओं में प्रयोग करने का गुण है । इस प्रकार मनोवैज्ञानिको का एक वर्ग, जिनमें ***बकिंघम, डारविन तथा एबिंगहास*** के नाम प्रमुख है, यह मानते है कि बुद्धि सीखने की क्षमता है।
2. द्वितीय श्रेणी की परिभाषाओं में बुद्धि को वातावरण के साथ समायोजन करने की क्षमता के रूप में परिभाषित किया गया है। जीवन की नई परिस्थितियों में व्यवस्थित होने तथा नई समस्याओं को सुलझाने में बुद्धि की क्षमता को ***कोलविन,स्टर्न*** तथ ***पियाजे*** ने महत्व दिया है।
3. मनोवैज्ञानिकों का एक ऐसा समूह भी है जो अमूर्त चिंतन को ही बुद्धि का प्रधान लक्षण मानता है। इन मनोवैज्ञानिकों ने अपनी परिभाषाओं में बुद्धि को अमूर्त चिंतन करने की क्षमता के रूप में परिभाषित किया है । फ्रांस के मनोवैज्ञानिक ***बिने*** तथा अमेरिका के ***टरमन*** जैसे मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि के द्वारा अमूर्त चिंतन करने की क्षमता, या प्रतीको द्वारा किसी समस्या के समाधान को प्राप्त करने पर बल दिया है। इसी प्रकार ***गिलफोर्ड ,स्टोडर्ड तथा वेक्सलर*** के अतिरिक्त अन्य बहुत से मनोवैज्ञानिक हैं, जिन्होंने बुद्धि के किसी न किसी पक्ष को लेकर परिभाषायें निर्मित की हैं। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि आज जितने मनोवैज्ञानिक हैं, बुद्धि की उतनी ही परिभाषायें हैं। इन कारणों से ही इसे विवादास्प्रद सम्प्रत्यय माना जाता है।

7.3.2 बुद्धि का स्वरूप–

बुद्धि के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए कुछ परिभाषाओं पर ध्यान दिया जाना आवश्यक प्रतीत होता है :–

वेक्सलर (1939) के अनुसार :– ''बुद्धि एक समुच्चय या सार्वजनिक क्षमता है, जिससे सहारे व्यक्ति उददेश्य पूर्ण किया करता है, विवेकशील चिंतन करता है तथा वातावरण के साथ प्रभावकारी ढंग से समायोजन करता है। ''

बकिंघम के अनुसार :–''बुद्धि एक सीखने की योग्यता हैं।''

स्टर्न के अनुसार :–''बुद्धि एक सामान्य योग्यता है,जिसके सहारे व्यक्ति नई परिस्थितियों में अपने विचारों को जानबूझकर समायोजित करता है।''

कोलविन के अनुसार :– ''यदि व्यक्ति ने अपने वातावरण के साथ सामंजस्य करना सीख लिया है या सीखा है, तो उसमें बुद्धि है।''

रॉबिन्स तथा रॉबिन्स (1965) के अनुसार :– ''बुद्धि से तात्पर्य संज्ञानात्मक व्यवहारों के सम्पूर्ण वर्ग से होता है जो व्यक्ति में सूझ द्वारा समस्या समाधान करने की क्षमता, नयी परिस्थितियों के साथ समायोजन करने की क्षमता, अमूर्त रूप से सोचने की क्षमता तथा अनुभवों से लाभ उठाने की क्षमता को दिखलाता है।

निसेर तथा उनके सहयोगियों (1996) के अनुसार :– '' बुद्धि जटिल विचारों को समझने, पर्यावरण के साथ प्रभावी ढंग से समायोजन करने अनुभवों से सीखने, विभिन्न तरह की तर्क में सम्मिलित होने और चिंतन द्वारा बाधाओं को दूर करने की क्षमता होती है।

स्टोटार्ड (1941) के अनुसार :– ''बुद्धि उन क्रियाओं को समझने की क्षमता है, जिसकी विशेषताएँ –

1. कठिनता

2. जटिलता
3. अमूर्तता
4. मितव्ययिता
5. किसी लक्ष्य के प्रति अनुकूलनशीलता
6. सामाजिक मान तथा
7. मौलिकता की उत्पत्ति होती है। और कुछ परिस्थिति में वैसी क्रियाओं को जो शक्ति की एकाग्रता तथा सांवेगिक कारकों के प्रति प्रतिरोध दिखलाता है, करने की प्रेरणा देती है।

थॉर्नडाइक के अनुसार :–
''उत्तम प्रतिक्रिया करने और नवीन परिस्थितियों में सामंजस्य करने की योग्यता बुद्धि है।''
बिने के अनुसार :–''बुद्धि इन चार शब्दों में निहित है– ज्ञान,आविष्कार,निर्देश और आलोचना ।''
फ्रीमैन के अनुसार :–जिस अनुपात में व्यक्ति में अमूर्त चिंतन करने की योग्यता है, उसी अनुपात में व्यक्ति बुद्धिमान है। ''
बर्ट के अनुसार :–''बुद्धि जन्मजात मानसिक क्षमता है।''
बुद्धि की उपरोक्त परिभाषाओं में वस्तुतः पारस्पारिक विरोध नहीं हैं वरन् इनकी एक विशेषता यह है कि ये सभी बुद्धि को किसी न किसी क्षमता के रूप में परिभाषित करती हैं । बुद्धि से संबंधित उपरोक्त सभी उदाहरण महत्वपूर्ण हैं। क्योंकि ये सभी विभिन्न दृष्टिकोणों से बुद्धि के स्वरूप पर प्रकाश डालते हैं और उनकी किसी न किसी रूप में व्याख्या करते है।
इन परिभाषाओं के आधार पर हमें बुद्धि की निम्नलिखित विशेषताओं का पता चलता है–

1. बुद्धि व्यक्ति की जन्मजात शक्ति हैं ।
2. बुद्धि व्यक्ति को वातावरण के साथ प्रभावकारी ढंग सामंजस्य करने की क्षमता प्रदान करती है।
3. बुद्धि व्यक्ति को अमूर्त चिंतन करने की योग्यता प्रदान करती है।
4. बुद्धि व्यक्ति को उददेश्य पूर्ण क्रियायेंक रने के लिए प्रेरित करती है जो व्यक्ति जितनी ही अधिक उददेश्यपूर्ण क्रियायें करता है, उसे उतना ही अधिक बुद्धिमान समझा जाता है।
5. बुद्धि व्यक्ति को पूराने अनुभवों से लाभ उठाने की योग्यता प्रदान करती है।
6. एक से अधिक मानसिक गुणों का समूह बुद्धि है।
7. बुद्धि व्यक्ति को किसी भी समस्या के समाधान में अन्तर्दृष्टि प्रदान करती है।
8. बुद्धि की सहायता से ही व्यक्ति विवेकपूर्ण, तर्कपूर्ण एवं संगत ढंग से विभिन्न विषयों पर चिंतन कर पाता है।

उपरोक्त वर्णन से हमें बुद्धि के स्वरूप का पता चलता है। कुछ ऐसा है जिसे किसी एक क्षमता के आधार पर समझना संभव नहीं होता है। क्योंकि बुद्धि अलग–अलग क्षमताओं तथा मानसिक योग्यताओं का एक समुच्चय होती हैं।

7.3.3 :– *बुद्धि के प्रकार* :–

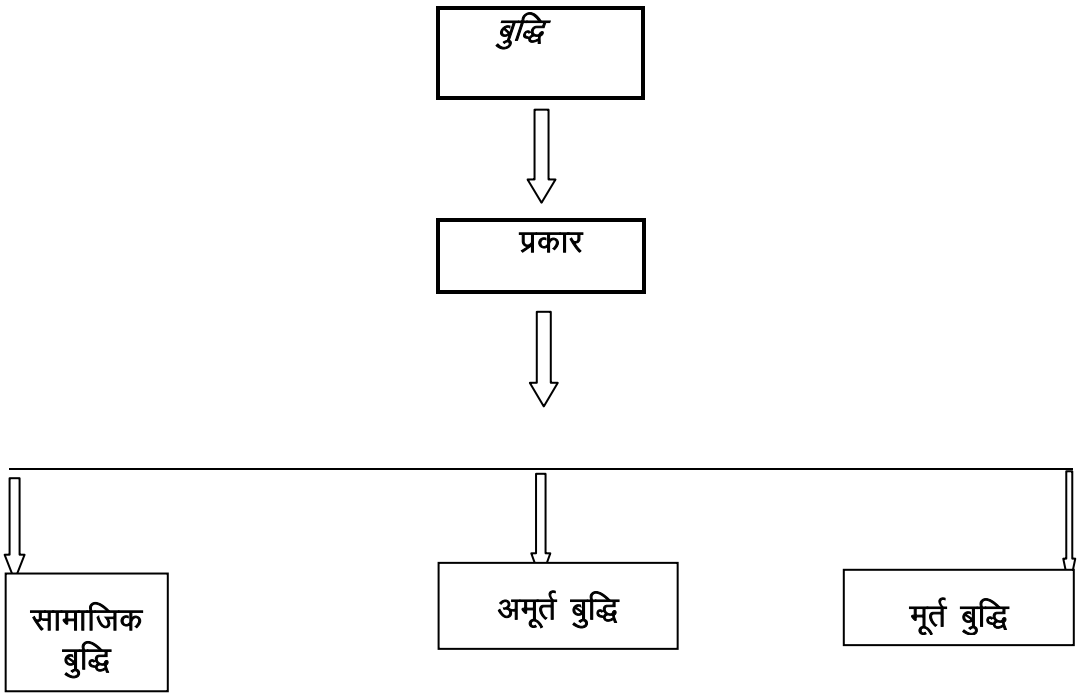

बुद्धि के अर्थ एवं स्वरूप को जानने के उपरान्त अब हम चर्चा करते है बुद्धि के विभिन्न प्रकारों के संबध में। यद्यपि भिन्न – भिन्न मनोविज्ञानिकों ने बुद्धि के अनेक प्रकार बताये हैं, तथापि इनमें से ई. एल. थॉर्नडाइक ने बुद्धि के जो भेद बतलाये हैं, वे अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। जिनका विवेचन निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है–

1. ***सामाजिक बुद्धि* (Social intelligence)**
2. ***अमूर्त बुद्धि* (Alestraet intelligence)**
3. ***मूर्त बुद्धि* (Concrsete intelligence)**

इनका विस्तृत विवरण निम्नानुसार है।

1. **सामाजिक बुद्धि –** जो व्यक्ति सामाजिक दृष्टि से बुद्धिमान होता है, वह अत्यधिक व्यवहार कुशल होता है। दूसरे व्यक्तियों से किस प्रकार बात – चीत करनी है, किस प्रकार का व्यवहार करना है, उनके भावों को समझना, इत्यादि का उसे ठीक ढंग से ज्ञान होता है। ऐसे व्यक्तियों को समाज में अच्छी प्रतिष्ठा होने से इन्हें अत्यधिक मान सम्मान मिलता है। ये दूसरों के साथ संतोषजनक संबध बनाये रखने में काफी कुशल होते हे। इनमें नेतृत्व का गुण पाया जाता है।
   इस प्रकार हम कह सकते है कि सामाजिक बुद्धि से आशय व्यक्ति कि उस मानसिक क्षमता से है, जिसके सहारे वह समाज के सदस्यों को ठीक – ठीक ढंग से समझता है। उनके साथ औचित्यपूर्ण व्यवहार करता है।

2. **अमूर्त बुद्धि –** एसी मानसिक क्षमता जिसके कारण व्यक्ति शाब्दिक एवं गणित के संकतों तथा चिन्हों के संबधो को सुगमता से समझकर उनका ठीक – ठीक स्पष्टीकरण करने में समर्थ होता है। ''अमूर्त बुद्धि'' कहते है। एक चित्रकार, कलाकार, गणितज्ञ आदि में अमूर्त बुद्धि का गुण प्रायः अधिक होता है।
3. **मूर्त बुद्धि –** जिस बुद्धि की सहायता से व्यक्ति ठोस वस्तुओं की महत्ता को समझता है तथा उसका सम्यक् ढंग से विभिन्न परिस्थितियों में परिचालन करना सीखता है। उसे **''मूर्त बुद्धि''** की संज्ञा दी जाती है। प्रायः व्यावसायिक जगत में इस बुद्धि की अपेक्षाकृत अधिक आवश्यकता होती है।

   अतः हम कह सकते है कि मूर्त बुद्धि वाले व्यक्ति की व्यापार कि क्षेत्र में सफल होने की संभावना अधिक होती है।

   प्रिय पाठकों, यहॉ यह ध्यान देना आवश्यक है कि यदि किसी व्यक्ति में एक प्रकार की बृद्धि अधिक है तो इसका मतलब यह नहीं है कि अन्य बुद्धि उसमें कम होगी अर्थात् मान लीजिये की कोई भी सामाजिक दृष्टि से अत्यधिक बुद्धिमान है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि उसमें मूर्त एवं अमूर्त बुद्धि कम होगी।

   उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि बुद्धि के विभिन्न प्रकारों में सामाजिक, अर्मूत एवं मूर्त बुद्धि अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

अभ्यासार्थ प्रश्न – नीचे कुछ कथन दिये गये है, जो कथन सही है उनके आगे सही का तथा जो गलत है उनके आगे क्रास का निशान लगायें–

1. बुद्धि व्यक्ति की जन्मजात मानसिक क्षमता है। ( )
2. बुद्धि व्यक्ति की जन्मजात मानसिक क्षमता नहीं है। ( )
3. बोरिंग के अनुसार बुद्धि परीक्षण जो मापता है, वही बुद्धि है। ( )
4. बुद्धि अनेक मानसिक क्षमताओं का एक समुच्चयय है। ( )
5. थॉर्नडाइक ने बुद्धि के तीन प्रकार बताये हैं। ( )
6. थॉर्नडाइक ने बुद्धि के पाँच प्रकार बताये हैं। ( )
7. समाजिक दृष्टि से बुद्धिमान व्यक्ति एक कुशल व्यापारी होता है। ( )
8. सामाजिक दृष्टि से बुद्धिमान व्यक्ति एक कुशल गणितज्ञ होता है। ( )
9. सामाजिक दृष्टि से बुद्धिमान व्यक्ति एक कुशल नेता बन सकता है। ( )
10. मूर्त बुद्धि वाला व्यक्ति एक कुशल व्यापारी बन सकता है। ( )
11. मूर्त बुद्धि वाला व्यक्ति एक अच्छा चित्रकार बन सकता है। ( )
12. मूर्त बुद्धि वाला व्यक्ति एक अच्छा कलाकार व्यापारी बन सकता है। ( )
13. अमूर्त बुद्धि वाला व्यक्ति एक कुशल चित्रकार बन सकता है। ( )
14. अमूर्त बुद्धि के कारण व्यक्ति गणीतीय संकेतों एवं चिन्हों का समझने में समर्थ होता है। ( )
15. बकिंघम के अनुसार बुद्धि एक सीखने की योग्यता है। ( )

7.4 सारांश

बुद्धि– बुद्धि व्यक्ति की एक जन्मजात शक्ति है, जो उसे वातावरण के साथ प्रभावकारी सामंजस्य स्थापित करने तथा विवेकशील एवं अमूर्त चिन्तन करने में सहायता प्रदान करती है। बुद्धि विभिन्न क्षमताओं का समुच्चय है।

बुद्धि के प्रकार – थॉर्नडाइक ने बुद्धि के तीन प्रकार बताये है –

1. ***सामाजिक बुद्धि (Social intelligence)***
2. ***अमूर्त बुद्धि (Alestraet intelligence)***
3. ***मूर्त बुद्धि (Concrsete intelligence***

सामाजिक बुद्धि – इसके सहारे व्यक्ति दूसरों के साथ संतोषजनक संबध बनाये रखने में कुशल होता है तथा उसमें नेतृत्व की क्षमता होती है।

अमूर्त बुद्धि – इसके कारण व्यक्ति गणितीय संकेतों, चिन्हों तथा शाब्दिक संकेतों एवं उनके पारस्परिक संबधों को आसानी से समझ जाता है। ऐसा व्यक्ति एक अच्छा कलाकार, चित्रकार एक गणितज्ञ बन सकता है।

मूर्त बुद्धि – प्रायः व्यावसायिक जगत में इस बुद्धि की अधिक आवश्यकता होती है। इसकी सहायता से व्यक्ति ठोस वस्तुओं के महत्व को समझकर भिन्न – भिन्न परिस्थितियों में उनका उचित ढंग से संचालन करता है।

7.5 शब्दावली –

जन्मजात – जन्म से ही उत्पन्न होने वाली
नित्यप्रति – प्रतिदिन
अमूर्त – अप्रत्यक्ष
मूर्त – प्रत्यक्ष
सहसंबधित – एक – दूसरे के साथ जोड़ना।
चितंन – समस्या समाधान हेतु तर्कसंगत सोचने की प्रक्रिया।

7.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

1. ***सही***
2. ***गलत***
3. ***सही***
4. ***सही***
5. ***सही***
6. ***गलत***
7. ***गलत***
8. ***गलत***
9. ***सही***
10. ***सही***
11. ***गलत***
12. ***गलत***
13. ***सही***
14. ***सही***
15. ***सही***

7.7 संन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, अरूण कुमार। (2006), संज्ञानात्मक मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।
2. श्रीवास्तव, रामजी। (2003), संज्ञानात्मक मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड जवाहर नगर, दिल्ली।
3. सुलेमान, मुहम्मद एवं तरन्नुम, रिजवान। (2005), मनोविज्ञान में प्रयोग एवं परीक्षण। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।
4. सुलेमान, मुहम्मद। (2001), मनोवैज्ञानिक प्रयोग और परीक्षण। शुक्ला बुक डिपो, पटना।
5. वर्मा, प्रीति एवं श्रीवास्तव, डी.एन. (1996), आधुनिक प्रयोगात्मक मनोविज्ञान। विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।
6. भार्गव, महेश। (2001), आधुनिक मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापन।

7.8 निबंधात्मक प्रश्न–

1. बुद्धि का अर्थ स्पष्ट करते हुये इसकी विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण कीजिए।
2. बुद्धि का स्वरूप बताते हुये इसके विभिन्न प्रकारों पर प्रकाश डालिए।

इकाई – 8 बुद्धि के प्रमुख सिद्धान्त

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 बुद्धि के प्रमुख सिद्धान्त

8.3.1 कारकीय सिद्धान्त

8.3.2 प्रक्रिया उन्मुखी सिद्धान्त

8.4 सारांश

8.5 शब्दावली

8.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.8 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना–

प्रिय पाठकों, इससे पूर्व की इकाई में आपने बुद्धि क्या है, भिन्न – भिन्न विद्वानों ने इस बुद्धि के विषय में क्या – क्या विचार व्यक्त किये है तथा बुद्धि कितने प्रकार की होती है, इत्यादि विषयों का अध्ययन किया है। इताना अध्ययन करने के बाद हमें आशा है कि आप इतना तो जान ही चुके होंगे कि आखिर 'बुद्धि' व्यक्ति की किन – किन मानसिक क्षमताओं का समुच्चय है तथा इसकी प्रमुख विशेषतायें क्या – क्या है।

प्रस्तुत इकाई में हमारे अध्ययन का विषय है – '' बुद्धि के प्रमुख सिद्धान्त''। इस शीर्षक को पढ़ने के बाद आपके मन में अनेक प्रश्न उठ रहे होंगे, जैसे कि –

- बुद्धि के सिद्धान्त से क्या आशय है ?
- बुद्धि के संबध में क्या एक ही सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है अथवा अनेक सिद्धान्तों का।
- इस सिद्धान्तों का क्या आपस में किसी प्रकार का संबंध है अर्थात् एक सिद्धान्त दूसरे सिद्धान्त से कितनी समानता या भिन्नता रखता है ?
- विभिन्न सिद्धान्तों में से किस सिद्धान्त को सर्वाधिक मान्यता मिली इत्यादि।

आपके इन सभी प्रश्नों का समाधान एक सूत्र में निहित है और वह है, प्रस्तुत इकाई को ध्यानपूर्वक रूचिकर ढंग से पढ़ना और समझना तथा अपनी व्यावहारिक

जिन्दगी में इस विषय को अध्ययन की उपयोगिता को समझना। वस्तुतः बुद्धि क्या है तथा किस प्रकार से कार्य करती है, इस संबध में मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये विभिन्न शोध अध्ययनों के निष्कर्षो को ही ''बुद्धि के सिद्धान्त'' कहा जाता है। प्रत्येक सिद्धान्त के प्रतिपादक का बुद्धि के संबध में अपना एक विशिष्ट मत है तथा अपने – अपने ढंग से उन्होंने बुद्धि की क्रियाविधि का समझाने का प्रयास किया है।

प्रिय विद्यार्थियों, यदि आप पूर्व इकाई को स्मरण रखते हुये अर्थात् बुद्धि के अर्थ को अपने मन – मस्तिष्क में रखते हुये इस ईकाई का अध्ययन करेंगे तो आपको विषय ग्रहण करने समझने में आसानी रहेगी।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

- बुद्धि के स्वरूप को ठीक – ठीक ढंग से स्पष्ट कर सकेंगे।
- बुद्धि के प्रमुख सिद्धान्तों का अध्ययन कर सकेंगे।
- बुद्धि के सर्वाधिक मान्य सिद्धान्त का वर्णन कर सकेंगे।
- बुद्धि की क्रियाविधि का विश्लेषण कर सकेंगे।
- बुद्धि के संबध में हुये विभिन्न प्रयोगात्मक अध्ययनों का विवेचन कर सकेंगे।

8.3 – *बुद्धि के प्रमुख सिद्धान्त*

जिज्ञासु पाठकों, बुद्धि के विभिन्न सिद्धान्तों की व्याख्या करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि बुद्धि के सिद्धान्त से हमारा क्या आशय है? बुद्धि का स्वरूप क्या है और बुद्धि कैसे कार्य करती है? इस संबंध में भिन्न–भिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों के आधार पर भिन्न –भिन्न निष्कर्ष निकाले है। इन निष्कर्षों को बुद्धि के सिद्धान्त कहा जाता है। ये सिद्धान्त बुद्धि के स्वरूप एंव उसकी कार्य विधि पर प्रकाश डालते है इन सिद्धान्तों को मुख्यतः दो सिद्वान्तो में विभाजित किया जा सकता है ।

8.3.1 कारकीय सिद्धान्त

8.3.2 प्रकिया उन्मुखी सिद्धान्त

8.3.1 कारकीय सिद्धान्त :– कारकीय सिद्धान्त के अन्तर्गत दो प्रकार के मनोवैज्ञानिकें के समूह हैं। एक प्रकार के मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि सामान्य एवं संगठित क्षमता है। ***स्पीयरमैन*** इस समूह के अग्रणी मनोवैज्ञानिक हैं, जिनका मत है, कि किसी भी संज्ञानात्मक कार्य के निष्पादन का आधार प्राथमिक सामान्य कारक होता हैं इस समूह के मनोवैज्ञानिकों को पिण्डक कहा जाता है।

दूसरे प्रकार के मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि बुद्धि बहुत सारी पृथक मानसिक क्षमताओं, जो करीब –करीब स्वतंत्र रूप से क्रियाशील होते है, का योग होता है। इसमें ***थर्स्टन, गिलफोर्ड, गार्डनर, कैटेल, थॉनडाइक,वर्नर*** मनोवैज्ञानिकों के नाम प्रमुख हैं। इस समूह के मनोवैज्ञानिकों को विभाजक कहा जाता है। पिण्डक तथा विभाजक समूह के मनोवैज्ञानिकों के सिद्धान्तों का वर्णन इस प्रकार है–

1. ***स्पीयरमैन का द्विकारक सिद्धान्त*** :– द्विकारक सिद्धान्त का प्रतिपादन ब्रिटेन के मनोवैज्ञानिक स्पीयरमैन ने 1904 में किया। उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में दो प्रकार की बुद्धि हेाती हैं सामान्य तथा विशिष्ट अर्थात् इसमें दो कारक शामिल होते हैं। सामान्य कारक तथा विशिष्ट कारक।

(1) ***सामान्य कारक*** :– स्पीयरमैन ने सामान्य कारक को जी कारक की संज्ञा दी है। जी कारक से तात्पर्य यह होता है कि प्रत्येक व्यक्ति में कोई भी मानसिक कार्य करने की एक सामान्य क्षमता भिन्न –2 मात्रा में मौजूद होती है। इसकी कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार है।

- यह योग्यता सभी व्यक्तियों में कम या अधिक मात्रा में मौजूद होती है।
- यह मानसिक योग्यता जन्मजात होती है।
- जीवन की किसी भी अवधि में इसमें परिवर्तन संभव नहीं है। अर्थात् चह सदैव एक सी रहती है अर्थात् आदि का प्रभाव नहीं पड़ता है।

(2) ***विशिष्ट कारक*** :– स्पीयरमैन ने विशिष्ट कारक को एस कारक की संज्ञा दी है। एस कारक से तात्पर्य यह होता है कि प्रत्येक मानसिक कार्य को करने मे कुछ विशिष्टता की जरूरत होती है ,क्योंकि प्रत्येक मानसिक कार्य एक दूसरे से कुछ न कुछ भिन्न हेाता है। इसकी कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार है–

- एस कारक की मात्रा भिन्न–2 कार्यो के लिए निश्चित नहीं हेाती है। एक कार्य के लिए एक व्यक्ति में एस कारक की मात्रा अधिक हो सकती है परन्तु उसी व्यक्ति में दूसरे कार्यो के लिए एस कारक की मात्रा कम हो सकती है, जैसे एक व्यक्ति में कविताएँ लिखने का एस कारक अधिक हो सकता है परन्तु उसी व्यक्ति में पेन्टिंग की क्रिया के लिए जिस एस कारक की जरूरत है, उसकी मात्रा कुछ कम हो सकती है।
- एस कारक पर व्यक्ति के प्रशिक्षण, पूर्व अनुभूतियों आदि का काफी अधिक प्रभाव पड़ता है। प्रशिक्षण देकर एस कारक की मात्रा को बढ़ाया जा सकता है।
- जिस व्यक्ति में जो योग्यता अधिक होती है उसी से संबंधित कुशलता में वह विशेष योग्यता प्राप्त करता है।
- ये योग्यताएँ ***भाषा,विज्ञान,दर्शन*** आदि में विशेष सफलता प्रदान करती है।

स्पीयरमैन के द्विकारक सिद्धान्त क उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि किसी भी व्यक्ति द्वारा किये जाने वाले कार्य में जी कारक तथा एस कारक दोनों ही मौजूद होते है। इन दोनों कारकों मे जी कारक क महत्व अधिक है। जी कारक कम होने से व्यक्ति को किसी भी बौद्धिक सिद्धान्त जी कारक सिद्धान्त कहा जाता है।

(2) ***थर्स्टन का समूह कारक सिद्धान्त*** :– स्पीयरमैन के द्विकारक सिद्धान्त पर कई वर्षों तक कार्य करके थर्स्टन (1938) में समूह कारक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया थर्स्टनन ने बुद्धि की व्याख्या कई कारकों के आधार पर की। उन्होंने किसी भी बौद्धिक कार्य को करने में सामान्य कारक तथा विशिष्ट कारक के संम्प्रत्यय को अस्वीकृत करते हुए कहा कि मानसिक प्रक्रियाओं को करने का एक सामान्य प्रधान कारक होता है। जो इन सभी मानसिक प्रक्रियाओं को आपस में बॉधे रखता है। साथ ही इन मानसिक क्रियाओं को अन्य मानसिक प्रक्रियाएँ जिनका एक प्रधान कारक होता है। आपस में सहसंबंधित होती है। तथा

एक साथ मिलकर एक समूह का निर्माण करती है। इस समूह का प्रतिनिधित्व करने वाले कारक को प्रधान क्षमता की संज्ञा दी जाती है।

इसी प्रकार दूसरे तरह की मानसिक प्रक्रियाओं को एक सूत्र में बॉधने वाला एक अन्य प्रधान कारक या क्षमता होती है इसी प्रकार ***तीसरी, चौथी व पॉचवीं*** प्रकार की मानसिक प्रक्रियाओं को बॉधने वाली बुद्धि में मानसिक क्षमताओं के कई समूह होते हैं और प्रत्येक समूह का अपना प्रधान कारक होता है। ऐसे प्रधान कारक एक दूसरे से स्वतंत्र होते है अर्थात् उनमें नाम मात्र का ही संबंध होता है। परन्तु किसी एक प्रधान कारक के अन्तर्गत आने वाले सभी तरह की मानसिक क्षमताओं आपस में काफी सहसंबंधित होती हैं।

इस सिद्धान्त को अल्पतंत्रीय सिद्धान्त कहा जाता है। क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार बुद्धि सात प्रधान क्षमताओं का एक जमावड़ा होती है, इन सभी को एक में बॉधने वाली कोई सार्वभौम क्षमता नहीं होती है।

थर्स्टन ने अपने सिद्धान्त में सात प्रधान क्षमताओं का वर्णन किया जो इस प्रकार है–

(1) ***शाब्दिक अर्थ क्षमता अथवा वी क्षमता*** :– शब्दों तथा वाक्यों के अर्थ समझने की क्षमताओं को शाब्दिक अर्थ क्षमता कहा जाता है। इसे ***वी क्षमता*** भी कहते है।

(2) ***शब्द प्रवाह क्षमता अथवा डब्ल्यू क्षमता*** :– दिये गये शब्दों में से असंबंधित शब्द को सोचना तथा अलग करने की क्षमता को शब्द प्रवाह कहा जाता है। इसे ***डब्ल्यू क्षमता*** भी कहा जाता है।

(3) ***स्थानिक क्षमता अथवा एस क्षमता*** :– किसी दिये हुए स्थान में वस्तुओं का परिचालन करने की क्षमता ,उसकी दूरी का प्रत्यक्षण करने की क्षमता तथा आकारों की पहचान करने की क्षमता को स्थानिक क्षमता कहा जााता हैं। इसे एस क्षमता भी कहते है।

(4) ***आंकिक क्षमता अथवा एन क्षमता*** :– परिशुद्धता तथा तीव्रता के साथ आंकिक परिकलन करने की क्षमता की आंकिक क्षमता कहा गया ,इसे अक्षर एन द्वारा संबोधित किया गया । इसे ***एन क्षमता*** भी कहते है।

(5) ***तर्क क्षमता अथवा आर क्षमता*** :– वाक्यों के समूह अक्षरों के समूह में छिपे नियम की खोज कने की क्षमता को तर्क क्षमता कहा जाता है। इसे ***आर क्षमता*** भी कहते है।

(6) ***स्मृति क्षमता अथवा एम क्षमता*** :– किसी पाठ विषय या घटना को जल्द से जल्द याद कर लेने की क्षमता को स्मृति क्षमता कहते हैं। इसे ***एम क्षमता*** भी कहते है।

(7) ***प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक गति क्षमता अथवा पी क्षमता*** :– किसी घटना या वस्तु विस्तृता का तेजी से प्रत्यक्षण कर लेने की क्षमता को प्रत्यक्षण ज्ञानात्मक ***गति क्षमता*** अथवा ***पी क्षमता*** कहते है। इस प्रकार स्पष्ट है कि थर्स्टन ने सात प्रधान क्षमताओं के आधार पर अपने सिद्धान्त की व्याख्या की है।

(3) ***बहुकारक सिद्धान्त*** :–बहु कारक सिद्धान्त का प्रतिपादन **थॉर्नडाइक (1926)** ने किया। थॉर्नडाइक ने बहुकारक सिद्धान्त प्रतिपादित करते हुए ***स्पीयरमैन*** के सिद्धान्त के विपक्ष में अपना मत प्रकाशित किया। इस सिद्धान्त के अनुसार बुद्धि अनेक तत्वों अर्थात् कारकों का योग है। प्रत्येक कारक एक विशिष्ट मानसिक क्षमता का प्रतिनिधित्व करता है जो आपस में स्वतंत्र होते है। किन्तु इनके योगदान से ही बुद्धि का निर्माण होता है। ***थॉर्नडाइक*** के इस विश्वास के कारण ही उनका बुद्धि संबंधी विचार ***बहुतत्व सिद्धान्त*** के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

थॉर्नडाइक ने ***स्पीयरमैन*** के सिद्धान्त का खण्डन करते हुए कहा कि व्यक्ति की संज्ञानात्मक क्रियाओं में सहसंबंध का कारण जी कारक नहीं होता है। बल्कि इन क्रियाओं के बीच कई

उभयनिष्ठ तत्व पाये जाते है। संज्ञानात्मक क्रियाओं में जितने ही अधिक उभयनिष्ठ तत्व होंगे ,उनके बीच का सहसंबंध उतना ही अधिक होगा। उदाहरणार्थ किसी व्यक्ति का क तथा ख प्रकार के दो विभिन्न कार्य करने मे अलग –अलग 15–15 कारकों की जरूरत है। संभव है कि इन 15 में से 10 कारक ऐसे है जो क तथा ख दोनों प्रकार के कार्यो मे समान रूप से सहायक है तो इस प्रकार ऐसी स्थिति में उन दोनों कार्यों के बीच उच्च धनात्मक सहसंबंध होगा। जैसे –2 समान कार्यों की संख्या घटती जाएगी ,इनके बीच धनात्मक सहसंबंध भी कम होता जाएगा।

थॉर्नडाइक का यह भी विचार था कि कुछ मानसिक कार्य ऐसे होते हैं। जिनके तत्वों या कारकों में उभयनिष्ठता कम होती है। ऐसा इसलिए होता है कि प्रत्येक ऐसे मानसिक कार्य का स्वरूप भिन्न–2 होता है। उदाहरणार्थ किसी व्यक्ति को क तथा ख कार्यों को करने में अलग–2 15–15 कारकों की जरूरत है। संभव यह है कि इन 15 कारकों में से 11 कारक ऐसे है, जो उभयनिष्ठ न हों । ऐसी स्थिति में उन कार्यों के बीच धनात्मक सहसंबंध की मात्रा कम होगी ।

इस प्रकार ***थॉर्नडाइक*** ने तत्वों या कारकों की संख्या के आधार पर दो प्रकार के बौद्धिक कार्यों में समता या विषमता की व्याख्या की। इस प्रकार की व्याख्या देकर ***थॉर्नडाइक*** ने ***स्पीयरमैन*** के एस कारक की भी आलोचना की है।

स्पीयरमैन तथा ***थॉर्नडाइक*** के सिद्धान्तों की तुलना करने पर उनके बीच कोई मौलिक अन्तर नहीं दिखाई पड़ता हैं। ***थॉर्नडाइक*** ने जी कारक को एक तरह से स्वीकार किया है। ***स्पीयरमैन*** ने जिसे जी कारक कहा ***थॉर्नडाइक*** उसे उभयनिष्ठ तत्व कहा है तथा ***स्पीयरमैन*** ने जिसे एस कारक कहा, ***थॉर्नडाइक*** ने उसे उभयनिष्ठ तत्व कहा हैं। अगर इन दोनों सिद्धान्तों में अन्तर है तो सिर्फ इतना है कि ***स्पीयरमैन*** ने जी कारक को छोटी–छोटी इकाइयों में नहीं बॉटा है जबकि ***थॉर्नडाइक*** ने इसे अनेक छोटी–छोटी इकाइयों या उपकारकों का योग माना है।

(4) त्रिविमीय सिद्धान्त :– इस सिद्धान्त का प्रतिपादन ***गिलफोर्ड (1967)***ने किया। इस सिद्धान्त को बुद्धि संरचना सिद्धान्त भी कहा जाता है। ***गिलफोर्ड*** के अनुसार बुद्धि कुछ प्राथमिक बौद्धिक योग्यताओं की संरचना है। प्रत्येक बौद्धिक योग्यता अपने में अनूठी होती है। तथा प्रत्येक कार्य को करने के लिए कुछ बौद्धिक योग्यता की आवश्यकता होती है। ***गिलफोर्ड*** ने बुद्धि के सभी तत्वों को तीन विमाओं में सुसज्जित किया जो इस प्रकार हैं –

1. संक्रिय 2. विषयवस्तु 3. उत्पादन ।

1. ***संक्रिय (ऑपरेशन)*** :– संक्रिय से तात्पर्य व्यक्ति द्वारा किये जांने वाले मानसिक प्रक्रिया के स्वरूप से होता है। गिलफोर्ड ने संक्रिय के आधान पर मानसिक क्षमताओं को छह भागों में विभाजित किया – मूल्यांकन ***अभिसारी ,चिंतन ,अपसारी चिंतन ,स्मृति धारणा, स्मृति अभिलेख तथा संज्ञान।*** ***उदाहरणार्थ*** :– यदि व्यक्ति को पेन का अपरिमित उपयोग बताने के लिए कहा जाय तो इसके अन्तर्गत होने संक्रिया में अपसारी चिंतन का प्रयोग हेगा इसी प्रकार यदि व्यक्ति को सह शिक्षा के बारे में विचार व्यक्त करने को कहा जाय तो इसमें मूल्यांकन का प्रयोग होगा ।
2. ***विषय वस्तु (कॉन्टेन्ट)*** – इस विमा से तात्पर्य उस क्षेत्र से होता है। जिसके एकांशों या सूचनाओं के आधार पर संक्रिया की जाती है। गिलफोर्ड ने ऐसे एकांशों या सूचनाओं को 5 भागों में बॉटा है– ***दृष्टि श्रवण, सांकेतिक, शाब्दिक,***

व्यवहारपरक। उदाहरणार्थ –यदि व्यक्ति को देखी गयी खगोलीय घटना की विस्तृत जानकारी देने की कहा जाय तो वह दृष्टि विषयवस्तु के अन्तर्गत घटना की जानकारी प्रदान करेगा।

3. ***उत्पादन (प्रोडक्ट्स)*** – इस विमा से तात्पर्य किसी विशेष प्रकार की विषयवस्तु द्वारा की गई संक्रिया के परिणाम से होता है। गिलफोर्ड ने परिणामों को छः भागों में विभजित किया – ***इकाई वर्ग ,संबंध, पद्धतियाँ, रूपान्तरण*** तथा आशय ।

उदाहरणार्थ :– प्रयोज्य द्वारा बताया गया ईट का असाधारण प्रयोग संबंध उत्पादन के अन्तर्गत आयेगा। इस प्रकार स्पष्टक है कि ***गिलफोर्ड*** न अपने सिद्धान्त की व्याख्या तीन विमाओं के आधार पर की । संक्रिया के छह भाग , विषयवस्तु के पॉच तथा उत्पादन के छः इस प्रकार बुद्धि के ***कुल 6.5.6 =180*** कारक हुए ।

(5) ***कैटेल का सिद्धान्त :– कैटेल (1963,1967)*** ने अपने बुद्धि के सिद्धान्त में बुद्धि को दो महत्वपूर्ण भागों में विभाजित किया – ***तरल बुद्धि ठोस बुद्धि***। तरल बुद्धि (फलूड इन्टेलीजेन्स्) –तरल बुद्धि का निर्धारण आनुवंशिक तथ्यात्मक ज्ञान से होता है। ठोस बुद्धि में वे क्षमताएँ आती है, जिन्हें व्यक्ति अपनी जिन्दगी की अनुभूतियों में तरल बुद्धि का उपयोग करके अर्जित करता है।

कैटेल के अनुसार तरल बुद्धि विकास किशोरावस्था में अधिकतम हेाता है परन्तु ठोस बुद्धि का विकास वयस्कावस्था में भी होता रहता है।

(6) ***गार्डनर का बहुबुद्धि का सिद्धान्त :– गार्डनर*** के बहुबुद्धि के सिद्धान्त के अनुसार बुद्धि का स्वरूप एकांकी न होकर बहुकारकीय होता है तथा सामान्य बुद्धि में सात प्रकार की क्षमताएँ या बुद्धि सम्मिलित होती है। जो एक दूसरे से स्वतंत्र होती है तथा जिंनका संचालन मस्तिष्क के द्वारा होता है।

1. ***भाषाई बुद्धि*** :– शब्दों तथा वाक्यों के अर्थ समझने की क्षमता तथा शब्दावली में शब्दों के क्रम तथा उनके मध्य संबंध पहचाने की क्षमता ।
2. ***तार्किक गणितीय बुद्धि*** :–तर्क करने की क्षमता गणितीय समस्याओं का समाधान करने की क्षमता ,अंकों को क्रम में व्यवस्थित करने की क्षमता तथा सादृश्यता क्षमता ।
3. ***स्थानिक बुद्धि*** :'–किसी स्थान विशेष को पहचानने की क्षमता दिशा पहचानने की क्षमता ,मानसिक धरातल या किसी स्थान विशेष का निर्माण कराने की क्षमता ,स्थानीक कल्पना करने की क्षमता ।
4. ***शारीरिक गतिक बुद्धि*** :– अपनी शारीरिक गति पर नियंत्रण करने की क्षमता , वस्तुओं को सावधानी पूर्वक कौशल पूर्ण ढंग से उपयोग करने की क्षमता सम्मिलित है। इस प्रकार की बुद्धि का उपयोग एथलीट्स नर्तक, क्रिकेट खिलाड़ी टॉनिस खिलाड़ी न्यूरोसर्जन आदि करते है।
5. ***संगीतिक बुद्धि*** :–संगीत मे तारत्व तथा लय का प्रत्यक्षण करने की क्षमता, संगीत मे निपुणता विकसित करने की क्षमता । संगीतिक बुद्धि संगीत गाने वालों ने अधिक पाई जाती है।
6. ***व्यक्तिगत आत्मन् बुद्धि*** :–अपने संवेगों को जानने की क्षमता उनमें विभेद करके उनका परिचालन करने की क्षमता । इसे ***अन्तराव्यैक्तिक बुद्धि*** भी कहते है।

7. ***व्यक्तिगत अन्य बुद्धि*** –:दूसरे व्यक्तियों की प्रेरणाओं, इच्छाओं एवं आवश्यकताओं को समझने की क्षमता तथा उनकी मनोदशाओं एंव चित्तप्रकृति को पेक्षित करके व्यवहार का पूर्व कथन करने की क्षमता। इसे ***अन्तर्वैक्तिक बुद्धि*** भी कहते है।

गार्डनर के अनुसार सातों तरह की बुद्धि प्रत्येक व्यक्तियों मे विद्यामान होती है। किन्तु आनुवांशिक कारणों या अभ्यास के द्वारा व्यक्ति में किसी बुद्धि का विकास अधिक हेा जाता है। ये सभी सात प्रकार की बुद्धि आपस में अन्तः किया करती है। किन्तु मस्तिष्क में प्रत्येक बुद्धि का अपना विशिष्ट क्षेत्र होता है। जहाँ से यह संचालित होती है। एक तरह की बुद्धि का संचालन करने वाले मस्तिष्क क्षेत्र में आघात लगने पर उस बुद्धि की किया रूक जांती है। किन्तु इससे अन्य प्रकार की बुद्धियों पर प्रभाव नहीं पड़ता है। उपरोक्त बुद्धियों मे जो बुद्धि व्यक्ति में अधिक होती है। उसी कार्य क्षेत्र में व्यक्ति सफलता अर्जित करता है।

8.3.2 ***प्रकिया उन्मुखी सिद्धान्त*** :– इस प्रकार के सिद्धान्त में बुद्धि की व्याख्या भिन्न–2 कारकों के रूप में न करके उन बौद्धिक प्रक्रियाओं के रूप में की गई है, जिसे व्यक्ति किसी समस्या का समाधान करने में या सोच विचार करने मे लगता है।

प्रक्रिया उन्मुखी सिद्धान्तों में बुद्धि के लिए संज्ञान तथा संज्ञानात्मक प्रक्रिया शब्द का प्रयोग अधिक किया गया हैं ।

(1) ***संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त*** :– **पियाजे (1920,30)** ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया तथा ***1970*** मे इस सिद्धान्त का विस्तृत रूप प्रस्तुत किया। संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त में बुद्धि को अनुकूली प्रक्रिया माना गया है जिसमें जैविक परिपक्वता तथा वातावरण के साथ होने वाली अन्तः कियायें सम्मिलित होती है। पियाजे का कथन है कि जैसे–जैसे बच्चों मे संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का विकास हेाता जाता है। वैसे –वैसे ही उनका बौद्धिक विकास भी हेाता ता जाता है। पियाजे ने इन संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का विकास चार अवस्थाओं के अन्तर्गत माना है।

1. ***ज्ञानात्मक क्रियात्मक अवस्था*** :– ***सेन्सरी मोटर स्टेज,*** संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के विकास का यह प्रथम चरण है जो जन्म से लेकर 2 वर्ष तक ही होती है। इसकी दो विशेषताएँ होती है प्रथम विशेषता में बच्चा अपने व्यवहारों तथा उनके परिणामों के बीच संबंध कायम करने का प्रयास करता है। जैसे :–जब बच्चा किसी आवाज सुनता है तो वह उस व्यक्ति तथा आवाज के मध्य संबंध स्थापित करता है इस तरह बच्चे में एक विशेष संज्ञानात्मक प्रक्रिया का विकास हेाता है। बच्चा उस व्यक्ति की आवाज सुनकर उसे पहचानने लगता है। दूसरी विशेषता यह है कि इस अवस्था में बच्चा अपने आपकों वातावरण की वस्तुओं से अलग करने की क्षमता विकसित कर लेता है। वह अपने आपकों वातावरण की वस्तुओं से भिन्न समझने लगता है। कुछ खास–खास कियात्मक व्यवहारों से उसे वस्तुओं के स्थानिक संबंधों को ज्ञान भी हो जाता है। बच्चे उन व्यक्तियों की नकल भी उतारते हैं जो अनुपस्थित होते है। इस अवस्था का सबसे मुख्य गुण यह है कि इस अवस्था में बच्चों में वस्तु पनमानेन्टस का निगम विकसति हो जाता है अर्थात् बच्चे ये समझने लगते हैं कि नजरों के सामने न होने पर भी किसी वस्तुत का अस्तित्व है। वस्तु परमानेन्टस का गुण बच्चेां 20–24 महीने की उम्र मे विकसित होता है।
2. **प्राक् प्रचलनात्मक अवस्था** :– ***(प्री ऑपरेशनल स्टेज)*** यह अवस्था 2 से 7 साल तक की होती है। प्राक् प्रचलानात्मक अवस्था दो भागों में विभाजित है– 2से 4

साल तक की प्राक् सम्प्रयात्मक अवधि तथ 4से7 साल तक की अन्तर्दर्शी अवधि । प्राक् सम्प्रयात्मक अवस्था में बच्चा भिन्न –2 प्रकार के संकेत, प्रतिमाएँ, शब्द तथा उसके अर्थ को सीखता गृहण करता है। इस तरह से बच्चे में भाषा का विकास आरम्भ होने लगता है। इन प्रतिमाओं, संकेतों आदि के सहारे बच्चे को ठीक सोचने में सहायता मिलती है। इस अवधि में संज्ञानात्मक प्रतिक्रियाओं का विकास मुख्यतः अनुकरण तथा खेल द्वारा होता है। अन्तर्दशी अवस्था में बच्चे अन्तर्दर्शी चिंतन की ओर उन्मुख होते है। जिसमें क्रमबद्ध तर्क का अभाव होता है। इस अवधि में बच्चा गणितीय प्रश्न हल करना सीख लेता है, लेकिन इनके पीछे छिपे नियम नहीं समझ पाता है।

3. ***मूर्त्त प्रचलनात्मक अवस्था (कन्क्रीट ऑपरेशनल स्टेज)*** :–यह अवस्था 7 से 11 साल तक की होती है। इस अवस्था में बच्चों में तार्किक चिंतन, उनके सोचने के ढंग में क्रमबद्धता, तथा जटिलता इत्यादि बढने लगते है। इस अवस्था में बच्चे वस्तुओं को विमाओं के आधार पर वर्गीकृत करना सीख जाते है अर्थात् वस्तुओं का आकार, ऊँचाई ,भार, रंग, आदि के आरधार पर उनमें विभेद कर लेते हैं।
4. ***औपचारिक प्रचलनात्मक अवस्था (फॉर्मल ऑपरेशनल स्टेज)*** :– यह अवस्था 12 साल से 15 साल की होती है। इस अवस्था मे बच्चों में अमूर्त तथा अपसारी चिंतन आदि गुण विकसित हेा जाते हैं । वे अब सामान्य नियम समझने लगते हैं तथा 15 वर्ष की उम्र मे वे वयस्क के समान तार्किक नियमों का प्रयोग सीख लेते है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त मे बुद्धि की भिन्न – भिन्न अवस्थाओं में होने वाले संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं में हुए परिवर्तन के रूप में व्याख्या की गई है।

(2) ***त्रितन्त्र सिद्धान्त*** :– त्रितन्त्र सिद्धान्त का प्रतिपादन ***स्टर्नबर्ग (1985)*** ने किया । ***स्टर्नबर्ग*** ने अपने सिद्धान्त में बुद्धि को आलोचनात्मक ढंग से सोचने की क्षमता के रूप में प्रतिपादित किया। ***स्टर्नबर्ग*** ने सूचना संसाधन हेतु व्यक्ति द्वारा क्रियान्वित पॉच चरण बताये ।

1. ***कूटसंकेतन (इनकोडिंग):–*** इस चरण में व्यक्ति अपने मस्तिष्क मे संगत प्राप्य सूचनाओं की पहचान करता है।
2. ***अनुमान (इनफेरिंग)*** :–प्राप्य सूचनाओं के आधार पर कुछ अनुमान लगता है।
3. ***व्यवस्था (मैपिंग)*** :– इस चरण में व्यक्ति वर्तमान परिस्थिति का अतीत की परिस्थिति के साथ संबंध जोड़ता है।
4. ***उपयोग (एप्लिकेशन)***:– इस चरण में व्यक्ति अनुमानित संबंध का वास्तविक उपयोग करता हैं।
5. ***अनुक्रिया (रेस्पॉन्स)***:–इस अंतिम चरण में व्यक्ति समस्या का संभावित सबसे उत्तम समाधान ढुँढता है।

किसी मानसिक कार्य को सम्पादित करने के लिये जिस प्रकार से सूचनाओं को संसाधित करता है, उसे ध्यान में रखते हुए ***स्टर्नबर्ग*** ने तीन उप सिद्धान्तों के आधार पर बुद्धि के जिस सिद्धान्त को प्रतिपादित किया है, उसे ***त्रितन्त्र सिद्धान्त*** कहते है। वे तीन उपसिद्धान्त निम्न प्रकार है–

1. ***सन्दर्भात्मक उपसिद्धान्त*** :– सन्दर्भात्मक उपसिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति वातावरण को अपने अनुकूल निर्मित करता है, जिससे वह अपनी क्षमताओं का उत्तम उपयोग

करते हुए समायोजन कर सके। व्यक्ति की इस क्षमता को ***संदर्भात्मक बुद्धि*** कहते है।

2. ***अनुभवजन्य उपसिद्धान्त*** :– इस उपसिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति बदलते परिवेश तथा परिस्थितियों के साथ स्वयं मे परिवर्तन लाता है, जिससे वह अपनी क्षमताओं का अधिक से अधिक से अधिक उपयोग करते हुए समायोजन कर सके । इस प्रकार की क्षमता ***अनुभवजन्य बुद्धि*** कहलाती है।
3. ***घटक उपसिद्धान्त*** :– इस उपसिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति की बुद्धि में अमूर्त चिंतन करने तथा सूचनाओं को संसाधित करने की क्षमता सम्मिलित होती है। इस प्रकार की क्षमता वाले व्यक्तियों की बुद्धि ***घटकीय बुद्धि*** कहलाती है। ऐसी बुद्धि वाले व्यक्ति आलोचनात्मक तथा विश्लेषणात्मक ढंग से सोचने मे निपुण हेाते हैं । इस प्रकार की बुद्धि वाले व्यक्तियों में शैक्षणिक उपलब्धि सर्वाधिक होती है। इस प्रकार उपरोक्त उपसिद्धान्तों से ***स्टर्नबर्ग*** के त्रितन्त्र सिद्धान्त की व्याख्या होती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न –

नीचे कुछ कथन दिये गये हैं। इनमें से जो कथन सही हो उसके आगे सही तथा जो गलत हो, उनके आगे कांस का निशान लगायें–

1. बुद्धि के सिद्धान्तों को कारकीय एवं प्रक्रिया उन्मुखी, इन दो श्रेणियों में विभाजित किया गया है। ( )
2. द्विकारक सिद्धान्त का प्रतिपादन जीन पियाजे द्वारा किया गया । ( )
3. समूह कारक सिद्धान्त के प्रणेता थार्नडाइक है। ( )
4. बहुकारक सिद्धान्त की गणना प्रक्रिया उन्मुखी सिद्धान्तों में की जाती है।( )
5. त्रिविमीय सिद्धान्त का प्रतिपादन गिल फोर्ड द्वारा किया गया। ( )
6. कैटेल ने बुद्धि के तरल एवं ठोस दो भागों में वर्गीकृत किया। ( )
7. केटेल का सिद्धान्त बहुबुद्धि का सिद्धान्त है। ( )
8. संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त प्रक्रिया उन्मुखी सिद्धान्त है।
9. त्रितंत्र सिद्धान्त के प्रणेता स्टर्नबर्न हैं। ( )
10. पियाजे ने संज्ञानात्मक विकास क छः अवस्थायें बतायी है। ( )

8.4 सारांश –

बुद्धि के सिद्धान्त – बुद्धि के विभिन्न सिद्धान्तों में बुद्धि के स्वरूप एवं कार्यविधि पर प्रकाश डाला गया है।

बुद्धि के सिद्धान्तों का वर्गीकरण – दो श्रेणिया –

- ***प्रथम श्रेणी – कारकीय सिद्धान्त***
- ***द्वितीय श्रेणी – प्रक्रिया उन्मुखी सिद्धान्त***

कारकीय सिद्धान्त – इसमें निम्न छः सिद्धान्त है –

1. स्पीयरमैन का द्विकारक सिद्धान्त
2. थर्स्टन का समह कारक सिद्धान्त
3. बहुकारक सिद्धान्त
4. त्रिविमीय सिद्धान्त
5. कैटेल का सिद्धान्त
6. गार्डनर का बहुबुद्धि सिद्धान्त

प्रक्रिया उन्मुखी सिद्धान्त –

इसमें निम्न सिद्धान्त शामिल हैं –

1. संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त (पियाजे का सिद्धान्त)
2. स्टर्नवर्ग का त्रितंत्र सिद्धान्त
3. घटक उपसिद्धान्त

8.5 शब्दावली –

कारकीय – कारक से संबधित

बहुकारक – जिसमें एक से अधिक कारक हों।

संज्ञानात्मक – बुद्धि, निर्णय, तर्क–विर्तक, चिन्तन इत्यादि मानसिक प्रक्रियाओं से संबंध।

द्विकारक – दो कारक

सार्वभौम – जो सभी जगह लागू हो।

एकांकी – अकेला।

सादृष्यता – समानता

अनुभव जन्य – अनुभव से उत्पन्न

8.6अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

1.सही 2.गलत 3.गलत 4.गलत 5.सही 6.सही 7.गलत 8.सही 9.सही 10.गलत 11.गलत

8.7 संन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.सिंह, अरूण कुमार। (2006), संज्ञानात्मक मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड,जवाहर नगर, दिल्ली।

2. श्रीवास्तव, रामजी। (2003), संज्ञानात्मक मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड जवाहर नगर, दिल्ली।

3.सुलेमान, मुहम्मद एवं तरन्नुम, रिजवान। (2005), मनोविज्ञान में प्रयोग एवं परीक्षण। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

4.सुलेमान, मुहम्मद। (2001), मनोवैज्ञानिक प्रयोग और परीक्षण। शुक्ला बुक डिपो, पटना।

5.वर्मा, प्रीति एवं श्रीवास्तव, डी.एन. (1996), आधुनिक प्रयोगात्मक मनोविज्ञान। विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।

8.8 निबंधात्मक प्रश्न –

प्रश्न 1 – स्पीयरमैन द्वारा प्रतिपादित बुद्धि के द्विकारक सिद्धान्त की व्याख्या करें।

प्रश्न 2– थर्स्टन द्वारा प्रस्तावित बुद्धि के समूह कारक सिद्धान्त की व्याख्या करें।

प्रश्न 3– थार्नडाइक द्वारा प्रतिपादित बहुकारक सिद्धान्त स्पीयरमैन द्वारा प्रतिपादित द्विकारक सिद्धान्त से किस प्रकार भिन्न है ?

प्रश्न 4 – गार्डनर के बहुबुद्धि के सिद्धान्त की व्याख्या प्रस्तुत करें।

इकाई–9 बुद्धि का मापन– बुद्धि के विभिन्न परीक्षण

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 बुद्धि मापन से आशय

9.4 बुद्धि मापन के विभिन्न परीक्षण

9.4.1 क्रियान्वयन के तरीकों के आधार पर

9.4.2 एकांषों के स्वरूप के आधार पर

9.5 सारांश

9.6 शब्दावली

9.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.9 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों, इससे पूर्व के ईकाईयों में आपने बुद्धि क्या है? इसकी प्रमुख विषेतायें क्या–क्या हैं? विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि को किस–किस ढंग से परिभाषित किया है? बुद्धि के अर्न्गत किसी प्राणी की कौन–कौन सी मानसिक क्षमताओं की गणना की जाती है? इसके स्वरूप के बारे में विद्वानों ने किन–किन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है? इत्यादि विषयों का अध्ययन किया है। प्रस्तुत ईकाई में हमारे अध्ययन का विषय है– बुद्धि के मापन से क्या आषय है तथा बुद्धि मापन हेतु किन–किन परीक्षणों का उपयोग किया जा सकता है। बुद्धि परीक्षणों के माध्यम से किसी व्यक्ति की विभिन्न मानसिक क्षमताओं का आकलन किया जाता है। प्रिय पाठको, अब आपके मन में यह जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी कि आखिर बुद्धि परीक्षण कौन–कौन से हैं तथा किस प्रकार से उनका उपयोग किया जाता है। तो आइये चर्चा करते है कि बुद्धि मापन क्या है तथा बुद्धि का मापन किस प्रकार से किया जाता है?

9.2 उद्देश्य–

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप–

– बुद्धि मापन से क्या आशय है– इसे स्पष्ट कर सकेंगे।

– बुद्धि परीक्षण कितने प्रकार के होते है इनका अध्ययन कर सकेंगे।

– बुद्धि परीक्षणों द्वारा प्राणी की किन–किन मानसिक क्षमताओं का मापन तथा आकलन किया जाता, इसका विष्लेषण कर सकेंगे।

– बुद्धि परीक्षणों का व्यवहार में किस प्रकार से प्रयोग किया जाता है, इसका ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

9.3 बुद्धि मापन से आशय

जिज्ञासु पाठको, सर्वप्रथम तो आपके मन में यही प्रश्न उत्पन्न हो रहा होगा कि बुद्धि को मापने का अभ्रिपाय क्या है? तो आपकी इस जिज्ञासा का समाधान यह है कि बुद्धि मापन का आशय है– किसी व्यक्ति या प्राणी के बौद्धिक स्तर तथा मानसिक क्षमताओं का किसी बुद्धि परीक्षण की सहायता से आकलन करना। बुद्धि मापन से यह पता चलता है कि उस व्यक्ति विशेष की बुद्धि का स्तर क्या है? सामान्य है, सामान्य से कुछ अधिक है अथवा बहुत उच्च स्तर की है। उसकी मानसिक योग्यतायें क्या–क्या है? और किसी सीमा तक हैं इत्यादि।

बुद्धि मापन के लिये बुद्धि के विभिन्न परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है।

तो विद्यार्थियों, अब आप समझ गये होंगे की बुद्धि मापन का क्या अर्थ होता है।

9.4 बुद्धि मापन के विभिन्न परीक्षण–

जिज्ञासु विद्यार्थियों, बुद्धि के मापन के लिये मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रकार के बुद्धि परीक्षणों का निर्माण एवं प्रयोग किया है। प्रकार के बुद्धि परीक्षणों के निर्माण एवं उनसे संबंधित साहित्य का विवेचन किया गया है।

77 में से 61 बुद्धि परीक्षण ऐसे है, जो सामान्य बुद्धिस्तर का मापन करते है तथा 16 परीक्षण विशिष्ट मानसिक क्षमता का मापन करते है।

इन विभिन्न परीक्षणों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया गया है–

(i) **क्रियान्वयन के तरीकों के आधार पर**

(ii) **एकांशों के स्वरूप के आधार पर**

a शाब्दिक बुद्धि परीक्षण (Verbal inteligence test)

b अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण (Non-verbal inteleigence test)

c क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण (performance inteleigence test)

d अभाषाई बुद्धि परीक्षण (Non language inteleigence test)

प्रिय पाठको, इन विभिन्न बुद्धि परीक्षणों का विस्तृत विवेचन निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया गया है–

9.4.1 क्रियान्वयन के तरीकों के आधार पर

प्रिय पाठको, क्रियान्वयन के तरीकों के आधार पर बुद्धि परीक्षण के विभिन्न प्रकारों से आषय इस बात से है किसी बुद्धि परीक्षण को एक समय में एक व्यक्ति पर लागू किया जा

सकता है अथवा एक से अधिक व्यक्तियों पर। इस आधार पर विद्वानों के बुद्धि परीक्षणों के निम्न दो भेद किये है

(a) व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण

(b) सामूहिक बुद्धि परीक्षण

(a) व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण– पाठकों, अब आप सोच रहे होंगे कि व्यक्तिगत बुद्धि से क्या आशय है? व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण वे होते है, जिनकों एक समय में एक ही व्यक्ति पर क्रियान्वित किया जा सकता है। एक से अधिक व्यक्तियों पर नहीं।

पाठको, सर्वप्रथम वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण का निर्माण बिने तथा साइमन द्वारा सन् 1905 में किया गया था। इस परीक्षण को बिने–साइमन परीक्षण के नाम से भी जाना जाता है।

कुछ अन्य वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण निम्न हैं–

– कोह ब्लॉक डिजाइन परीक्षण

– पास अलोडा परीक्षण

– घनरचना परीक्षण इत्यादि।

(b) **सामूहिक बुद्धि परीक्षण**– प्रिय विद्यार्थियों, सामूहिक बुद्धि परीक्षण, वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण के ठीक विपरीत है अर्थात् इन बुद्धि परीक्षणों का एक ही समय में एक से अधिक व्यक्तियों पर लागू किया जा सकता है। सामूहिक बुद्धि परीक्षण, जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, इनका प्रयोग किसी एक व्यक्ति पर नहीं, बल्कि व्यक्तियों के समूह पर किया जाता है।पाठकों क्या आप जानते हैं कि सबसे पहले सामूहिक बुद्धि परीक्षण का निर्माण किस समय और किस प्रकार से हुआ।

जब प्रथम विश्वयुद्ध हुआ तो उस समय अमेरिका में ऐसी आवश्यकता अनुभव की गई कि किसी ऐसे बुद्धि परीक्षण का निर्माण किया जाना चाहिये, जिसे व्यक्तियों के समूह पर एक साथ लागू किया जा सके। इस आवष्यक्ता के परिणामस्वरूप दो लोकप्रिय बुद्धि परीक्षणों का निर्माण हुआ,जो निम्न है–

(**अ**) आर्मी अल्फा परीक्षण (शाब्दिक बुद्धिपरीक्षण)

(**ब**) आर्मी बीटा परीक्षण (क्रियात्मक या अभाषाई बुद्धि परीक्षण)

इन दोनो परीक्षणों के द्वारा अमेरिकी फौजियों की बुद्धि का मापन किया गया। आर्मी अल्फा परीक्षण द्वारा शिक्षित अर्थात् पढ़े–लिखे फौजियों की बुद्धि का मापन किया गया तथा आर्मी बीटा परीक्षण द्वारा अशिक्षित अर्थात् नाममात्र के पढ़े–लिखे फौजियों की बुद्धि का मापन किया गया।पाठकों, केवल विदेशों में ही नहीं वरन् भारत में भी अनेक सामूहिक बुद्धि परीक्षणों का विकास हुआ। जैसे कि–

(**क**) प्रयाग मेहताः सामूहिक बुद्धि परीक्षण (1962)

(**ख**) आर.के. टण्डनः सामूहिक मानसिक योग्यता परीक्षण (1961)

(**ग**) एस.सी.जोशीः मानसिक योग्यता परीक्षण (1960)

(**घ**) रामनरेश सिंहः बनार्त (VANART) : सामान्य बुद्धि परीक्षण (1970)

9.4.2 एकांशों के समय के स्वरूप के आधार पर–

प्रिय, विद्यार्थियो, क्रियान्वयन के बाद बुद्धि परीक्षणों के वर्गीकरण का दूसरा प्रमुख आधार एकांशों का स्वरूप है। परीक्षण में एकांशों का स्वरूप जिस प्रकार का होता है उसके आधार पर भी मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धिपरीक्षणों को अनेक वर्गों में वर्गीकृत किया है। अब आप सोच रहे होंगे कि वे एकांश क्या है?

एकांश से तात्पर्य किसी भी परीक्षण में दिये गये प्रश्नों से है। जैसे कि किसी बुद्धि परीक्षण में बुद्धि को मापन के लिये जो विभिन्न प्रश्न पूछे गये हैं वे उस परीक्षण के एकांश (itemes) है। प्रश्न पूछने के तरीके भिन्न–भिन्न हो सकते हैं अर्थात्– एकांशों का स्वरूप अलग–अलग प्रकार का होता है अतः इसको भी भी आधार बनाकर बुद्धि परीक्षणों के अनेक भेद बताये गये है।

एकांशों के आधार पर बुद्धि परीक्षणों के निम्न भेद किये गये है–

(a) शाब्दिक बुद्धि परीक्षण

(b) अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण

(c) क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण

(d) अभाषाई बुद्धि परीक्षण

(**a**) शाब्दिक बुद्धि परीक्षण– शाब्दिक बुद्धि परीक्षण बुद्धि परीक्षण का एक महत्त्वपूर्ण पकार है। इसके अन्तर्गत निर्देश देने तथा परीक्षण के एकांशों या प्रश्नों में लिखित भाषा या लिखित शब्दों का प्रयोग किया जाता है। शाब्दिक बुद्धि परीक्षण का शिक्षित लोगों पर ही प्रयुक्त किया जा सकता है अर्थात इसके लिये आवश्यक है कि जिन व्यक्तियों पर इसे प्रयुक्त किया जा रहा है, वे पढ़े–लिखे हों जिससे कि वे परीक्षण के निर्देशों को समझ सकें और फिर उनका उत्तर दे सके।

प्रिय विद्यार्थियों, मनोवैज्ञानिकों ने शाब्दिक बुद्धि परीक्षण के भी निम्न दो भेद किये है–

(**क**) शाब्दिक वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण (Verbal individual inteligence test)

(**ख**) शाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षण (Verbal group inteligence test)

इन दोनों परीक्षणों के स्वरूप का विवेचन निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

(**क**) **शाब्दिक वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण–** इस प्रकार के परीक्षणों से तात्पर्य उन बुद्धि परीक्षणों से है जिनकों एक समय में एक ही व्यक्ति पर लागू किया जा सकता है, एक से अधिक व्यक्तियों पर नहीं। प्रिय पाठकों, क्या आप जानते हैं कि सबसे पहला शाब्दिके वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण किस के द्वारा बनाया गया था? सर्वप्रथम शाब्दिक वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण का निर्माण फ्रांस के मनोवैज्ञानिक बिने()तथा साइमन() द्वारा सन् 1905 में किया था। इस परीक्षण में प्रयुक्त एकांषों की कुल संख्या 30 थी, जिसके द्वारा स्कुल जाने वाले बच्चों की बुद्धि का मापन किया गया। इसके बाद सन् 1911 में गोगर्ड ने इस परीक्षण का

अंग्रजी अनुवाद किया। मंदबुद्धि बच्चों की बुद्धि मापन में इस परीक्षण का अत्यधिक प्रयोग किया गया। वैयक्ति रूप से षिक्षित लोगों की बुद्धि के मापन की दृष्टि सेये परीक्षण बहुत उपयुक्त हैं तथापि इन परीक्षणों की कुछ कमियाँ है जो निम्नानुसार है–

(अ) शिक्षित लोगों पर ही प्रयोग– प्रिय पाठको, इन परीक्षणों की उपयोगिता इस वजह से सीमित हो जाती है कि इनका उपयोग केवल उन्हीं लोगों की बुद्धि को मापने के लिये किया जा सकता है, जिनमें भाषा का विकास हुआ हो यो जो पढ़े–लिखे हो। जो व्यक्ति अषिक्षित है, जिनकों भाषा का ज्ञान नहीं है या अत्यधिक छोटे बच्चे, उन पर इस परीक्षणों का क्रियान्वयन नहीं किया जा सकता है।

(ब) एक समय में एक ही व्यक्ति पर क्रियान्वयन– इस प्रकार के परीक्षणों की एक प्रमुख कमी यह भी मानी जाती है कि एक समय में केवल एक ही व्यक्ति की बुद्धि को मापा जा सकता है, जब बुद्धि परीक्षक के पास इतना समय न हो कि वह प्रत्येक व्यक्ति का अलग–अलग बुद्धि मापन कर सके तो ऐसी परिस्थिति में इन परीक्षणों की उपयोगिता सीमित हो जाती है।

(ख) शाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षण– इस प्रकार के परीक्षणों द्वारा एक समय में एक से अधिक व्यक्तियों की बुद्धि का मापन किया जाता है। अतः कम समय लगना या समय की बचत इन परीक्षणों की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता या गुण है। अमेरिका में प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान सैनिकों की बुद्धि को मापने की आवश्यकता अनुभव की गई और इसके परिणामस्वरूप अनेक शाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षणों का निर्माण हुआ। जैसे कि–

–आर्मी अल्फा परीक्षण

– आर्मी बीटा परीक्षण

– आर्मी जनरल क्लासिफिकेशन टैस्ट

प्रिय विद्यार्थियों, केवल अमेरिका में ही नहीं वरन् भारत में भी अनेक प्रकार के शाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षणों का निर्माण हुआ। जैसे कि –

–प्रयाग मेहा का सामूहिक बुद्धि परीक्षण
– आर.के.टण्डन का सामूहिक योग्यता परीक्षण
– आर. के. ओझा तथा राय चौधरी का वाचिक बुद्धि परीक्षण
– एस.एस. जलोटा का मानसिक योग्यता का सामूहिक परीक्षण
– एस.एम. मुहसिन का सामान्य बुद्धि परीक्षण इत्यादि।

वैयक्तिक तथा सामूहिक दोनों प्रकार के शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों में उत्तर देने के लिये पेंसिल तथा पेपर का प्रयोग किया जाता है। इसलिये इन्हें पेपर–पेंसिल परीक्षण भी कहा जाता है।

प्रिय पाठकों वैयक्तिक परीक्षण की तरह ही सामूहिक शाब्दिक बुद्धि परीक्षण के भी कुछ अवगुण है, जिनकों हम निम्न प्रकार से समझ सकते हैं–

(**अ**) नकल की आशंका– पाठकों जैसा कि आप इतना समझ ही गये है। कि सामूहिक बुद्धि परीक्षणों में व्यक्तियों के समूह हो एक साथ एक जगह बैठाकर उनकी बुद्धि का मापन किया जाता है। इसलिये इन परीक्षणों में इस बात की बहुत अधिक आषंका बनी रहती है कि प्रयोज्य एकांशों का उत्तर देने में एक–दूसरे की नकल करें। ऐसा होने पर परीक्षण के परिणाम शुद्ध रूप से प्राप्त नहीं होते हैं और प्रयोज्यों की बुद्धि का मापन ठीक–ठीक ढंग से नहीं हो पाता है।

(**ब**) प्रत्येक प्रयोज्य पर वैयक्तिक रूप से ध्यान देना संभव नहीं– इस प्रकार के बुद्धि परीक्षणों का प्रयोग समूह में होने के कारण परीक्षण प्रत्येक प्रयोज्य पर ठीक–ठीक ढंग से ध्यान नहीं दे पाता है।

(b) अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण– प्रिय पाठको, इस प्रकार के बुद्धि परीक्षणों में वे बुद्धि परीक्षण आते है, जिनमें निर्देश देने में तो शब्द, वाक्य तथा संख्या का प्रयोग किया जाता है, किन्तु उसके एकांशों में भाषा का प्रयोग नहीं किया जाता है। इन परीक्षणों के प्रत्येक एकांश में कुछ वस्तुओं का चिन्ह बना होता है।

इसलिये पाठकों, इन परीक्षणों का प्रयोग छोटे बच्चों, कम पढ़े–लिखे लोगों एवं मंदबुद्धि व्यक्तियों पर भी आसानी से किया जा सकता है।

(c) क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण– प्रिय विद्यार्थियों, क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण, बुद्धि परीक्षणों का एक महत्वपूर्ण प्रकार है। इन परीक्षणों की प्रमुख विषेषता यह है कि इनमें निर्देष देने में भाषा का प्रयोग हो भी सकता है और नहीं भी अर्थात्– भाषा के अतिरिक्त निर्देष देने के लिये हाव–भाव या अभिनय का भी प्रयोग किया जा सकता है, लेकिन एकांषों में भाषा का प्रयोग बिल्कुल भी नहीं किया जाता है। इन परीक्षणों में परीक्षार्थी के सामने कुछ वस्तुओं को चित्र रूप में नहीं वरन् वास्तविक रूप में उपस्थित किया जाता है। प्रयोज्यों द्वारा उन वस्तुओं का परिचालन या जोड़–तोड़ किया जाता है। इन वस्तुओं के जोड–तोड़ में परीक्षार्थी या प्रयोज्य को कितना समय लगता, उसके द्वाराकितनी गलतियाँ की गई, उस कार्य को कितना सही ढंग से किया गया इत्यादि के आधार परउसकी बुद्धि का परीक्षण होता है।

प्रमुख विशेषताये– प्रिय पाठको, मनोवैज्ञानिकों के क्रियात्मक बुद्धि परीक्षणों की निम्न तीन प्रमुख विषेषताये है–

(1) निर्देश देने में भाषा अथवा हाव–भाव का प्रयोग– इस प्रकार के परीक्षणों में निर्देष देने के लिये कभी तो भाषा वाक्य या संख्या का प्रयोग किया जाता है और कभी हाव–भाव चित्रभिनय का।

(2) एकांशों में भाषा का प्रयोग नहीं– क्रियात्मक बुद्धि परीक्षणों के एकांषों में भाषा का प्रयोग बिल्कुल भी नहीं किया जाता है।

(3) वस्तुओं को वास्तविक रूप में उपस्थित करना– इन परीक्षणों में वस्तुओं को चित्र के रूप में नहीं वरन वास्तविक रूप में प्रयोज्यों के सामने उपस्थित किया जाता है।

(4) एक समय में एक ही व्यक्ति पर क्रियान्वयन– इसे एक समय में एक ही व्यक्ति पर लागू किया जाता है।

क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण एवं अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण में समानता– क्रियात्मक तथा अषाब्दिक दोनो ही प्रकार के बुद्धि परीक्षणों के एकांषों में भाषा का प्रयोग नहीं किया जाता है।अतः पाठको, इस दृष्टि से दोनों परीक्षणों में समानता है।

क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण एवं अषाब्दिक बुद्धि परीक्षण में असमानता– प्रिय पाठको, अब आप सोच रहे होगें कि क्रियात्मक तथा अषाब्दिक बुद्धि परीक्षण किस आधार पर एक–दूसरे से भिन्न है। तो आपकी जिज्ञासा का समाधान यह है कि क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण के एकांषों में तो प्रयोज्यों के सामने वास्तविक रूप से चीजें उपस्थित होती है, जबकि अषाब्दिक परीक्षण में उन वस्तुओं के केवल चित्र होते हैं, वास्तविक रूप में वस्तुये विद्यमान नहीं होती है। अतः अब आप समझ गये होंगे कि इन दोनों परीक्षणों में किस आधार पर भिन्नता है।
पाठको, क्या आप जानते है कि सबसे पहला बुद्धि परीक्षण कब एवं किसके द्वारा निर्मित किया गया था?

सन् 1866 में सेगुइन ने पहला क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण बनाया जिसे मंदबुद्धि बच्चों की बुद्धि का मापन करने में प्रयुक्त किया गया। इस परीक्षण का नाम सेगुइन फार्म बोर्ड रखा गया। इसके बाद मनोवैज्ञानिकों द्वारा अनेक प्रकार के क्रियात्मक बुद्धि परीक्षणों का विकास किया गया, जिनमें से कुछ प्रमुख परीक्षण निम्न हैं–

- कोह ब्लॉक डिजाइन परीक्षण (Kohs block design test)
- पास–एलॉग परीक्षण (pass-along test)
- घनरचना परीक्षण (cube consruction test)

क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण के प्रमुख गुण– इन परीक्षणों के प्रमुख गुण निम्न है–

(i) वैयक्तिक रूप से ध्यान देना संभव– प्रिय पाठको, जैसा कि आप जान ही चुके हैं क्रियात्मक बुद्धि परीक्षणों को एक समय में एक ही व्यक्ति पर लागू किया जा सकता है। अतः इनके क्रियान्वयन के दौरान परीक्षक प्रतयेक प्रयोज्य पर अच्छी तरह से ध्यान दे पाता है। इसके परिणामस्वरूप बुद्धि का मापन ठीक–ठीक ढंग से हो पाता है।

(ii) किसी भी देष तथा संस्कृति के व्यक्तियों की बुद्धि का मापन– पाठको, जैसा कि आप लोग जानते है कि क्रियात्मक बुद्धि परीक्षणों के एकांषो या प्रष्नों में भाषा का प्रयोग बिलकुल भी नहीं होता है। इसलिये इन्हें किसी भी देष या संस्कृति के लोगों की बुद्धि का मापन करने के लिये प्रयुक्त किया जा सकता है।

(iii) अनपढ़, गूँगे, मंदबुद्धि तथा छोटे बच्चों की बुद्धि का मापन संभव– एकांषों में भाषा का प्रयोग न होने के कारण क्रियात्मक बुद्धि परीक्षणों का प्रयोग उन व्यक्तियों पर भी किया जा सकता है, जिनको भाषा का ज्ञान नहीं है, जो बच्चे बहुत छोटे है, जिनकी बुद्धि मंद है और जो बोल नहीं सकते।

इस प्रकार स्पष्ट है कि क्रियात्मक बुद्धि परीक्षणों द्वारा बुद्धि का मापन अधिक अच्छे ढंग से किया जा सकता है।

क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण के प्रमुख अवगुण– निम्न है– क्रियात्मक बुद्धि परीक्षणो की प्रमुख कमियाँ–

(i) कठिनता– क्रियात्मक बुद्धि परीक्षणों का निर्माण करना एवं क्रियान्वयन करना शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों की तुलना में प्रायः अधिक कठिन है।

(ii) समय अधिक लगना– पाठको, जैसा कि आप जान चुके हैं क्रियात्मक बुद्धि परीक्षणों का स्वरूप वैयक्ति है, अर्थात्– एक समय में केवल एक व्यक्ति की बुद्धि का ही मापन हो पाता है। इस लिये जब बहुत सारे व्यक्तियों की बुद्धि का मापन करना होता है तो इन परीक्षणों

को क्रियान्वित करने में समय बहुत लगता है।अतः स्पष्ट है कि अन्य परीक्षणों की भाँति ही क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण के भी अपने कुछ गुण तथा कमियाँ है।

(d) अभाषाई बुद्धि परीक्षण– प्रिय पाठको, जैसा कि इसके नाम से ही आप समझ गये होंगे कि अभाषाई बुद्धि परीक्षण वह है, जिसमें न तो निर्देष देने और और न ही जिसके एकांषों में भाषा यर्थात–शब्द, वाक्य, संख्या का प्रयोग किया जाता है। जो वाक्य, भाषा के बन्धन से सर्वथा मुक्त होता है, वह अभाशाई बुद्धि परीक्षण है। इन परीक्षणों की प्रमुख विषेषताओं का विवेचन निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है–

(i) निर्देश तथा एकांशों में भाषा का प्रयोग नहीं– इस प्रकार के परीक्षणों में निर्देष देने का तरीका चित्रभिनय, हाव–भाव या निर्देषन होता है, भाषा नहीं। इसी प्रकार एकांशों में भी भाषा का प्रयोग नहीं होता है।

(ii) वस्तुओं का वास्तविक परिचालन नहीं– इन परीक्षणों में वस्तुयें वास्तविक रूप से व्यक्ति के सामने उपस्थित नहीं होती है जैसे की क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण में होती है। इसलिये प्रयोज्यों को वस्तुओं का वास्तविक जोड़–तोड़ नहीं करना पड़ता है।

(iii) कम पढ़े–लिखे तथा मंदबुद्धि, गूंगे एवं छोटे बच्चों की बुद्धि का मापन संभव– भाषा के अभाव के कारण यह परीक्षण अषिक्षित, मंदबुद्धि, गूंगे एवं छोटे बच्चों के लिये बहुत उपयुक्त है।

कुछ प्रमुख अभाशाई बुद्धि परीक्षण– प्रिय पाठको, वैसे तो अभाशाई बुद्धि परीक्षण अनेक हैं, फिर भी उनमें से जो प्रमुख है। वे निम्न है–

– गुडएनफ ड्रा–ए–मैन परीक्षण
– कैटेल संस्कृति मुक्त बुद्धि परीक्षण इत्यादि

अभ्यासार्थ प्रश्न–नीचे कुछ कथन दिये गये हैं जो कथन सही हो उनके आगे सही का (√) एवं जो गलत हो उनके आगे गलत का (X) निशान लगायें–

1. केवल संस्कृति मुक्त बुद्धि परीक्षण एक क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण है। ()
2. घनरचना परीक्षण क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण का उदाहरण है। ()
3. कोहब्लॉक डिजाइन परीक्षण एक सामूहिक बुद्धि परीक्षण है। ()
4. वैयक्तिक बुद्धि परीक्षणों का प्रयोग समूह पर किया जाता है। ()
5. क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण एक वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण है। ()
6. सबसे पहला वैयक्ति बुद्धि परीक्षण सन् 1905 में विकसित हुआ।()
7. सर्वप्रथम बुद्धि वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण का निर्माण बिने एवं साइमन द्वारा किया गया।()
8. प्रथम वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण का निर्माण सन् 1911 में हुआ। ()
9. सर्वप्रथम सामूहिक बुद्धि परीक्षण रूस में बनाया गया। ()
10. सर्वप्रथम सामूहिक बुद्धि परीक्षण का निर्माण अमेरिका में हुआ। ()
11. सर्वप्रथम सामूहिक बुद्धि परीक्षण का निर्माण द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान हुआ। ()
12. बुद्धि परीक्षण, एक वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण है। ()
13. अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण के एकांशों में भाषा का प्रयोग किया जाता है। ()
14. अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण के निर्देशों में भाषा का प्रयोग किया जाता है। ()
15. आर्मी अल्फा टेस्ट एक शाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षण है। ()

9.5 सारांश–

तो जिज्ञासु विद्यार्थियों, उपर्युक्त विवरण से आप जान ही गये होंगे की बुद्धि परीक्षण अनेक प्रकार के है। इनके वर्गीकरण के आधार के रूप में मनोवैज्ञानिकों ने दो तत्वों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। प्रथम तो इन बुद्धि परीक्षणों का क्रियान्वयन (Administration) किस प्रकार से किया जाता है और द्वितीय यह कि इन परीक्षणों में जिन एकांषों को प्रयुक्त किया गया है, उनका स्वरूप क्या है? अर्थात्– उनके भाषा का प्रयोग किया गया है अथवा चित्र या हाव–भाव निर्देशन इत्यादि का। इन दोनों आधारों पर बुद्धि परीक्षणों के जो भेद किये गये है, उनमें व्यक्तिक बुद्धि परीक्षण, सामूहिक बुद्धि परीक्षण, शाब्दिक बुद्धि परीक्षण, अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण, क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण तथा अभाषाई बुद्धि परीक्षण प्रमुख है। इन सभी परीक्षणों की अपनी कुछ उपयोगिताये एवं सीमायें हैं तथा परस्पर कुछ समानतायें एवं विभिन्नताये भी है।

9.6 शब्दावली–

प्रयोज्य – जिन व्यक्तियों पर प्रयोग या परीक्षण किया जाता है।
एकांश – परीक्षण में प्रयुक्त होने वाले प्रश्न
निर्मित – बनाना, निर्माण करना
अभाषाई – जिनमें भाषा का प्रयोग न हो।
वैयक्तिक – व्यक्तिगत रूप से, एक अकेले व्यक्ति पर जिसका प्रयोग किया जाये।
क्रियान्वयन –व्यवहार में किसी परीक्षण वस्तु पदार्थ या किसी चीज को प्रयुक्त करना, लागू करना।

9.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

1.असत्य 2.सत्य 3.असत्य 4.असत्य 5.सत्य 6.सत्य 7.सत्य 8.असत्य 9.असत्य 10.सत्य 11. असत्य 12.असत्य 13.असत्य 14.सत्य 15. सत्य

9.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सुलेमान मुहम्मद तथा तरन्नुम, रिजवाना। (2009), मनोविज्ञान में प्रयोग एवं परीक्षण। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलोरोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

2. सिंह, अरूण कुमार। (2006), उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

9.9 निबंधात्मक प्रश्न–

प्रश्न 1. बुद्धि मापन से आप क्या समझते है? बुद्धि परीक्षण के विभिन्न प्रकारों का विस्तृत विवेचन किजिए।

प्रश्न 2. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–

1. शाब्दिक बुद्धि परीक्षण
2. क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण

इकाई 10 व्यक्तित्व–प्रत्यय, परिभाषायें एवं विभिन्न सिद्धान्त

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 व्यक्तित्व की अवधारणा

10.4 व्यक्तित्व : परिभाषायें

10.5 व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषतायें

10.6 व्यक्तित्वः विभिन्न सिद्धान्त

10.7 सारांश

10.8 शब्दावली

10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.11 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना–

प्रिय विद्यार्थियों, जैसा कि आप जानते हैं कि मनोविज्ञान का अध्ययन अत्यन्त विस्तृत है। इसके अन्तर्गत अनेक विषयों का अध्ययन किया जाता है। जैसे कि बुद्धि क्षमता, सीखने की क्षमता, निर्णय क्षमता, संवेग, अभिप्रेरणा, व्यक्तित्व इत्यादि। कहने का आशय यह है कि प्राणी के सामान्य एवं असामान्य दोनों ही प्रकार के व्यवहारों के सम्बद्ध अनेक अवधारणाओं एवं विषयों का अध्ययन मनोविज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है।

पाठकों, प्रस्तुत ईकाई में हमारे अध्ययन का विषय है ''व्यक्तित्व'' अर्थात् व्यक्तित्व से क्या अभिप्राय है? व्यक्तित्व को किस–किस ढग से परिभाषित करने का प्रयास किया गया है? व्यक्तित्व का स्वरूप क्या है? इसके स्वरूप के संबंध में किन'किन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है? इन सिद्धान्तों की मूल मान्यतायें क्या हैं? इत्यादि।

प्रिय पाठकों, आपकी जानकारी के लिये बता दें कि व्यक्तित्व शब्द अपने आप में बहुत ही व्यापक अर्थ रखता है। जिस प्रकार हमारी शारीरिक संरचना है, उसी प्रकार व्यक्तित्व हमारी मनोवैज्ञानिक संरचना है। जैसे हमारे शरीर में क्रमशः स्थूल से सूक्ष्म होते हुये शरीर संस्थान है। जैसे–जैसे अस्थि तंत्र, माँसपेशीय तंत्र, पाचन तंत्र, रक्त परिसंचरण तंत्र श्वसन तंत्र।

अन्तःस्रावी तंत्र, तंत्रिका तंत्र इत्यादि उसी प्रकार हमारे व्यक्तित्व की भी परत दर परत सूक्ष्म होती हुयी संरचनायें है। व्यवहार हमारे व्यक्तित्व की सबसे बाहरी तथा स्थूल परत है विचार उससे सूक्ष्म। भावनायें या संवेग हमारे व्यक्तित्व की सबसे गहरी परत है। व्यक्तित्व के इन तीनों तलों का एक दूसरे से गहरा संबंध है अर्थात्– भावनायें विचारों एवं व्यवहारों को प्रभावित करती है। विचार से भावनायें एवं व्यवहार प्रभावित होते है। उसी प्रकार व्यवहार भी हमारे विचार एवं संवेगों पर अपना प्रभाव डालता है।

संवेग, विचार एवं व्यवहार–इन तीनों में जितना सामंजस्य और सकारात्मकता होती है। उसी क्रम में व्यक्तित्व निरपरता और परिष्कृत होता है।

तो आइये, सबसे पहले चर्चा करते हैं कि व्यक्तित्व के शब्द की व्युत्पत्ति किस प्रकार हुयी? इसका शाब्दिक अर्थ क्या है?

10.2 उद्देश्य–

प्रिय पाठकों, इस ईकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप–

- व्यक्तित्व के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे।
- व्यक्तित्व की विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
- व्यक्तित्व की विशेषताओं का अध्ययन कर सकेंगे।
- व्यक्तित्व के विभिन्न सिद्धान्तों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- व्यक्तित्व संबंधी विभिन्न सिद्धान्तों की मूल मान्यताओं को स्पष्ट कर सकेंगे।

10.3 व्यक्तित्व की अवधारणा–

विद्यार्थियों, क्या आप जानते हैं कि व्यक्तित्व शब्द की उत्पत्ति किस प्रकार का प्रयास किया। यदि हम व्यक्तित्व को सार्थक शब्दों में स्पष्ट करना चाहें तो हम कह सकते हैं कि–

''व्यक्तित्व शारीरिक एवं मानसिक शीलगुणों का एक विशिष्ट गत्यात्मक संगठन होता है, जो किसी प्राणी के वातावरण के साथ अपूर्ण समयोजन का निर्धारण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

10.4 परिभाषायें–

व्यक्तित्व के अध्ययन के विषय में मनावैज्ञानिकों की अत्यधिक रूचि होने के कारण इसकी विभिन्न परिभाषायें दी गई है। पाठकों, क्या आपको जानकारी है कि व्यक्तित्व की लगभग कितनी परिभाषायें की जा चुकी हैं?प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक आलपोर्ट ने व्यक्तित्व की विभिन्न परिभाषाओं को एकीकृत करके पाया कि अब तक व्यक्तित्व की 49 परिभाषायें की जा चुकी

है। आलपोत ने इन सभी परिभाषाओं को पाँच भागों में वर्गीकृत किया तथा इनका गहन एवं विशिष्ट अध्ययन किया।

व्यक्तित्व की जो सबसे पहली परिभाषा प्रतिपादित की गई। उसका मूलाधार व्यक्तित्व शब्द की उत्पत्ति से संबंधित संप्रत्यय था।

व्यक्तित्व की 50वीं परिभाषा आलपोर्ट द्वारा दी गई, जो अन्य परिभाषाओं की तुलना में व्यक्तित्व के अर्थ को अधिक अच्छे ढंग से अभिव्यक्त करती है। अतः अधिकांश मनोवैज्ञानिकों को मान्य है।

पाठकों, व्यक्तित्व की विभिन्न परिभाषायें निम्नानुसार हैं–

1. ''व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनोशारीरिक तंत्रों का गतिशील या गत्यात्मक संगठन है जो वातावरण में उसके अपूर्व समायोजन को निर्धारित करते हैं।''

(आलपोर्टःPersonality:A psychological interpretation, 1937 पृ.सं. 48)

2. ''व्यक्तित्व व्यक्ति के चरित्र, चित्त प्रकृति, ज्ञानशक्ति तथा शरीर गठन का करीब–करीब एक स्थायी या टिकाऊ संगठन है। जो वातावरण में उसके अपूर्ण समायोजन का निर्धारण करता है।''

(आइजेक : The scientific study of personality 1952. पृ.सं. 16)

3. ''व्यक्तित्व से तात्पग्र कमोवेश स्थायी आन्तरिक कारकों से होता है जो व्यक्ति के व्यवहार को एक समय से दूसरे समय में संगत बनाता है तथा तुल्य परिस्थितियों में अन्य लोगों के व्यवहार से अलग करता है।''

(चाइल्ड, 1968, पृ.सं 83)

4. ''प्रायः व्यक्तित्व से तात्पर्य व्यवहार के उस विशिष्ट पैटर्न (जिसमें चिन्तन एवं संवेग भी सम्मिलित है) से होता है। जो प्रत्येक व्यक्ति की जिन्दगी के साथ होने वाली परिस्थितियों के साथ होने वाले समायोजन का निर्धारण करता है।''

(वाटर मिसकेलः Introduction to personality, 1981, पृ.सं. 2)

5. ''व्यक्तियों के संवेगों, चिन्तनों तथा व्यवहारों के अनूठे एवं सापेक्ष रूप से स्थिर पैटर्न के रूप में व्यक्तित्व को सामान्यतः परिभाषित किया जाता है।''

(बेरॉनः Psychology, 1993 पृ.सं. 482)

6. ''इड, ईगो एवं सुपर ईगो के संगठन को व्यक्तित्व कहते है।''

(फ्रायड, 1920)

7. ''व्यक्तित्व वह है, जो यह भविष्यवाणी करता है कि कोई व्यक्ति किसी निश्चित परिस्थिति में क्या करेगा।''

(कैटेल, 1950)

8. ''जन्म से लेकर मृत्यु तक मस्तिष्क में होने वाली समस्त संगठित शासकीय प्रक्रियाओं की श्रेणी को व्यक्तित्व कहते हैं।''

(मर्रे, 1948)

9. ''जीवन लक्ष्य सहित जीवन का समस्याओं के प्रति प्रतिक्रिया विशिष्ट ढंग अथवा जीवन शैली व्यक्तित्व कहते है।''

(एडलर, 1937)

10. ''ईगो व्यक्तित्व तथा जातीय अचेतन, ग्रन्थियों, संस्कारों पर सोना एवं एनिमा के समकलन को व्यक्तित्व कहते है।''

(युंग, 1929)

प्रिय पाठकों, इस प्रकार व्यक्तित्व को भिन्न–भिन्न मनोवैज्ञानिकों के अपने–अपने ढंग से परिभाषित करने का प्रयास किया है।

10.5 व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषतायें–

प्रिय विद्यार्थियों, यदि व्यक्तित्व की विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण किया जाये तो इसके स्वरूप के संबंध में निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं–

1. मनोशारीरिक तंत्र (Psychophysical system)
2. गत्यात्मक संगठन (Dynamic organization)
3. संगतता (Consistency)
4. वातावरण में अपूर्ण समायोजन का निर्धारण (Determination of unique adjustment to environment)

व्यक्तित्व की इन विशेषताओं का विस्तृत विवेचन निम्नानुसार है–

1.मनोशारीरिक तंत्र–

पाठकों, व्यक्तित्व की प्रथम विशेषता है, मनोशारीरिक तंत्र। इसका आशय यह है कि व्यक्तित्व के दो पक्ष होते हैं। एक शारीरिक एवं मानसिक। न तो पूरी तरह से शारीरिक पक्ष को व्यक्तित्व की संज्ञा दी जा सकती है और न ही मानसिक पक्ष को। इन दोनों पक्षों को मिलाकर ही समग्र व्यक्तित्व बनता है। व्यक्तित्व की शारीरिक संरचना में विभिन्न शारीरिक संस्थान जैसे कि– अस्थि तंत्र, पेशीय तंत्र, तंत्रिका तंत्र, अन्तःस्रावी तंत्र, पाचन तंत्र, श्वसन तंत्र, उत्सर्जन तंत्र, प्रजनन तंत्र इत्यादि। तथा इनकी कार्यप्रणाली सम्मिलित है। मानसिक संरचना में व्यक्ति के संवेग, चिन्तन एवं व्यवहार को शामिल किया गया है। पाठकों जैसा कि आप जानते हैं कि शरीर और मन का एक–दूसरे के साथ गहरा संबंध

है। अतः शारीरिक क्रियायें मन को तथा मानसिक क्रियायें शरीर को परस्पर प्रभावित करती है। जब व्यक्तित्व के इन दों पक्षों में संतुलन एवं समन्वय बना रहता है, तो स्वस्थ व्यक्तित्व का विकास होता है।

2.गत्यात्मक संगठन–

पाठकों, मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व को गत्यात्मक संगठन की संज्ञा दी है? इस गत्यात्मक संगठन से क्या आशय है? गत्यात्मक संगठन का मतलब यह है कि व्यक्तित्व के विभिन्न तत्व जैसे कि शीलगुण, आदत, संवेग, चित्त प्रकृति इत्यादि एक दूसरे से इस प्रकार से संगठित होते हैं कि समय एवं परिस्थिति के अनुसार इसमें परिवर्तन भी संभव है। अतः व्यक्तित्व के विभिन्न तत्वों के आपस में संगठित होने तथा इस संगठन में उतार–चढ़ाव अर्थात्– परिवर्तन होने के कारण ही इसे गत्यात्मक संगठन कहा गया।

उदाहरण–

मान लें कि कोई विद्यार्थी है, जिसमें समयनिष्ठता, स्वाध्याय तथा प्रतिदिन सुबह जल्दी उठने की आदत है, लेकिन संभव है कि धीरे–धीरे समय के साथ उसकी जल्दी उठने की आदत बदल जाये अर्थात्– वह देर से उठने लगे। यहाँ पर एक विद्यार्थी के व्यक्तित्व की तीन विशेषताओं समयनिष्ठता, स्वाध्याय तथा जल्दी उठने की आदत इन तीनों में संगठन तथा समय के साथ इसमें परिवर्तन को भी दर्शाया गया है। आपकी जानकारी के लिये बता दें कि यहाँ यह आवश्यक नहीं है कि व्यक्तित्व के किसी एक ही गुण या विशेषता में परिवर्तन होता है। एक से अधिक अर्थात– सभी गुणों में भी परिवर्तन संभव है। कहने का आशय यह है कि जैसे प्रस्तुत उदाहरण में केवल यही संभव नहीं कि व्यक्ति की केवल जल्दी उठने की प्रवृत्ति बदल रही है, हो सकता है कि वह समयनिष्ठ भी ना रहे और स्वाध्याय करना भी छोड़ दें।

यहाँ एक बात और ध्यान देने योग्य है कि यदि व्यक्तित्व के शीलगुणों के संगठन में परिवर्तन इस प्रकार का हो जिससे कि व्यक्ति का व्यवहार विसंगठित हो जाये और उसका व्यवहार असामान्य हो जाये तो इसकी गणना भी गत्यात्मक संगठन के अन्तर्गत ही की जायेगी।

3.संगतता–

व्यक्तित्व की संगतता से मनोवैज्ञानिकों का अभिप्राय यह है कि दो अलग–अलग अवसरों पर भी व्यक्ति का व्यवहार लगभग एक जैसा होता है। व्यवहार की इसी समानता को संगतता का नाम दिया गया हैं मनोवैज्ञानिकों का यह भी मानना है कि संगतता के कारण ही यह पता चलता है कि अमुक व्यक्ति में अमुक शीलगुण है। प्रिय विद्यार्थियों, व्यक्तित्व की इस विशेषता पर प्रख्यात मनोवैज्ञानिक चाईल्ड द्वारा विशेष बल डाला गया है।

4.वातावरण में अपूर्व समायोजन का निर्धारण–

इस कथन का आशय यह है कि प्रत्येक व्यक्ति के वातावरण के समान होने पर भी उस वातावरण के प्रति उसके संवेग, विचार तथा व्यवहार अलग–अलग होते है और प्रत्येक व्यक्ति का उस वातावरण के साथ समायोजन करने का ढंग भी मौलिक अर्थात्– सर्वथा भिन्न होता है, जो दूसरे व्यक्ति से मेल नहीं खाता है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में मौलिक है। इसलिये उसका व्यक्तित्व भी सर्वथा मौलिक एवं अपूर्व होता है।

तो विद्यार्थियों उपरोक्त विवरण से आप समझ गये होंगे कि व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषतायें क्या–क्या है। यदि सभी परिभाषाओं का विश्लेषण करके निष्कर्ष रूप में कहा जाये तो

व्यक्तित्व शारीरिक एवं मानसिक संरचना का एक ऐसा गतिशील संगठन है, जिसके कारण किसी व्यक्ति के संवेग, विचार एवं व्यवहार किसी भी वातावरण में अपूर्व, सबसे अलग होते हैं।

10.6 व्यक्तित्व के विभिन्न सिद्धान्त–

पाठकों, व्यक्तित्व के स्वरूप की व्यापक व्याख्या एवं स्पष्टीकरण के लिये मनोवैज्ञानिकों द्वारा अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। इनमें से कुछ प्रमुख सिद्धान्त निम्न हैं–

1. मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त
2. नव मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त
3. शरीर गठनात्मक सिद्धान्त
4. जीवन–अवधि सिद्धान्त
5. शीलगुण सिद्धान्त
6. विमीय सिद्धान्त
7. सांवृत्तिक या मानवतावादी सिद्धान्त
8. संज्ञानात्मक सिद्धान्त
9. व्यवहारात्मक एवं अधिगम सिद्धान्त
10. सामाजिक–संज्ञानात्मक सिद्धान्त

पाठकों, इन प्रमुख सिद्धान्तों का विवेचन निम्नानुसार है–

1.मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त–

व्यक्तित्व के स्वरूप की व्याख्या करने वाला सर्वप्रथम सिद्धान्त ''मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त'' है। इसका प्रतिपादन सिगमण्ड फ्रायड ने किया था। इस सिद्धान्त में मानव प्रवृति की दो विशेषताओं पर मुख्य रूप से बल डाला गया, जो निम्न हैं–

क. निराशावादी प्रवृत्ति
ख. निश्चयवादी प्रवृत्ति

पाठकों, फ्रायड ने व्यक्तित्व को समझने एवं इसके निर्धारण में निम्न कारक की भूमिका को महत्वपूर्ण माना है–

1. अचेतन की इच्छायें
2. यौन एवं आक्रामकता के जैविक आधार
3. प्रारंभिक बाल्यावस्था के मानसिक संघर्ष।

2. नवमनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त–

विद्यार्थियों, व्यक्तित्व के मनोविश्लेषणात्मक उपागम के प्रतिपादन के बाद के मनोवैज्ञानिकों ने फ्रायड के विचारों में कुछ संशोधन करके एक नवीन सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। जिसे ''नवमनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त'' की संज्ञा दी गई। इस सिद्धान्त के प्रतिपादन में दो प्रकार

के मनोवैज्ञानिकों का योगदान रहा। एक श्रेणी में वे हैं जो फ्रायड के काफी नजदीक थे। इनमें एडलर एवं युंग का नाम उल्लेखनीय है। दूसरी श्रेणी में वे मनोवैज्ञानिक शामिल हैं, जो फ्रायड के नजदीक तो नहीं थे फिर भी उन्होंने फ्रायड के सिद्धान्त की खामियों को दूर करके उसे एक अच्छा एवं नया रूप प्रदान करने का प्रयास किया। इसमें हार्नी, सुल्लीभान, फ्रोम तथा मर्रे का नाम उल्लेखनीय है।

नवमनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त की प्रमुख मान्यतायें निम्नानुसार हैं–

1.इस सिद्धान्त में व्यक्तित्व के जैविक कारकों को गौण समझा गया तथा मुख्य रूप से सामाजिक कारकों पर प्रभाव डाला गया।

फ्रायड ने मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त में व्यक्तित्व के जैविक कारकों को प्रधान माना है।

2.इस सिद्धान्त में व्यक्ति की आशावादी छवि को प्रमुखता दी गई है। जबकि फ्रायड ने व्यक्ति की निराशावादी छवि पर अधिक बल डाला है।

3.इसमें व्यक्तित्व को पर्यावरणी कारकों का प्रतिफल बताया गया है, जबकि फ्रायड ने जन्मजात दैहिक या जैविक कारकों का प्रतिफल माना है।

अतः पाठकों, आप समझ गये होंगे कि मनोविश्लेषणात्मक एवं नवमनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त में क्या भिन्नतायें हैं।

3.शरीरगठनात्मक सिद्धान्त–

इसमें व्यक्तित्व का आधार शारीरिक संरचना एवं कार्यप्रणाली को मानते हुये, दैहिक आकार–प्रकार एवं उससे संबंधित चित्त प्रकृति के आधार पर व्यक्तित्व के स्वरूप की व्याख्या की गई है। इस सिद्धान्त के आधार पर क्रेश्मर एवं शेल्इन ने अपने व्यकित्तव सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है।

4.जीवन–अवधि उपागम–

इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्तित्व की व्याख्या का आधार है– व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक के व्यवहारों में होने वाले परिवर्तन। इस उपागम में यह समझने का प्रयास किया जाता है कि व्यक्तित्व विकास की किस अवस्था में किस प्रकार का परिवर्तन होता है और इस परिवर्तन के कारण यदि व्यक्तित्व के विकास में कोई बाधा उत्पन्न हो रही है तो उसे कैसे दूर किया जाये। इस क्षेत्र में ''इरिफ इरिवसन'' का ''व्यक्तित्व का मनोसामाजिक सिद्धान्त'' विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

5.शीलगुण सिद्धान्त–

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इस सिद्धान्त में शीलगुणों के आधार पर व्यक्तित्व को समझने का प्रयास किया जाता है। यह सिद्धान्त इस मूल मान्यता पर आधारित है कि प्रत्येक व्यक्ति शीलगुणों के कारण ही भिन्न–भिन्न वातावरण में संगत व्यवहार कर पाता है अर्थात्– परिस्थितियाँ अलग–अलग होने पर भी एक व्यक्ति अपने शीलगुणों के कारण ही उन भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में लगभग एक समान व्यवहार करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति के व्यवहार पर परिस्थिति का कम और उसके शीलगुणों का प्रभाव अधिक पड़ता है। इस क्षेत्र में कैटेल और आलपोर्ट के विचार मुख्य रूप से उल्लेखनीय है।

6.विमीय सिद्धान्त–

यहाँ व्यक्तित्व की व्याख्या एक विभा के रूप में की जाती है और इन विभाओं पर संबंधित व्यक्ति को उच्च या निम्न अंक प्रदान करके उसके व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया जा सकता है।

उदाहरण–

जैसे कि बहिर्मुखतः अन्तर्मुखता– ये व्यक्तित्व की विभायें है। इन पर व्यक्ति की प्रकृति के अनुसार उसे उच्च या निम्न अंक दिये जा सकते है।

आइजेन्क, कोस्टा तथा मैलक्रे ने व्यक्तित्व के स्वरूप की व्याख्या एक विभा के रूप में की हैं।

7.सांवृत्तिक या मानवतावादी उपागम–

इस उपागम में अचेतन अभिप्रेरकों तथा पर्यावरणी कारकों की अपेक्षा व्यक्ति की आत्मगत अनुभूतियों पर अधिक बल डाला गया है। इसमें इस बात पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है कि व्यक्ति वातावरण का प्रत्यक्षण किस प्रकार से करता है। मानवतावादी मनोवैज्ञानिकों में कार्ल रोजर्स तथा एब्राहम मैस्लो का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

8.संज्ञानात्मक सिद्धान्त–

इस सिद्धान्त में सम्पूर्ण व्यक्तित्व को संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के रूप में समझने की कोशिश की जाती है। अध्ययनकर्ता इस बात पर ध्यान केन्द्रित करता है कि व्यक्ति स्वयं का तथा वातावरण का प्रत्यक्षण किस रूप में करता है? किस प्रकार से सोचता है? किस प्रकार से तर्क करता हैं? किस तरह से मूल्यांकन करता है, निर्णय लेता है, इत्यादि। इसमें केवल व्यक्ति की चेतन मानसिक प्रक्रियाओं पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। अतः इसे व्यक्तित्व के अध्ययन का सर्वाधिक युक्ति संगत या तर्क संगत सिद्धान्त माना जाता है। यद्यपि व्यक्तित्व के अन्य सिद्धान्तों में भी संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के अध्ययन पर बल दिया गया है। किन्तु इस उपागम की महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें समग्र व्यक्तित्व को ही संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के रूप में जानने का प्रयत्न किया जाता है। कर्ट लेविन एवं केली के व्यक्तित्व सिद्धान्त इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

9.व्यवहारात्मक एवं अधिगम सिद्धान्त–

इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति के अर्जित या सीखे गये व्यवहारों के आलोक में व्यक्तित्व का अध्ययन किया जाता है। इस सिद्धान्त की मान्यता यह है कि व्यक्तित्व का अर्थ ऐसे तथ्यों से है, जिनका वस्तुनिष्ठ ढंग से प्रेक्षण किया जा सके और जिनमें जोड़–तोड़ संभव हो सके।

व्यवहारात्मक सिद्धान्त को अधिगम सिद्धान्त इसलिये कहा जाता है क्योंकि इस सिद्धान्त की पूर्व कल्पना है कि व्यक्ति के बहुत सारे व्यवहार जो मिलकर उसके व्यक्तित्व का निर्माण करते है, अनुबंधित अर्थात–अर्जित होते हैं।

इस उपागम के अनुसार मिलर एवं डोलार्ड, हल तथा स्कीनर के व्यक्तित्व सिद्धान्तों का विवेचन किया जाता है।

10. सामाजिक–संज्ञानात्मक सिद्धान्त–

यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि किसी व्यक्ति का व्यवहार व्यक्तित्व चरों एवं पर्यावरणी चरों के बीच निरन्तर होने वाली अन्तःक्रिया तथा इस अन्तःक्रिया के व्यक्ति की मानसिक प्रक्रियाओं पर पड़ने वाले प्रभावों का परिणाम होता है। इस सिद्धान्त में व्यक्तित्व के स्वरूप को समझने में पर्यावरणीय कारकों के महत्व पर बल डाला गया है। अलबर्ट वैडूरा, वाल्टर मिशकेल तथा मार्टिन सोलिगमैन के सिद्धान्त इस दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण हैं। प्रिय पाठकों, उपरोक्त विवरण से आप समझ गये होंगे कि व्यक्तित्व के स्वरूप को समझने के लिये मनोवैज्ञानिकों द्वारा कौन–कौन से सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है तथा इनकी मूल धारणायें क्या हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न–

पाठकों, नीचे कुछ कथन दिये गये हैं। जो कथन सत्य हो, उसके आगे सही का तथा जो असत्य हो उसके सामने गलत का चिन्ह लगायें–

1.व्यक्तित्व एक मनोशारीरिक तंत्र है।

2. संज्ञानात्मक सिद्धान्त में आत्मगत अनुभूतियों पर बल दिया गया है।
3. शेल्डन का व्यक्तित्व सिद्धान्त शरीरगठनात्मक उपागम पर आधारित है।
4. मनोविश्लेषणात्मक उपागम का प्रतिपादन कार्ल युंग ने किया था।
5. इरिक इरिक्सन का सिद्धान्त जीवन–अवधि उपागम पर आधारित है।
6. सामाजिक – संज्ञानात्मक उपागम में पर्यावरणी कारकों पर बल डाला गया है।
7. चाइल्ड अपनी परिभाषा में संगतता पर अत्यधिक बल डाला है।
8. व्यक्तित्व एक गत्यात्मक संगठन है।
9. आलपोर्ट का व्यक्तित्व सिद्धान्त शीलगुण उपागम पर आधारित है।
10. कैटेल का व्यक्तित्व सिद्धान्त शीलगुण उपागम पर आधारित है।

10.7 सारांश–

जिज्ञासु विद्यार्थियों, उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हे कि व्यक्तित्व एक ऐसी शारीरिक एवं मानसिक संरचना का संगठन है, जिसका स्वरूप गतिशील है अर्थात् व्यक्तित्व शीलगुणों में समय–परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन संभव है। चूँकि व्यक्तित्व शीलगुणों का समुच्चय भी है। अतः इन शीलगुणों के कारण ही प्रत्येक व्यक्ति वातावरण के साथ अपूर्व समायोजन करता है, जो दूसरे व्यक्ति से सर्वथा भिन्न होता है।

मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व के स्वरूप के व्यापक एवं गहन अध्ययन के लिये उन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, जिनमें से मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त, नवमनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त, मानवतावादी सिद्धान्त, शीलगुण सिद्धान्त, एवं संज्ञानात्मक सिद्धान्त आदि उल्लेखनीय है।

तो पाठकों, प्रस्तुत ईकाइ के अध्ययन से आप व्यक्तित्व की अवधारणा और इसके सिद्धान्तों से परिचित हो चुके है।

10.8 शब्दावली–

1. अर्जित– जन्म के बाद प्राप्त की गई या सीखी गई

2. संज्ञानात्मक प्रक्रियायें– मानसिक प्रक्रियायें जैसे कि चिन्तन, निर्णयन, तर्क करना, स्मरण करना, मूल्यांकन करना, प्रत्यक्षण करना, समस्या का समाधान करना इत्यादि।
3. अधिगम–सीखना
4. गठन– निर्माण या संरचना
5. पैटर्न– प्रारूप
6. मनोशारीरिक– मानसिक तथा शारीरिक

10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

1.सत्य 2. असत्य 3.सत्य 4. असत्य 5. सत्य 6.सत्य 7.सत्य 8.सत्य 9.सत्य 10.सत्य

10.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सुलेमान मुहम्मद तथा तरन्नुम, रिजवाना। (2009), मनोविज्ञान में प्रयोग एवं परीक्षण। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलोरोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

2. सिंह, अरूण कुमार। (2006), उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

10.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. व्यक्तित्व के अर्थ को स्पष्ट करते हुये इसकी प्रमुख विशेषताओं का विस्तृत विवेचन कीजिए।
2. व्यक्तित्व के विभिन्न सिद्धान्तों पर प्रकाश डालिए।

इकाई 11 व्यक्तित्व के मापन की वैयक्तिक तथा वस्तुनिष्ठ विधियाँ

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 व्यक्तित्व–मापन

11.3.1 व्यक्तित्व–मापन का अर्थ

11.3.2 व्यक्तित्व–मापन के उद्देश्य

11.3.3 व्यक्तित्व मापन का महत्व

11.4 व्यक्तित्व मापन की विधियाँ

11.5 व्यक्तित्व के मापन की वैयक्तिक तथा वस्तुनिष्ठ विधियाँ

11.5.1 वैयक्तिक तथा वस्तुनिष्ठ विधि का अर्थ

11.5.2 वस्तुनिष्ठ विधि से संबंधित प्रमुख उपागम

11.5.3 प्रमुख वैयक्तिक एवं वस्तुनिष्ठ विधियाँ

11.5.4 वैयक्तिक एवं वस्तुनिष्ठ विधियों का मूल्यांकन

11.6 सारांश

11.7 शब्दावली

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.9 संन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.10 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना–

प्रिय विद्यार्थियों इससे पहले की इकाई में आप यह जान चुके हैं कि व्यक्तित्व क्या है? इसका स्वरूप क्या है? भिन्न मनोवैज्ञानिकों ने किस प्रकार इसे परिभाषित किया है तथा व्यक्तित्व के संबंध में जो भिन्न–भिन्न विचारधारायें दी गई हैं। वे किन–किन सिद्धान्तों पर आधारित हैं? अब आपके मन में अनेक प्रकार की जिज्ञासायें उत्पन्न हो रही होंगी। जैसे कि –

1. क्या व्यक्तित्व का मापन भी किया जा सकता हैं?
2. व्यक्तित्व मापन की क्या उपयोगिता हैं?
3. किन–किन विधियों के द्वारा व्यक्तित्व को मापा जा सकता है, इत्यादि।

पाठकों, आपकी इन्हीं जिज्ञासाओं के समाधान के लिये प्रस्तुत ईकाई में हमें व्यक्तित्व की वैयक्तिक एवं वस्तुनिष्ठ विधियों के बारे में अध्ययन करेंगें, जिससे कि आप व्यक्तित्व मापन की विभिन्न विधियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकें।

11.2 उद्देश्य–

प्रिय विद्यार्थियों प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप–

1. व्यक्तित्व–मापन के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे।
2. व्यक्तित्व मापन के उद्देश्यों से परिचित हो सकेंगे।
3. व्यक्तित्व मापन की उपयोगिता को स्पष्ट कर सकेंगे।
4. व्यक्तित्व मापन की वैयक्तिक एवं वस्तुनिष्ठ विधियों का अध्ययन कर सकेंगे।
5. वैयक्तिक एवं वस्तुनिष्ठ विधि के प्रमुख मॉडलों का विश्लेषण कर सकेंगे।
6. वैयक्तिक एवं वस्तुनिष्ठ विधियों का मूल्यांकन कर सकेंगे।

11.3 व्यक्तित्व–मापन

11.3.1 व्यक्तित्व–मापन का अर्थ

प्रिय विद्यार्थियों, व्यक्तित्व मापन की विधियों के बारे में अध्ययन करने से पूर्व यह जानना अत्यधिक आवश्यक है कि व्यक्तित्व मापन से मनोवैज्ञानिकों का क्या आशय हैं?

सामान्यतया व्यक्तित्व मापन का अर्थ इस बात का पता लगाना होता है कि किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व में कौन–कौन से शीलगुण हैं? उन शीलगुणों का स्वरूप क्या हैं? वे संगठित है या असंगठित। जब व्यक्तित्व शीलगुण परस्पर संगठित होते है तो उस व्यक्ति का व्यक्तित्व सामान्य होता है अर्थात् उसके चिन्तन, चरित्र एवं व्यवहार में एक प्रकार का समन्वय एवं सामंजस्य होता है, किन्तु शीलगुणों में संगठन न होने के कारण व्यक्ति की चिन्तन प्रक्रिया ग़बड़ा जाती है उसका चरित्र एवं व्यवहार असामान्य हो जाता है। परिणाम स्वरूप धीरे–धीरे व्यक्ति के अनेक प्रकार के मनोरोगों से ग्रस्त होने की संभावना बढ़ जाती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि व्यक्तित्व मापन में निम्नांकित बातों का समावेश होता हैं–

1. व्यक्तित्व के शीलगुणों का निर्धारण करना।
2. शीलगुण आपस में संगठित है या असंगठित।
3. इड, ईगो, तथा सुपर ईगो के स्वरूप का निर्धारण करना।

4. व्यक्ति की जीवन शैली के बारे में पता लगाना।
5. व्यक्ति की समायोजन क्षमता का निर्धारण करना।
6. विशिष्ट व्यवहार एवं विचार का निर्धारण करना इत्यादि।

तो विद्यार्थियों, अब आप समझ गये होंगे कि व्यक्तित्व मापन का क्या अर्थ है? इसमें किन–किन बातों को सम्मिलित किया जाता है।

अब हम चर्चा करते हैं, व्यक्तित्व मापन के उद्देश्यों के बारे में।

11.3.2 व्यक्तित्व मापन के उद्देश्य–

पाठकों, आप सोच रहे होंगे कि व्यक्तित्व के मापन के पीछे मनोवैज्ञानिकों, मनोचिकित्सकों का क्या उद्देश्य निहित होता है?
सामान्यतया व्यक्तित्व–मापन के उद्देश्यों का विवेचन हम निम्न दो बिन्दुओं के अन्तर्गत कर सकते हैं–

अ.सैद्धान्तिक उद्देश्य

ब.व्यावहारिक उद्देश्य

अ.सैद्धान्तिक उद्देश्य–

व्यक्तित्व–मापन के सैद्धान्तिक उद्देश्य से आशय यह है कि व्यक्तित्व मापन से व्यक्तित्व के स्वरूप, विकास इत्यादि को गहराई से समझने में अत्यधिक सहायता मिलती है। जिससे इस क्षेत्र में नये–नये अनुसंधान करने तथा नये–नये सिद्धान्तों को प्रतिपादित करने की प्रेरणा मिलती है।

ब.व्यावहारिक उद्देश्य–

व्यावहारिक दृष्टि से भी व्यक्तित्व मापन का अत्यधिक महत्व है। व्यक्तित्व मापन से व्यक्ति की समायोजन क्षमता का पता आसानी से लगाया जा सकता है और उसको समायोजन करने में जिन–जिन परेशानियों का सामना करना पड़ता है, उन परेशानियों को दूर किया जा सकता है।

''व्यक्तित्व के नैदानिक मापन का सबसे प्रमुख उद्देश्य यथार्थ नैदानिक मूल्यांकन कर रोगी का उपचार सही दिशा में करना होता है।''

(अरूण कुमार सिंहः उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान। 2006)

पाठकों, इस प्रकार आप जान गये हैं कि सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों दृष्टियों से ही व्यक्तित्व मापन का अत्यधिक महत्व है।

11.3.3 व्यक्तित्व मापन का महत्व–

विद्यार्थियों, व्यक्तित्व मापन के महत्व का विवेचन निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है–

1.नैदानिक मूल्यांकन या नैदानिक उपचार में सहायता प्राप्त होना।
2.व्यक्तित्व के स्वरूप को गहराई से समझने में सहायता।
3.इससे व्यक्ति के व्यवहार के संबंध में कुछ हद तक भविष्यवाणी करना संभव हो पाता है।
4.समायोजन संबंधी कठिनाइयों को दूर करने में सहायता।

5.अन्तवैयिक्तिक संबंधों को अच्छा बनाने में सहायता।
6.उत्तरदायी पदों के लिये उपयुक्त व्यक्तियों का चयन करने में सहायता।
7.व्यावसायिक निर्देशन की दृष्टि से महत्वपूर्ण।
तो जिज्ञासु विद्यार्थियों, अब आप समझ गये होंगे कि व्यक्तित्व मापन का कितना महत्व है।

11.4 व्यक्तित्व–मापन की विधियाँ–

व्यक्तित्व मापन के अर्थ, उद्देश्य एवं उपयोगिता से परिचित होने के बाद अब हम चर्चा करते हैं उन विधियों के बारे में, उन परीक्षणों के विषय में जिनके माध्यम से हम भिन्न–भिन्न प्रकार से व्यक्तित्व शीलगुणों का मापन करते हैं।

पाठकों, व्यक्तित्व को मापने के लिये मनोवैज्ञानिकों द्वारा अनेक विधियों का प्रतिपादन किया है। उन सभी विधियों को मुख्य रूप से निम्न दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

क. वस्तुनिष्ठ व्यक्तित्व परीक्षण
ख. प्रक्षेपण परीक्षण

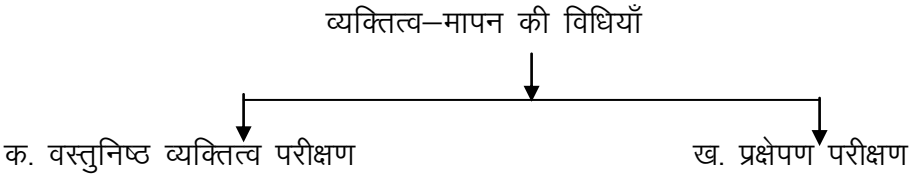

(व्यक्तित्व–मापन की विधियाँ)

विद्यार्थियों, प्रस्तुत इकाई में हमारे अध्ययन का विषय है– व्यक्तित्व मापन की वैयक्तिक एवं वस्तुनिष्ठ विधियों के बारे में अध्ययन करना।

तो आइये, जानें कि ये वैयक्तिक एवं वस्तुनिष्ठ विधियाँ क्या हैं।

11.5 वैयक्तिक एवं वस्तुनिष्ठ विधियॉ :–

11.5.1 वस्तुनिष्ठ विधियों का अर्थ–

प्रिय पाठकों, वस्तुनिष्ठ विधि से तात्पर्य ऐसी विधि से है, जिसमें उद्दीपक के रूप में या तो एक शब्द होता है अथवा एक वाक्य होता है। इस उद्दीपक के प्रति अनुक्रिया व्यक्त करने के लिये व्यक्ति को दिये गये विभिन्न उत्तरों में से किसी एक को चुनना होता है। मनोचिकित्सकों ने नैदानिक उपयोग की दृष्टि से वस्तुनिष्ठ परीक्षणों के निर्माण तथा उनकी उपयोगिता एवं उत्कृष्टता को बनाये रखने के लिये कुछ मॉडलों का निर्माण किया और इन मॉडलों के आधार पर विभिन्न वस्तुनिष्ठ परीक्षणों का प्रतिपादन किया गया।

विद्यार्थियों, अब आपके मन में यह प्रश्न उठ रहा होगा कि वे मॉडल कौन–कौन से हैं?
तो आइये, आपके इसी प्रश्न का समाधान करते हुये चर्चा करते है इन मॉडल के बारे में।

11.5.2 वस्तुनिष्ठ विधि से संबंधित प्रमुख मॉडल या उपागम–

मनोचिकित्सकों ने मुख्य रूप से निम्न चार मॉडलों का प्रतिपादन किया–

1. प्रत्यक्ष मूल्य मॉडल या तार्किक अथवा युक्तिसंगत उपागम
(Face volume model or logical or rational approach)

2.अनुभवजन्य मॉडल या उपागम
(Empirical model or approach)
3.कारक–वैश्लेषिक मॉडल या उपागम
Factor-analytic model or approach)
4.सैद्धान्तिक मॉडल या उपागम
(Theouritical model or approach)

a)प्रत्यक्ष मूल्य मॉडल (Face Volume Model) –

पाठकों, वस्तुनिष्ठ विधि के प्रथम मॉडल प्रत्यक्ष मूल्य मॉडल का विकास अमेरिका में प्रथम विश्व युद्ध के दौरान हुआ था। इस मॉडल को तार्किक या युक्तिसंगत उपागम के नाम से भी जाना जाता है। इस उपागम की प्रमुख विशेषत यह है कि इस पर आधारित परीक्षण के एकांशों का स्वरूप एकदम स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष होता है। जिन्हें पढ़कर रोगी व्यक्ति भी एकांशों के उद्देश्य को भली–भाँति जान लेता है।

प्रत्यक्ष मूल्य मॉडल पर आधारित परीक्षण के कुछ एकांशों के उदाहरण निम्नानुसार हैं–

- क्या आपको सिरदर्द की शिकायत रहती हैं?
- क्या आप किसी पार्टी में जाने की बात से चिन्तित हो जाते हैं इत्यादि।

इस मॉडल में यह पूर्वकल्पना की जाती है कि व्यक्ति पूरी ईमानदारी के साथ अनुक्रिया व्यक्त करेगा तथा इसके साथ ही यह भी माना जाता है कि व्यक्ति स्वयं के शीलगुणों एवं विशेषताओं से पूरी तरह परिचित है।

पाठकों, इस मॉडल पर आधारित सर्वप्रथम व्यक्तित्व परीक्षण का निर्माण सन् 1917 में वुडवर्थ द्वारा किया गया। यह प्रथम समायोजन आविष्कारिका थी। जिसका नाम ''वुडवर्थ पर्सनल डाटाशीट'' रखा गया। जिज्ञासु विद्यार्थियों क्या आप जानते हैं कि इस आविष्कारिका का प्रयोजन क्या था? इसका उद्देश्य था, सांवेगिक रूप से क्षुब्ध व्यक्तियों की समायोजन करने की क्षमता को मापना और ऐसे व्यक्तियों को पहचानना।

यद्यपि प्रारंभ में इस उपागम पर आधारित अनेक परीक्षणों का निर्माण और उपयोग किया गया, किन्तु धीरे–धीरे सन् 1930 तक इस उपागम में अनेक खामियाँ नजर आने लगी। परिणामस्वरूप इस मॉडल का उपयोग नहीं के बराबर किया जाने लगा क्योंकि एकांशों की अत्यधिक स्पष्टता के कारण व्यक्ति प्रायः मनगढंत उत्तर देते थो। इस उपागम के विकल्प के रूप में अनुभवजन्य उपागम का विकास हुआ।

b) अनुभवजन्य मॉडल या उपागम (Empirical model or approach)–

प्रत्यक्ष मूल्य मॉडल की कमियों को दूर करने के उद्देश्य से अनुभवजन्य मॉडल का विकास हुआ। इस मॉडल की खास बात यह है कि इस पर आधारित परीक्षणों में केवल उन्हीं एकांशों को रखा गया है जो सामान्य व्यक्तियों के समूह एवं विशिष्ट नैदानिक समूह के मध्य स्पष्ट रूप से अन्तर कर सके। इस मॉडल पर आधारित कुछ प्रमुख परीक्षणों के नाम निम्न हैं–

क.माइनेसोटा मल्टीफेजिक व्यक्तित्व आविष्कारिका **(MMPI)**
ख.कैलिफोर्निया व्यक्तित्व आविष्कारिका **(CPI)**

c) कारक–वैश्लेषिक मॉडल (Factor analytic model)–

जिज्ञासु विद्यार्थियों, इस मॉडल की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसके अन्तर्गत विभिन्न परीक्षणों से जो निष्कर्ष या परिणाम प्राप्त होते हैं, उन्हें परस्पर सहसंबंधित करते है।

कारक–विश्लेषण पर आधारित होने के कारण ही इसे कारक वैश्लेषिक मॉडल कहा जाता है। इस उपागम पर आधारित परीक्षणों के विकास में कैटेल, आइजेन्क तथा गिलफोर्ड का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनके द्वारा निर्मित व्यक्ति परीक्षणों को नैदानिक दृष्टि से अत्यधिक उपयोगी माना गया है।

iv) सैद्धान्तिक मॉडल या उपागम–

इस मॉडल पर आधारित परीक्षणों में मानव व्यक्तित्व के सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुये एकांशों का निर्माण किया जाता है। कहने का आशय यह है कि व्यक्तित्व के सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुये एकांशों का चयन किया जाता है।

उदाहरण– जैसे कि व्यक्तित्व के किसी सिद्धान्त के अनुसार व्यक्तित्व तीन महत्वपूर्ण आयाम है– संवेग **(Emotion)**, चिन्तन **(Thoughts)** और व्यवहार **(Behaviour)**। तो इस स्थिति में सैद्धान्तिक मॉडल पर आधारित जिस परीक्षण का निर्माण किया जायेगा, उसेके एकांश ऐसे होंगे, जिससे संवेग, विचार एवं व्यवहार व्यक्तित्व की तीनों विभओं का मापन हो सकें।

पाठकों, आपकी जानकारी के लिये बता दें कि सैद्धान्तिक मॉडल पर आधारित परीक्षणों के एकांशों का स्वरूप भी प्रत्यक्ष मूल्य मॉडल के अनुसार बनने वाले परीक्षणों के एकांशों के समान ही स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष होते हैं। इस मॉडल पर आधारित सर्वाधिक लोकप्रिय परीक्षण हैं– ''एडवार्ड्स पर्सनल प्रेफरेन्स शेड्यूल'' **(Edwards personal preference schedule)**। इसका निर्माण एड्वार्डस ने किया था।

इस प्रकार विद्यार्थियों, उपरोक्त विवरण से आप समझ गये होंगे कि वस्तुनिष्ठ विधि क्या है तथा इसके प्रमुख उपागम या मॉडल कौन–कौन से है तथा इन उपागमों की प्रमुख विशेषतायें क्या हैं अर्थात्– ये किन–किन सिद्धान्तों पर आधारित हैं।

प्रस्तुत ईकाई के अगले अनुच्छेद में हम चर्चा करेंगे प्रमुख वस्तुनिष्ठ परीक्षणों के बारे में।

11.5.3 प्रमुख वस्तुनिष्ठ विधियाँ–

विद्यार्थियों कुछ प्रमुख वस्तुनिष्ठ विधियों का विवेचन हम निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत कर रहे हैं–

- **i)** माइनेसोटा मल्टीफेजिक पर्सनालिटी इन्वेंट्री–2 **(MMPI-2)**
- **ii)** कैलिफोर्निया साइकोलोजिकल आविष्कारिका
- **iii)** बेल समायोजन आविष्कारिका
- **iv)** कैटेल सोलह व्यक्तित्व–कारक प्रश्नावली

i) माइनेसोटा मल्टीफेजिक पर्सनालिटी इन्वेंट्र–2 **(MMPI-2)**

जिज्ञासु पाठकों, **MMPI** का प्रतिपादन मूल रूप से हाथावे एवं मैककिनले द्वारा सन् 1940में किया गया था। इसमें 550 एकांश थे और प्रत्येक एकांश के लिये निम्न तीन उत्तर थे।

- **a) True** सत्य
- **b) False** असत्य

c) conn't say कहा नहीं जा सकता

एम.एम.पी.आई. के मौलिक प्रारूप के दो प्रतिरूप उपलब्ध होते हैं– (1) वैयक्तिक कार्ड प्रतिरूप एवं (2) सामूहिक पुस्तिका प्रारूप। इसके मौलिक प्रारूप में नैदानिक नापनियों की संख्या दस तथा वैधता मापनियों की संख्या तीन है।

प्रिय पाठकों, एम.एम.पी.आई. का मूल उद्देश्य व्यक्तित्व के रोगात्मक शीलगुणों का मापन करना है। अतः इसकी 10 नैदानिक मापनियों 10 रोगात्मक शीलगुणों का मापन करती है और वैधता मापनियों पर हो। के प्राप्तांकों द्वारा व्यक्ति द्वारा जो अनुक्रिया व्यक्त की जाती है उसकी विश्वसनीयता एवं वैधता ज्ञात की जाती है।

मौलिक **MMPI** में समय परिस्थिति एवं आवश्यकता के अनुसार अनेक संशोधन हुये। इन सभी में जो सर्वाधिक नवीनतम संशोधन है, उसे **MMPI-2** नाम दिया गया। क्या आप जानते है, यह संशोधन किनके द्वारा किया गया? इस संशोधन में वुचर, डाहस्ट्रोम, ग्राहम, टेलेमन तथा केमर द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया गया। **MMPI-2** की मुख्य विशेषतायें निम्नानुसार हैं–

1. 10 नैदानिक मापनी एवं तीन वैधता मापनी है।
2. इसमें कुल 567 एकांश है, जिनमें से प्रथम 370 एकांश मौलिक **MMPI** से ही लिये गये हैं और इनमें केवल सम्पादकीय परिवर्तन ही किये गये हैं। इन 370 एकांशों के माध्यम से 10 नैदानिक विभाओं का मापन किया जाता है और शेष 197 एकांशों द्वारा व्यक्तित्व के अन्य पक्षों का मापन किया जाता है। 197 एकांशों में से 107 सर्वथा नये है।

एम.एम.पी.आई–2 की नैदानिक एवं वैधता मापनियों का वर्णन निम्नानुसार है–

नैदानिक मापनी **(Clinical scale)** –

1. रोगभ्रम–
   - इस मापनी द्वारा व्यक्ति की उस प्रवृत्ति का मापन होता है, जिसमें वह शारीरिक स्वास्थ्य एवं शारीरिक कार्यो के प्रति आवश्यकता से अधिक चिंतित रहता है।
   - इस मापनी में कुल 32 एकांश होते हैं।
2. विषाद–
   - इस मापनी द्वारा भावनात्मक विकृतियों जैसे कि उदासी, अकेलापन, अभिप्रेरण एवं ऊर्जा में कमी, असमर्यता इत्यादि का मापन किया जाता है।
   - इसमें 57 एकांश होते हैं।
3. रूपान्तर हिस्टीरिया–
   - इसमें व्यक्ति की ऐसी स्नायुविकृत प्रवृत्ति का मापन किया जाता है, जिसके अन्तर्गत रोगी अपनी मानसिक चिन्ताओं एवं संघर्षो से निजात पाने के लिये कुछ शारीरिक लक्षण विकसित कर लेता है।
   - इसमें 60 एकांश पाये जाते हैं।
4. मनोविकृत विचलन–
   - इसमें व्यक्ति की सामाजिक एवं नैतिक नियमों का उल्लंघन करने की प्रवृत्ति तथा दण्ड मिलने पर भी उससे कुछ भी शिक्षा न ग्रहण करने की प्रवृत्ति का मापन होता है।

- इसमें 50 एकांश होते हैं।

5. पुरूषत्व – नारीत्व–
   - इस मापनी द्वारा व्यक्ति के सीमांतीय यौन भूमिका करने की प्रवृत्ति का मापन किया जाता है।
   - इसमें कुल 56 एकांश होते हैं।
6. स्थिर व्यामोह–
   - इसके द्वारा व्यक्ति की बिना किसी कारण या तर्क के शंका–सन्देह करने की प्रवृत्ति एवं दंडात्मक एवं उत्कृष्टता से संबंधित भ्रान्ति का मापन किया जाता है।
   - इसमें कुल 40 एकांश होते हैं।
7. मनोदौर्बल्यता–
   - इसके द्वारा व्यक्ति में अतार्किक एवं असामान्य डर, मनोग्रस्ति, बाध्यता इत्यादि प्रवृत्तियों का मापन किया जाता है।
   - इसमें 48 एकांश है।
8. मनोविदालिता–
   - व्यक्ति में असामान्य चिन्तन या व्यवहार करने की प्रवृत्ति का मापन इस मापनी द्वारा किया जाता है।
   - इस मापनी में कुल 78 एकांश हैं।
9. अल्पोन्माद–
   - इस मापनी द्वारा व्यक्ति के विचारों में बिखराव, सांवेगिक उत्तेजना, अतिक्रिया इत्यादि का मापन होता है।
   - इसमें कुल 46 एकांश हैं।
10. सामाजिक अन्तर्मुखता–
    - इस मापनी द्वारा व्यक्ति की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति जैसे– सामाजिक अवसरों या समारोहों में शामिल न होने की प्रवृत्ति, लज्जाशीलता, स्वयं में खोये रहने या अकेले रहने की प्रवृत्ति असुरक्षा इत्यादि का मापन होता है।
    - इसमें 69 एकांश होते हैं।

वैधता मापनी **(Validity Scales)** –

प्रिय विद्यार्थियों, नैदानिक मापनी के बाद अब वैधता मापनी का विवेचन निम्नानुसार है–

(Cannot say) -

- इस मापनी में वे एकांश आते हैं, जिनका उत्तर व्यक्ति नहीं दे पाता है।
- जब इस मापनी में एकांशों की संख्या अधिक हो जाती है तो इससे निम्न बातों का पता चलता है–

a) या तो व्यक्ति एकांशों को ठीक ढंग से नहीं समझ पा रहा है।

b) व्यक्ति परीक्षक के साथ सहयोग की प्रवृत्ति नहीं अपना रहा है अथवा

c) व्यक्ति ने रक्षात्मक मनोवृत्ति **(Defensive attitude)** अपना लिया है।

"Cannot say" वैधता मापनी के संबंध में मनोवैज्ञानिकों द्वारा कहा गया है कि–

''इन तीन वैधता मापनियों के अतिरिक्त एक और वैधता मापनी है, जिसे? या से संकेतिक किया जाता है तथा इसमें उन एकांशों को रखते हैं। जिनका उत्तर व्यक्ति नहीं दे पाता है।''

(निटजील, वर्नस्टीन तथा मिलिक, 1994)

L (Lie) -

- इस मापनी में कुल 15 एकांश है।
- इसके द्वारा व्यक्ति की झूठ बोलने या अपने आपको गलत ढंग से प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति का मापन किया जाता है।

F (Frequency or infrequency) -

- यदि प्रयोज्य द्वारा इस मापनी पर उच्च अंक प्राप्त किये गये हैं तो इससे उस व्यक्ति की निम्न प्रवृत्तियों का पता चलता है–

i) व्यक्ति ने एकांशों के प्रति अनुक्रिया व्यक्त करने में लापरवाही की है। या

ii) अपने रोगात्मक लक्षणों को जान बूझकर अधिक बढ़ा–चढ़ाकर पेश किया है।

- इसमें कुल 60 एकांश है।

K (Correction) -

- इस मापनी द्वारा व्यक्ति के अपनी समस्या के बारे में आवश्यकता से अधिक कहने अथवा अपनी परेशानी या समस्या के विषय में अत्यधिक सुरक्षात्मक दृष्टिकोण अपनाने की प्रवृत्ति का मापन किया जाता है।
- इसमें कुल 30 एकांश है।

प्रिय विद्यार्थियों उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त एम.एम.पी.आई–2 की कुछ अन्य विशेषतायें भी है, जो निम्नानुसार हैं–

क. **MMPI-2** में एकांशों का समूहन करके कुल अन्तर्वस्तु मापनियाँ बनायी गयी हैं, जिनकी संख्या 15 है। इन मानियों द्वारा व्यक्तित्व के 15 ऐसे कारकों का मापन करना संभव हो पाया है, जिनका मापन 10 नैदानिक मापनियों द्वारा नहीं किया जाता है। इन कारकों में डर, दुश्चिन्ता, क्रोध, पारिवारिक समस्यायें इत्यादि प्रमुख है।

ख. **MMPI-2** में 4 र्वधता मापनियों के अतिरिक्त दो और नयी वैधता मापनियों को शामिल किया गया है। इनका उपयोग उन चार वैधता मापनियों के साथ ही करना होता है। ये दो वैधता मापनियाँ हैं–

i) VRIN – The variable Response Inconsitency

ii) TRIN – The True Resonse Inconsistency

उपर्युक्त दोनों मापनियों के माध्यम से व्यक्ति के एकांशों के प्रति असंगत ढंग से प्रतिक्रिया व्यक्त करने की प्रवृत्ति का मापन होता है।

इस प्रकार विद्यार्थियों आप जान चुके है कि एम.एम.पी.आई.–2 परीक्षण क्या है? यद्यपि अनेक मनोवैज्ञानिकों ने कुछ आधारों पर इस परीक्षण की आलोचना की है। लेकिन फिर भी व्यक्तित्व के मापन में एम.एम.पी.आई का जो महत्व है उसे हम नकार नहीं सकते।

कैलिफोर्निया साइकोलॉजिकल आविष्कारिका–

- इस परीक्षण का निर्माण सन् 1957 में हुआ और सन् 1987 में गफ ने इसमें कई संशोधन किये।
- इस परीक्षण द्वारा व्यक्तित्व के सामान्य शीलगुणों को मापा जाता है।
- इसमें कुल 462 एकांश है। जिनमें से आधे एकांश एम.एम.पी.–1 से ही लिये गये है।
- इन एकांशों के प्रति व्यक्ति को सही–गलत के रूप में अनुक्रिया व्यक्त करनी होती है।
- इस परीक्षण में भी तीन वैधता मापनियाँ है।
- इस परीक्षण की वैधता एवं विश्वसनीयता अत्यधिक है।

बेल समायोजन आविष्कारिका–

- इस परीक्षण का उद्देश्य यह जानना होता है कि एक व्यक्ति को समायोजन करने में किन–किन समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है अर्थात् उसकी समयोजान संबंधी परेशानियाँ क्या–क्या है?
- जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है महान् मनोवैज्ञानिक बेल द्वारा इसका निर्माण किये जाने के कारण ही इसका नाम ''बेल समायोजान आविष्कारिका है।
- इसका प्रतिपादन सन् 1934 में किया गया था।
- इस परीक्षण के दो रूप या फार्म हैं–

1. विद्यार्थी फार्म **(Student Form)**
2. व्यावसायिक फार्म **(Occupational Form)**

1. विद्यार्थी फॉर्म–

- इसमें कुल 140 एकांश होते हैं।
- ये एकांश चार क्षेत्रों –

अ.घर

ब.स्वास्थ्य

स.सामाजिक अवस्था

द.सांवेगिक अवस्था–से संबंधित समायोजन समस्याओं को जानने में समायक होते हैं।

2. व्यावसायिक फार्म–

- इसमें कुल 160 एकांश होते हैं। 140 एकांश विद्यार्थी फार्म के तथा इनमें 20 एकांश और जोड़ दिये जाते हैं।
- इसमें कुल 5 क्षेत्र आते है।
- इससे व्यस्कों की समायोजन क्षमता का मापन होता है।

कैटेल सोलह व्यक्तित्व – कारक प्रश्नावली–

- यह परीक्षण वस्तुनिष्ठ विधि के ''कारक वैश्लेषिक मॉडल'' पर आधारित है।
- इसका निर्माण कैटेल द्वारा किया गया।
- इसके द्वारा ऐसे व्यक्तियों के 16 शीलगुणों का मापन किया जाता है, जिनकी आयु 17 साल से ज्यादा हो।
- इस परीक्षण के कई फार्म हैं।

प्रिय विद्यार्थियों, उपर्युक्त वस्तुनिष्ठ परीक्षणों के अतिरिक्त भी अनेक दूसरे वस्तुनिष्ठ परीक्षण है।

जैसे कि–

i) Eysenck personality questionnaire (EPQ)

ii) Personality research form (PRF)

iii) Basic personality inventory **इत्यादि**

11.5.4 वस्तुनिष्ठ विधि के गुण एवं दोष–

प्रिय पाठकों, वस्तुनिष्ठ विधि के गुण–दोष का विवेचन हम निम्न प्रकार से कर सकते हैं–

गुण–

1. शीघ्रगामी माप–

मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि वस्तुनिष्ठ विधियों का क्रियान्वयन करना अपेक्षाकृत अधिक सरल एवं सुविधाजनक है। इनके द्वारा एक साथ अर्थात् एक समय में ही अनेक व्यक्तियों के व्यक्तित्व का मापन आसानी से किया जा सकता है।

2. नैदानिक एवं सामान्य दोनों ही परिस्थितियों में प्रयोग–

इन परीक्षणों का प्रयोग नैदानिक एवं सामान्य दोनों ही परिस्थितियों में समान रूप से किया जा सकता है।

दोष–

उच्च वैधता का अभाव–

आलोचकों का मत है कि वस्तुनिष्ठ विधियों में पर्याप्त वैधता का अभाव होता है।

एकांशों का अत्यधिक प्रत्यक्ष एवं स्पष्ट होना–

वस्तुनिष्ठ विधियों में एकांश इतने अधिक स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष होते हैं कि व्यक्ति को बहुत आसानी से पता चल जाता है कि उससे क्या पूछा जा रहा है। इसका परिणाम यह होता है कि वह पूरी ईमानदारी के साथ अनुक्रिया व्यक्त नहीं करता है। इन परीक्षणों में बहुत बार ऐसी संभावना होती है कि व्यक्ति एकांश का सही उत्तर न देकर अपने मन से उसका कोई दूसरा उत्तर दे दें। तो ऐसी स्थिति में परीक्षण के परिणामों की वैधता एवं विश्वसनीयता संदिग्ध हो जाता है।

अनपढ़ छोटे बच्चों पर क्रियान्वयन संभव नहीं–

वस्तुनिष्ठ परीक्षणों के एकांशों में भाषा का प्रयोग किया जाता है अर्थात् इनका स्वरूप शाब्दिक होता है। अतः इनका प्रयोग केवल उन्हीं व्यक्तियों पर किया जाता है। जो शिक्षित हो। अनपढ़, छोटे बच्चों जिनको भाषा की समझ नहीं है। उन पर इनका क्रियान्वयन नहीं किया जा सकता। अतः इन परीक्षणों की उपयोगिता यहाँ पर सीमित हो जाती है।

व्यक्तित्व का मापन अलग–अलग शीलगुणों द्वारा–

आलोचकों के अनुसार वस्तुनिष्ठ विधियों में व्यक्तित्व का मापन अलग–अलग शीलगुणों के रूप में होता है। किन्तु इस प्रकार से व्यक्तित्व की ठीक–ठीक व्याख्या नहीं हो पाती है।

''चूँकि व्यक्तित्व आविष्कारिका में व्यक्तित्व का मापन सम्पूर्ण रूप से नहीं होता है। अतः इस विधि को बहुत वैज्ञानिक नहीं माना जा सकता है।'' (फ्रीमैन, 1962)

ते पाठकों, उपरोक्त विवरण से आप समझ गये होंगे कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण की वस्तुनिष्ठ विधियाँ क्या हैं? ये किस प्रकार से प्रक्षेपी विधियों से भिन्न हैं? प्रमुख वस्तुनिष्ठ परीक्षण कौन–कौन से हैं और किस प्रकार से इनका उपयोग किया जाता है। इत्यादि।

प्रत्येक विधि, प्रत्येक तकनीक की अपनी उपयोगिता एवं सीमायें होती है। समय एवं आवश्यकता के अनुसार अलग–अलग प्रकार की विधियों की आवश्यकता होती है। इसलिये चाहे परीक्षण किसी भी प्रकार का हो का अपना–अपना महत्व है। जिससे किसी भी प्रकार से नकारा नहीं जा सकता।

अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रिय पाठकों, नीचे कुछ कथन दिये गये हैं। जो कथन सही हो, उसके सामने सही का तथा जो गलत हो उसके आगे गलत का निशान लगायें–

1. वस्तुनिष्ठ परीक्षणों में व्यक्ति अनुक्रिया के लिये दिये गये उत्तरों में से किसी एक का चयन करता है। ( )
2. प्रत्यक्ष मूल्य मॉडल का विकास द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान हुआ था। ( )
3. प्रत्यक्ष मूल्य मॉडल का विकास अमेरिका में हुआ था। ( )
4. प्रत्यक्ष मूल्य मॉडल पर आधारित प्रथम परीक्षण का निर्माण कैटेल द्वारा किया गया। ( )
5. MMPI अनुभवजन्य मॉडल पर आधारित परीक्षण है। ( )
6. MMPI प्रक्षेपी परीक्षण है। ( )
7. MMPI में 10 नैदानिक मापनी है। ( )
8. प्रत्यक्ष मूल्य उपागम पर आधारित परीक्षण के एकांशों का स्वरूप अस्पष्ट होता है।( )
9. सैद्धान्तिक मॉडल पर आधारित परीक्षण के एकांशों का स्वरूप स्पष्ट होता है। ( )
10. पहली समायोजन आविष्कारिका का निर्माण वुडवर्थ द्वारा किया गया। ()

11.6 सारांश–

विद्यार्थियों, उपर्युक्त विवरण से आप समझ गये होंगे कि व्यक्तित्व मापन से क्या आशय है? इसकी क्या उपयोगिता है? किन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये व्यक्तित्व का मापन किया जाता है तथा भिन्न–भिन्न विधियों द्वारा व्यक्तित्व मापन का यह कार्य किया जाता है। तथा भिन्न–भिन्न विधियों द्वारा व्यक्त्वि मापन का यह कार्य किया जाता है। व्यक्तित्व मापन की विधियों में वैयक्तिक एवं वस्तुनिष्ठ विधि का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इन विधियों द्वारा एक समय में ही अनेक व्यक्तियों के व्यक्तित्व का मापन आसानी से किया जा सकता है। इनका क्रियान्वयन भी अपेक्षाकृत आसान हें अतः स्पष्ट है कि मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व मापन की दृष्टि से वैयक्तिक एवं वस्तुनिष्ठ विधियों को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना है।

11.7 शब्दावली–

अन्तवैयक्तिक संबंध–
दो व्यक्तियों के बीच जो संबंध पाया जाता है।
मॉडल– जिसमें सिद्धान्त, प्रक्रिया एवं व्यावहारिक प्रयोग– ये तीनों बातें निहित हों।
प्रयोज्य– जिन पर प्रयोग किया जाता है।
उद्दीपक – जो अनुक्रिया करने के लिये उत्तेजित करे।
मनोवैज्ञानिक परीक्षण– एक मापक जिसके द्वारा किसी मानसिक योग्यता (बुद्धि, अभिवृत्ति, रचनात्मकता इत्यादि) का मात्रात्मक मापन किया जाता है।
साहचर्य– संबंध
अनुक्रिया– प्रतिक्रिया
अभिव्यंजक– अभिव्यक्त करने वाला
अनुभवजन्य– अनुभव से उत्पन्न होने वाला

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.सत्य
2.असत्य
3.सत्य
4.असत्य
5.सत्य
6.असत्य
7.सत्य
8.असत्य
9.सत्य
10.सत्य

11.9 संन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, अरूण कुमार। (2006) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

2. सुलेमान, मुहम्मद एवं तरन्नुम, रिजवाना। (2009) मनोविज्ञान में प्रयोग एवं परीक्षण। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

3. सिंह, अरूण कुमार। (2006) व्यक्तित्व मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

4. सिंह, अरूण कुमार। (2006) उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

11.10 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न.1 व्यक्तित्व मापन के अर्थ को स्पष्ट करते हुये वस्तुनिष्ठ विधि के प्रमुख मॉडलों का विस्तार से वर्णन किजिए।

प्रश्न.2 व्यक्तित्व मापन के उद्देश्य से आप क्या समझते हैं? व्यक्तित्व मापन की प्रमुख वैयक्तिक एवं वस्तुनिष्ठ विधियों को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न.3 निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए–

क. (माइनेसोटा मल्टीफेजिक व्यक्तित्व आविष्कारिका–2) MMPI-2

ख. व्यक्तित्व मापन का महत्व

इकाई–12 व्यक्तित्व के मापन की प्रक्षेपी विधियाँ

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 व्यक्तित्व के मापन की विधियाँ

12.4 व्यक्तित्व के मापन की प्रक्षेपी विधियाँ

12.4.1 प्रक्षेपण शब्द का अर्थ

12.4.2 प्रक्षेपी विधि का अर्थ एवं परिभाषा

12.4.3 प्रक्षेपी विधि का इतिहास

12.4.4 प्रक्षेपी विधि की विशेषतायें

12.4.5 प्रक्षेपी विधि के प्रकार

12.4.6 प्रक्षेपी विधि की सीमायें

12.5 सारांश

12.6 शब्दावली

12.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.8 सन्दर्भ सूची

12.9 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना–

प्रिय पाठकों, इससे पूर्व की ईकाई में आप व्यक्तित्व मापन के अर्थ, उद्देश्य एवं उपयोगिता से तथा व्यक्तित्व मापन की वैयक्तिक एवं वस्तुनिष्ठ विधियों से परिचत हो चुके है। प्रस्तुत ईकाई में अध्ययन के इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुये हमें व्यक्तित्व मापन की प्रक्षेपी विधियों के बारे में जानना एवं समझना है। प्रक्षेपी विधियों को मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व मापन की अप्रत्यक्ष विधि कहा है क्योंकि प्रक्षेपण का अर्थ ही होता है– स्वयं की इच्छाओं, प्रेरणाओं का दूसरों पर आरोपण करना।

पाठकों प्रक्षेपी विधि के बारे में आपके मन में अनेक जिज्ञासायें उत्पन्न हो रही होंगी। जैसे कि–

- प्रक्षेपी विधि क्या है?
- इसकी प्रमुख विशेषतायें क्या हैं?
- प्रक्षेपी विधि के अन्तर्गत कौन–कौन से परीक्षण आते हैं?
- इन परीक्षणों का क्रियान्वयन किस प्रकार से किया जाता हैं?
- इन परीक्षणों की सीमायें क्या हैं? इत्यादि।

तो आपकी इन्हीं जिज्ञासाओं के समाधान के लिये चर्चा करते हैं– व्यक्तित्व मापन की प्रक्षेपी विधियों के बारे में।

12.2 उद्देश्य–

जिज्ञासु पाठकों, इस ईकाई के अध्ययन के उपरान्त आप–

1. प्रक्षेपण शब्द के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे।
2. प्रक्षेपी विधि क्या है– इसका अध्ययन कर सकेंगे।
3. प्रक्षेपी विधियों की उपयोगिता को स्पष्ट कर सकेंगे।
4. प्रक्षेपी विधि में कौन–कौन से प्रमुख परीक्षण आते हैं– इसका अध्ययन कर सकेंगे।
5. प्रक्षेपी विधियों के क्रियान्वयन का विश्लेषण कर सकेंगे।
6. प्रक्षेपी विधियों का मूल्यांकन कर सकेंगे।

12.3 व्यक्तित्व के मापन की विधियाँ–

पाठकों जैसा कि जान चुके हैं, व्यक्तित्व मापन की विधियों से तात्पर्य एक ऐसे परीक्षण, यन्त्र या विधि से है, जिसके द्वारा व्यक्तित्व शीलगुणों का मूल्यांकन किया जाता है। अनेक मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व परीक्षण की विभिन्न विधियों का विवेचन किया है।

रेबर एवं रेबर, 2001 के अनुसार–

व्यक्तित्व परीक्षण को दो भागों में विभाजित किया जा सकता हैं–

क. प्रत्यक्ष परीक्षण (आत्म–प्रतिवेदन विधि तथा आविष्कारिका)

ख. अप्रत्यक्ष परीक्षण (प्रक्षेपण परीक्षण)

इस प्रकार स्पष्ट है कि व्यक्तित्व मापन की चाहे कितनी ही विधियाँ हो। मोटे तौर पर हम उन्हें निम्न दो भागों में बाँट सकते हैं–

क. वैयक्तिक एवं वस्तुनिष्ठ विधियाँ

ख. प्रक्षेपी विधियाँ

इस ईकाई में हमारे अध्ययन का विषय है व्यक्तित्व मापन की प्रक्षेपी विधियों का विवेचन करना। तो आइये चर्चा करते हैं– प्रक्षेपी विधि क्या हैं?

12.4 व्यक्तित्व के मापन की प्रक्षेपी विधियाँ

प्रक्षेपी विधियाँ– प्रिय विद्यार्थियों प्रक्षेपी विधि को ठीक प्रकार से समझने के लिये सबसे पहले प्रक्षेपण के अर्थ को जानना जरूरी है।

12.4.1 प्रक्षेपण शब्द का अर्थ–

प्रक्षेपण शबद से क्या आशय हैं?

प्रिय विद्यार्थियों, क्या आप जानते हैं कि प्रक्षेपण शबद का सर्वप्रथम प्रयोग किसने किया था? ''सिगमण्ड फ्रायड'' पहले ऐसे मनोवैज्ञानिक थे जिन्होंने सर्वप्रथम प्रक्षेपण शब्द का प्रयोग एक ''मनोरचना'' के रूप में किया था। फ्रायड का मत था कि प्रक्षेपण को व्यक्ति रक्षात्मक प्रक्रम (डिफेंस मैकेनिज्म) के रूप में प्रयुक्त करता है अर्थात्– प्रक्षेपण द्वारा व्यक्ति अपनी अनैतिक, अवांछित असामाजिक इच्छाओं को दूसरे व्यक्तियों पर आरोपित करके अपनी चिन्ता, द्वन्द्व एवं मानसिक संघर्षो का समाधान करता है।

फ्रायड के बाद एल.के. फ्रैंक ने प्रक्षेपण शब्द का प्रयोग और भी व्यापक अर्थ में किया। फ्रैंक के मतानुसार प्रक्षेपण द्वारा व्यक्ति न केवल अपनी अवांछित वरन् वांछित–अवांछित सभी प्रकार की इच्छाओं का आरोपण दूसरों पर करता है।

''प्रक्षेपण प्रक्रिया के द्वारा व्यक्ति अपनी सभी वांछित या अवांछित इच्छाओं तथा प्रेरणाओं को दूसरों पर आरोपित करता है।''

(एल.के. फ्रैंक, 1939)

आजकल ''प्रक्षेपण'' शब्द का प्रयोग इसी व्यापक अर्थ में किया जाता है।

तो पाठको अब आप समझ गये होंगे कि मनोविज्ञान में प्रक्षेपण शब्द का प्रयोग किस अर्थ में किया जाता है।

प्रक्षेपण शब्द का अर्थ स्पष्ञ हो जाने के बाद अब हम चर्चा करते हैं कि ''प्रक्षेपण परीक्षण'' क्या हैं?

12.4.2 प्रक्षेपी विधि का अर्थ एवं परिभाषा–

विद्यार्थियों, मनोवैज्ञानिक परीक्षण के क्षेत्र में प्रक्षेपण विधि का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। यह परीक्षण की एक अप्रत्यक्ष विधि है। इसमें व्यक्ति या प्रयोज्य के समक्ष कुछ असंगठित तथा अस्पष्ट उद्दीपक उपस्थित किये जाते हैं अथवा ऐसी कोई परिस्थिति दी जाती है। जब प्रयोज्य के सामने ऐसे उद्दीपकों एवं परिस्थितियों को लाया जाता है तो, वह इनके प्रति कुछ–न–कुछ प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। इन परीक्षणों में व्यक्ति जो अनुक्रिया करता है, वह वस्तुतः उसके अचेतन मन में दबी इच्छायें, भावनायें एवं मानसिक संघर्ष होते हैं, जिनको वह दूसरे व्यक्तियों अथवा वस्तुओं पर आरोपित करता है। इस अप्रत्यक्ष विधि से व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं उसकी योग्यताओं को समझने में मद्द मिलती है।

पाठकों, इस प्रकार से हम कह सकते है कि प्रक्षेपण विधि व्यक्तित्व शीलगुणों, मानसिक योग्यताओं के मापन की एक अप्रत्यक्ष या परोक्ष विधि है, जिसके एकांश या प्रश्न संगठित एवं स्पष्ट नहीं होते हैं। इन एकांशों के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करके व्यक्ति अपनी योग्यताओं, शीलगुणों को परोक्ष रूप से अभिव्यक्त करता है।

''प्रक्षेपण विधि'' को भिन्न–भिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अलग–अलग ढंग से स्पष्ट किया है। पाठकों, कुछ प्रमुख मनोवैज्ञानिकों की परिभाषायें निम्नानुसार हैं–

''प्रक्षेपण वह विधि है जिसमें अपने समाज के प्रति व्यक्ति के प्रत्यक्षीकरण या उस समाज में उसके व्यवहार के विशिष्ट ढंगों को प्रकाशित करने के लिये अस्पष्ट, असंरचित, उद्दीपनों या परिस्थितियों का व्यवहार किया जाता है।''

(चैपलिन, 1975, पृ.सं. 411)

''प्रक्षेपी विधि'' पद का सर्वप्रथम प्रतिपादन लारेन्स फ्रैंक ने किया था।

12.4.3 प्रक्षेपी विधि का इतिहास–

प्रिय पाठकों, अब हम चर्चा करते हैं, प्रक्षेपी विधि के इतिहास पर।

1400 ए.डी में में लियोनार्डो द विन्सी ने कुछ ऐसे बच्चों का चयन किया, जिन्होंने कुछ अस्पष्ट प्रारूपों में विशिष्ट आकार तथा पैटर्न की खोज की। इस खोज से यह स्पष्ट हुआ कि उन बच्चों में रचनात्मकता का गुण विद्यमान था। इसके बाद सन् 1800 के उततरार्द्ध में बिने ने एक खेल जिसका नाम उन्होंने स्लोटो बताया। के माध्यम से बच्चों की निष्क्रिय कल्पना को मापने का प्रयत्न किया। स्लोटो खेल में बच्चों को कुछ स्याही के धब्बे देकर उनसे पूछा जाता था कि इन धब्बों में उन्हें क्या आकार या प्रारूप दिखाई देता है। इसके उपरान्त सन् 1879 में गाल्टन द्वारा एक परीक्षण का निर्माण किया गया। जिसका नाम था– ''शब्द साहचर्य परीक्षण''।

केन्ट तथा रोरोजानोफ्फ द्वारा परीक्षण कार्यो में गाल्टन द्वारा निर्मित परीक्षण का प्रयोग किया गया। सन् 1910 में युंग द्वारा नैदानिक मूल्यांकन के लिये इसी प्रकार के परीक्षण का प्रयोग किया गया। इविंग होंस ने बुद्धि मापने के लिये ''वाक्यपूर्ति परीक्षण'' का उपयोग किया। धीरे–धीरे इन अनौपचारिक प्रक्षेपीय प्रतिधियों ने औपचारिक प्रक्षेपी परीक्षणों को जन्म दिया। जो अपेक्षाकृत अधिक मानकीकृत थे और इनके माध्यम से पहले की तुलना में अधिक अच्छे ढंग से मानसिक योग्यताओं का मापन करना संभव हो सका।

12.4.4 प्रक्षेपी विधि की विशेषतायें–

प्रिय पाठकों, अब आपके मन में जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी कि इन प्रक्षेपी विधियों की प्रमुख विशेषतायें क्या होती हैं?

लिण्डजे, 1961 के अनुसार प्रक्षेपी विधियों के स्वरूप का विवेचन निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता हैं–

1. प्रक्षेपी परीक्षण में ऐसे एकांश होते हैं, जिनके प्रति बहुत सारी अनुक्रियायें उत्पन्न हो पाती है।
2. प्रक्षेपी विधि द्वारा व्यक्तित्व के अनेक पहलुओं का मापन किया जाना संभव होता है।
3. प्रक्षेपी विधि व्यक्ति के अचेतन मन में छिपी हुयी इच्छाओं, प्रेरणाओं को उत्तेजित करती है।
4. प्रक्षेपी विधि में एकांशों के प्रति प्रयोज्यों द्वारा जो प्रतिक्रियायें व्यक्त की जाती है उनका अर्थ प्रयोज्य को मालूम नहीं होता है।
5. प्रक्षेपी विधि में व्यक्ि के सामने असंगठित एवं अस्पस्ट परिस्थितियों एवं उद्दीपकों को उपस्थित किया जाता है।
6. इन विधियों के माध्यम से व्यक्तित्व की एक संगठित तथा सम्पूर्ण तस्वीर सामने आती है।

7. इन विधियों द्वारा अधिक मात्रा में जटिल मूल्यांकन तथ्य एवं आँकड़ें एकत्रित किये जाते हैं।
8. इन विधियों द्वारा व्यक्ति में स्वप्न चित्र उत्पन्न होते हैं।
9. इन विधियों में किसी भी अनुक्रिया को सही अथवा गलत नहीं माना जाता हैं।

12.4.5 प्रक्षेपी विधि के प्रकार–

पाठकों, मनोवैज्ञानिकों ने प्रक्षेपी विधि के अनेक प्रकार बताये हैं। इस वर्गीकरण का आधार है– परीक्षण में प्रयुक्त किये जाने वाले उद्दीपक, परीक्षण के निर्माण एवं क्रियान्वयन का तरीका, उद्दीपकों के प्रति व्यक्त की गई अनुक्रिया इत्यादि।

इन विभिन्न वर्गीकरणों में लिण्डले द्वारा प्रक्षेपी विधियों का जो विभाजन किया गया, वह अधिक मान्य एवं लोकप्रिय है।

इन्होंने प्रक्षेपी विधियों को अनुक्रियाओं की कार्यो के आधार पर निम्न पाँच भागों में वर्गीकृत किया–

1. साहचर्य परीक्षण
2. संरचना परीक्षण
3. पूर्ति परीक्षण
4. चयन या क्रम परीक्षण
5. अभिव्यंजक परीक्षण

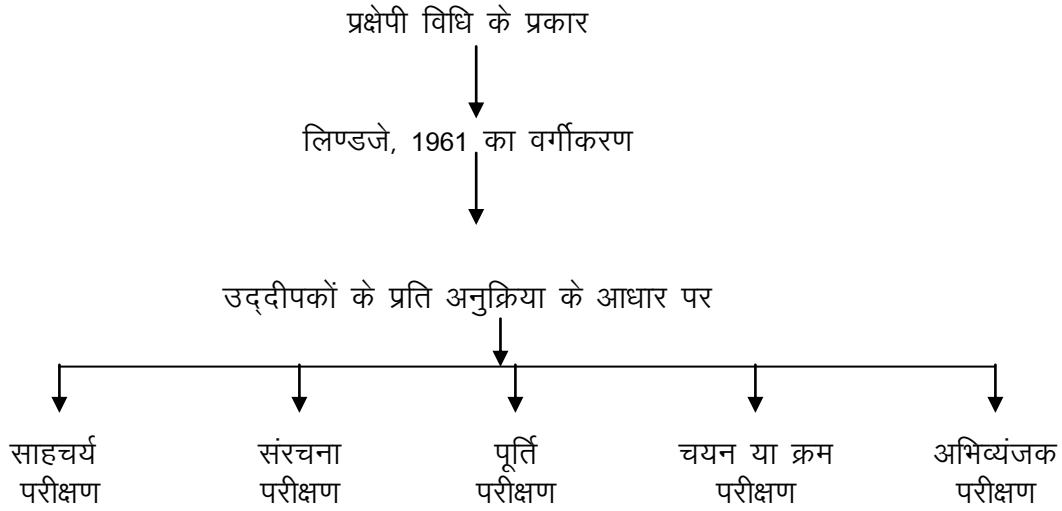

(लिण्डजे का प्रक्षेपी विधि का वर्गीकरण)

1. साहचर्य परीक्षण–

प्रिय विद्यार्थियों, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इस परीक्षण के अन्तर्गत प्रयोज्यों को जो उद्दीपक दिखलाये जाते है, ये अस्पष्ट होते हैं। इन अस्पष्ट उद्दीपकों को देखकर प्रयोज्य को यह बताना होता है कि उसमें उसे क्या चीज दिखाई दे रही है अथवा किस वस्तु व्यक्ति, परिस्थिति, घटना इत्यादि से वह उस उद्दीपक को साहचर्चित कर रहा है। इस श्रेणी में निम्न दो परीक्षण आते हैं–

क. शब्द साहचर्य परीक्षण
ख. रोशार्क परीक्षण

क.शब्द साहचर्य परीक्षण–

जिज्ञासु पाठकों क्या आप जानते हैं कि शब्द साहचर्य परीक्षण का प्रयोग किस प्रकार से किया जाता है? इस परीक्षण कुछ पहले से ही निश्चित उद्दीपक शब्द होते है। इन पूर्व निश्चित शब्द उद्दीपकों को एक–एक करके प्रयोज्य को सुनाया जाता है। इन सभी शब्दों को सुनने के बाद उस व्यक्ति या प्रयोज्य के मन में जो शब्द सर्वप्रथम आता है, उस शब्द को उसे प्रयोगकर्ता को बताना होता है।

इस परीक्षण का उपयोग मुख्य रूप से सिगमण्ड फ्रायड और उनके शिष्य कार्ल युंग द्वारा किया गया। शब्द साहचर्य परीक्षण के माध्यम से युंग ने व्यक्ति की सांवेगिक समस्याओं का सफलतापूर्वक निदान किया। इस सफलता से प्रभावित होकर अमेरिका में केन्ट तथा रोजेन्फ द्वारा सन् 1910 में तथा रैपपोर्ट द्वारा सन् 1946 में दूसरे शब्द साहचर्य परीक्षण का निर्माण किया गया। इन परीक्षणों का प्रयोग साधारण मानसिक रोग से ग्रसित व्यक्तियों के व्यक्तित्व को मापने में मुख्य रूप से किया गया।

ख.रोशार्क परीक्षण–

प्रिय पाठकों, प्रक्षेपण परीक्षणों में ''रोशार्क परीक्षण'' सर्वाधिक लोकप्रिय परीक्षण हे। इस परीक्षण का प्रतिपादन स्विट्जरलैण्ड के मनोश्चिकित्सक हरमान रोशार्क द्वारा सन् 1921 में किया गया था। इस परीक्षण से संबंधित मुख्य–मुख्य बातें निम्नानुसार हैं–

- इस परीक्षण में कुल 10 कार्ड होते हें, जिनमें से पाँच काले एवं सफेद रंग के होते हैं तथा पाँच कार्ड रंगीन होते है।
- इन कार्ड पर स्याही के धब्बे के समान कुछ चित्र बने होते हैं।
- इन कार्ड को देखकर प्रयोज्य (जिसके व्यक्तित्व का मापन किया जा रहा है) को यह बताना होता है कि उस कार्ड में उसे क्या दिखाई दे रहा है, स्याही के धब्बे जैसा पूरा चित्र या उसका कोई भाग उसे किस चीज के समान दिखाइ दे रहा है अर्थात् उस कार्ड को देखकर उसके मन में क्या विचार या भाव आ रहे हैं।
- प्रत्येक कार्ड को एक–एक करके प्रयोज्य को दिया जाता हे।
- प्रयोज्य कार्ड को जैसे चाहे वैसे घुमा–फिरा कर देख सकते हैं।
- प्रत्येक कार्ड के प्रति प्रयोज्य द्वारा जो अनुक्रिया दी जाती है, उसे परीक्षणकर्ता नोट कर लेता है और उसका विश्लेषण निम्न आधारों पर करता है–

अ.स्थल निरूपण (Location) –

इस श्रेणी में इस बात का निर्धारण किया जाता है कि प्रयोज्य द्वारा जो अनुक्रिया व्यक्त की गइ है, वह पूरे चित्र के प्रति है अथवा चित्र (स्याही का धब्बा) के किसी अंश के प्रति। अनुक्रिया का आधार जैसा होता है, उसी के अनुसार परीक्षणकर्ता कुछ विशिष्ट अक्षर संकेतों का प्रयोग करता है। जैसे–

W जब अनुक्रिया का आधार पूरा चित्र या स्याही का पूरा धब्बा होता है तो उसे परीक्षणकर्ता डब्लू से अंकित करता है।

P जब अनुक्रिया का आधार पूरा धब्बा न होकर धब्बे का बड़ा एवं सामान्य अंश होता है।

D जब अनुक्रिया का आधार पूरा चित्र न होकर चित्र का असामान्य एवं छोटा अंश होता है।

S सिर्फ उजली अर्थात् सफेद जगहों के आधार पर अनुक्रिया देने पर एस. का प्रयोग किया जाता है।

ब.निर्धारक **(Determinats)** –

इस श्रेणी में परीक्षणकर्ता इस बात का निर्धारण करता है कि प्रयोज्य द्वारा जो अनुक्रिया व्यक्त की गई हैं, वह अनुक्रिया धब्बे के किस गुण के कारण की है अर्थात् आकार, रंग, गति इत्यादि में से अनुक्रिया का आधार कौन सा गुण है।

उदाहरण–

जैसे किसी प्रयोज्य को किसी कार्ड में चमकादड़ दिखाई दे रही है, तो निर्धारण में परीक्षणकर्ता इस बा का निर्धारण करेगा कि कार्ड में उसे (प्रयोज्य) को दो चमगादड़ दिखाई दे रही है, वह स्याही के धब्बे का रंग चमगादड़ जैसा है, इसलिये दिखाई दे रही है अथवा स्याही के धब्बे का आकार या गति चमगादड़ के समान प्रतीत होने के कारण उसे (प्रयोज्य को) ऐसा लग रहा है अथवा अन्य किसी कारण से उसे ऐसा प्रतीत हो रहा है इत्यादि। तो उस कारण का न परीक्षणकर्ता द्वारा निर्धारण किया जाता है।

इस श्रेणी के लिये लगभग 24 अक्षर संकेतों को प्रतिपादित किया गया है। इनमें से कुछ निम्न प्रकार हैं–

F– आकार **(Farm)** के लिये

M मानव गति अनुक्रिया के लिये **(For human movement response)**

FM पशु गति अनुक्रिया के लिये **(For animal movement response)**

C रंग **(Colur)** के लिये

m निर्जीव गति अनुक्रिया के लिये इत्यादि।

स. विषय–वस्तु **(content)** –

पाठकों, इस श्रेणी में प्रयोज्य द्वारा व्यक्त की गई अनुक्रिया की विषय–वस्तु का निर्धारण किया जाता है।

जैसे–

H अनुक्रिया की विषय वस्तु मनुष्य होने पर।

A विषय–वस्तु पशु होने पर

Hd मानव के किसी अंग का विवरण होने पर।

Ad पशु के किसी अंग का विवरण होने पर

Hh घरेलू वस्तुओं के लिये **Hh** अक्षर संकेत का प्रयोग किया जाता है।

Fi विषय वस्तु आग होने पर इत्यादि।

द. मौलिक अनुक्रिया एवं संगठन **(Original response and organization)** –

पाठकों, विषय वस्तु के निर्धारण के बाद इस श्रेणी में मौलिक अनुक्रिया एवं संगठन का निर्धारण किया जाता है।

अब आपके मन में प्रश्न उठ रहा होगा कि यहाँ पर मौलिक अनुक्रिया एवं संगठन से क्या आशय है?

मौलिक अनुक्रिया–

मौलिक अनुक्रिया का अर्थ है, वह अनुक्रिया, जो प्रायः अधिकांश व्यक्तियों द्वारा किसी कार्ड के प्रति दी जाती है।

उदाहरण–

जैसे रोशार्क परीक्षण के प्रथम कार्ड को देखकर अक्सर लोग उसके प्रति ''चमगादड़'' या ''तितली'' के रूप में अनुक्रिया व्यक्त करते हैं। जो एक मौलिक अनुक्रिया का उदाहरण है। मौलिक अनुक्रिया को ही ''लोकप्रिय अनुक्रिया'' भी कहा जाता है।

मौलिक अनुक्रिया को अक्षर संकेत पी. के रूप में लिखा जाता है।

इस प्रकार पाठकों आप समझ गये होंगे कि मौलिक अनुक्रिया से क्या अभिप्राय है। अतः रोशार्क परीक्षण के प्रत्येक कार्ड के लिये कुछ अनुक्रियाओं को मौलिक या लोकप्रिय अनुक्रिया की श्रेणी में रखा गया है।

प्रिय विद्यार्थियों आपकी जानकारी के लिये एक बात और बता दी जाये कि कभी–कभी ऐसा भी होता है कि प्रयोज्य कुछ अनुक्रियाओं को एक साथ संगठित कर लेता है जिसे जेड अक्षर संकेत से व्यक्त किया जाता है।

प्रिय विद्यार्थियों, इस प्रकार आप जान गये हैं कि रोशार्क परीक्षण में प्रयोज्य द्वारा जो अनुक्रियायें दी जाती है, उनका विश्लेषण किस प्रकार से किया जाता है। विश्लेषण के बाद इनकी व्याख्या की जाती है।

तो आइये जानें कि किस प्रकार परीक्षणकर्ता इन विभिन्न अनुक्रियाओं की व्याख्या करता है।

उदाहरण–

W अनुक्रिया की अधिकता–

जैसे यदि किसी प्रयोज्य द्वारा दी गइ अनुक्रियाओं में **W** अनुक्रिया की अधिकता है, तो इससे उस व्यक्ति की तीव्र बुद्धि एवं अमूर्त चिन्तन की क्षमता का संकेत मिलता है।

D अनुक्रिया की अधिकता–

इस प्रकार की अनुक्रिया से यह बोध होता है कि उस व्यक्ति में किसी वस्तु को स्पष्ट रूप से देखने एवं समझने की क्षमता है।

Dd अनुक्रिया की अधिकता–

इस प्रकार की अनुक्रिया प्रायः कुल अनुक्रियाओं के 5 प्रतिशत से अधिक नहीं होती है। **Dd** अनुक्रिया से व्यक्ति के चिन्तन में अस्पष्टता का संकेत मिलता है किन्तु यदि **Dd**अनुक्रिया व्यक्ति द्वारा व्यक्त की गई कुल अनुक्रियाओं के 5 प्रतिशत से अधिक हो जाती है तो, यह एक मानसिक रोग, जिसे 'सिकोफ्रेनिया'' कहते हैं, की ओर संकेत है।

S अनुक्रिया की अधिकता–

इस प्रकार की अनुक्रियायें व्यक्ति की नकारात्मक प्रवृति एवं आत्म–हठधर्मिता का संकेत देती है।

F अनुक्रिया की अधिकता–

इससे एकाग्रता की क्षमता का बोध होता है।

C अनुक्रिया की अधिकता–

रंग–संबंधी अनुक्रियायें व्यक्तित्व के भावानात्मक पक्ष की ओर इशारा करती हैं जिन व्यक्तियों में सी. अनुक्रियायें नहीं होती है या कम होती है। तो यह भी मनोविदिलिा या सिकाफ्रोनिया के लक्षणों की ओर संकेत करती है।

F, Fm तथा **M** अनुक्रिया की अधिकता–

इस प्रकार की अनुक्रियायें व्यक्ति की कल्पना शक्ति का बोध कराती है।

P अनुक्रिया की अधिकता–

इसकी अधिकता होने पर रूढ़िगत चिन्तन तथा कमी होने पर व्यक्ति में सामाजिक अनुरूपता के शीलगुण की कमी का संकेत मिलता है।

एक्सनर **(Exner, 1974)** के अनुसार–

''**P** अनुक्रियाओं से व्यक्ति में सर्जनात्मकता का भी बोध होता है।''

Z अनुक्रियाओं की अधिकता–

Z अनुक्रियाओं की अधिकता व्यक्ति में अनेक गुणों की ओर संकेत करती है, जैसे–

- उच्च बुद्धि
- सर्जनात्मकता
- निपुणता इत्यादि।

ग. होल्जमैन स्याही धब्बा परीक्षण–

प्रिय पाठकों, क्या आप जाने है कि रोशार्क के अलावा सन् 1961 में होल्जमैन द्वारा भी एक स्याही धब्बा परीक्षण का प्रतिपादन किया गया था, जिसे ''होल्जमैन स्याही–धब्बा परीक्षण'' कहा जाता है। इसकी प्रमुख विशेषतायें निम्न हैं–

- इस परीक्षण में दो फार्म होते हैं।
- प्रत्येक फार्म में 45 कार्ड होते हैं।
- प्रत्येक कार्ड पर रोशार्क परीक्षण के समान ही स्याही के धब्बे बने होते हैं।
- प्रत्येक कार्ड के प्रति प्रयोज्य को अधिक से अधिक एक अनुक्रिया व्यक्त करनी होती है।

किन्तु मनोवैज्ञानिक परीक्षणों में यह परीक्षण उतना लोकप्रिय नहीं है, जितना कि रोशार्क परीक्षण है।

2. संरचना परीक्षण **(Consruction test)** –

प्रिय पाठकों, मनोवैज्ञानिक परीक्षण की प्रक्षेपी विधियों में दूसरी महत्वपूर्ण विधि ''संरचना परीक्षण'' है। संरचना परीक्षण में व्यक्ति को परीक्षण उद्दीपकों के आधार पर एक कहानी अथवा अन्य समान चीजों की संरचना करनी होती है।

प्रिय पाठकों क्या आज जानते हैं कि संरचना परीक्षणों में सर्वाधिक लोकप्रिय परीक्षण कोनजर है? ''विषय आत्मबोध परीक्षण'' जिसको **TAT (Thematic Apperception Test)** के नाम से जाना जाता है। सबसे अधिक प्रसिद्ध संरचना परीक्षण है।

TAT का विस्तृत विवेचन निम्नानुसार है–

TAT (The matic Apperception Test) -

विद्यार्थियों, **TAT** का निर्माण मर्रे द्वारा सन् 1935 में हारवर्ड विश्वविद्यालय में किया गया था। इसके बाद सन् 1938 में मोर्गन के साथ मिलकर उन्होंने इस परीक्षण का संशोधन किया। **TAT** परीक्षण से संबंधित मुख्य बातें निम्नानुसार हैं–

- **TAT** में उद्दीपक या परिस्थितियों रोशार्क परीक्षण की तुलना में अधिक स्पष्ट होती है। अतः यह रोशार्क परीक्षण से थोड़ा भिन्न है।
- इस परीक्षण में कुल 31 कार्ड होते है, जिनमें से 30 कार्ड पर चित्र बने होते हैं तथा एक कार्ड साद होता है।
- **TAT** परीक्षण का प्रयोग करते समय, जिस व्यक्ति के व्यक्तित्व का परीक्षण किया जाता है। उसकी आयु तथा यौन के अनुसार 31 में से 20 कार्ड को चुन लिया जाता है।
- इन 20 कार्ड में 19 कार्ड पर चित्र होते हैं तथा एक कार्ड सादा होता है।
- किसी एक व्यक्ति को 20 कार्ड से अधिक नहीं दिये जाते हैं।
- प्रयोज्य को प्रत्येक कार्ड के चित्र को देखकर एक कहानी लिखने को कहा जाता है। इस कहानी में चित्र से संबंधित घटना के भूत, वर्तमान, एवं भविष्य तीनों कालों का वर्णन होता है।
- टैट का क्रियान्वयन परीक्षणकर्ता दो सत्रों में करता है।
- प्रथम सत्र में 10 कार्ड और द्वितीय सत्र में भी 10 कार्ड देकर प्रयोज्य को उन कार्ड के आधार पर कहानी लिखने को कहा जाता है।
- 19 कार्ड देने के बाद सबसे अन्त में सादा कार्ड दिया जाता है और उस कार्ड पर अपने मन से किसी चित्र को मानकर उस आधार पर कहानी लिखने को कहा जाता है।
- मर्रे का मत है कि **TAT** के इन दो सत्रों के बीच कम से कम 24 घंटे का अन्तर होना चाहिये।
- जब प्रयोज्य कहानी लिखने का कार्य पूरी कर लेता है तो परीक्षणकर्ता एक साक्षात्कार लेता है। इस साक्षात्कार का उद्देश्य यह जानना होता है कि कहानी लिखने में व्यक्ति की कल्पना शक्ति का स्रोत क्या हैं? कार्ड पर अंकित चित्र अथवा चित्र के अतिरिक्त अन्य कोई घटना अथवा परिस्थिति।

कहानी लेखन के उपरान्त परीक्षणकर्ता इन कहानियों का विश्लेषण करके उस व्यक्ति के व्यक्तित्व का आंकलन करता है।

मर्रे के मतानुसार इस परीक्षण का विश्लेषण निम्नांकित आधारों पर किया जाता है–

1. नायक
2. आवश्यकता
3. प्रेस
4. थीमा
5. परिणाम

1. नायक **(Hero)** –

सर्वप्रथम परीक्षणकर्ता प्रत्येक कहानी में नायक या नायिका कौन है, इस बात का पता लगाता है। कहानी में जिस पात्र की मुख्य भूमिका होती है उसको नायक या नायिका कहते हैं। ये भी संभव है कि कभी–कभी एक ही कहानी में एक से अधिक नायक या नायिका हो। इस परीक्षण में ऐसा माना जाता है कि प्रयोज्य नायक अथवा नायिका के साथ आत्मीकरण **(identification)** स्थापित कर लेता है और अपनी महत्वपूर्ण आवश्यकताओं को अभिव्यक्त करता है।

2. आवश्यकता **(Needs)**–

नायक या नायिका का पता लगाने के बाद यह जानने की कोशिश की जाती है कि उस नायक या नायिका का प्रमुख आवश्यकतायें क्या–क्या हैं क्योंकि अप्रत्यक्ष रूप से नायक–नायिका के माध्यम से उस व्यक्ति की आवश्यकतायें अभिव्यक्त होती है, जिसमें व्यक्तित्व का मापन किया जा रहा है।

मर्रे के अनुसार टैट द्वारा 28 प्रकार की आवश्यकताओं का मापन संभव है। कुछ प्रमुख आवश्यकतायें निम्न हैं–

- उपलब्धि की आवश्यकता
- प्रभुत्व की आवश्यकता
- संबंधन की आवश्यकता

3.प्रेस **(Press)** –

मर्रे के अनुसार प्रेस से यहाँ पर आशय वातावरण संबंधी बलों से है। इनके कारण कहानी के नायक या नायिका की आवश्यकतायें या तो पूरी हो जाती हैं अथवा पूरी होने से वंचित रह जाती है। मर्रे के अनुसार ऐसे वातावरण संबंधी बलों की संख्या 30 से भी ज्यादा है, जिनमें से कुछ प्रमुख निम्नानुसार हैं–

- शारीरिक खतरा
- आक्रमण या आक्रामकता– ये दो महत्वपूर्ण प्रेस हैं।

3. थीमा **(Thema)** –

प्रेस के निर्धारण के बाद टैअ के अगले चरण में थीमा का निर्धारण किया जाता है। थीमा से क्या आशय है? थीमा का तात्पर्य हैं– ''नायक या नायिका की आवश्यकता तथा प्रेस (वातावरण संबंधी बल) में हुयी अन्तःक्रिया से उत्पन्न घटना। मर्रे के अनुसार थीमा द्वारा व्यक्तित्व में निरन्तरता का ज्ञान होता है।

4. परिणाम **(Outcome)**–

TAT के अगले चरण में कहानी के परिणाम का पता लगाया जाता है अर्थात्– कहानी का समापन किस प्रकार से किया गया है, कहानी का निष्कर्ष किस प्रकार का है? निश्चित अथवा अनिश्चित। कहानी का परिणाम यदि निश्चित एवं स्पष्ठ है तो इससे प्रयोज्य के व्यक्तित्व की परिपक्वता एवं वास्तविकता का ज्ञान होने की क्षमता का बोध होता है।

पाठकों, आपकी जानकारी के लिये बता दें कि **TAT** का हिन्दी अनुकूलन कलकत्ता के प्रो, उमा चौधरी ने किया है। भारतीय संदर्भ में अधिकांशतः उसी का प्रयोग किया जा रहा है।

प्रिय विद्यार्थियों **TAT** के अतिरिक्त भी कुछ अन्य संरचना परीक्षण है, जो निम्न हैं–

1. बाल आत्मबोधन परीक्षण **(Children's Apperception Test or CAT)**

2. रोजेन विग तस्वीर–कुंठा अध्ययन **(Rosenwig picture–Frustrution study)**

3. रोबर्टस आत्मबोधन परीक्षण : बच्चों के लिए **(Roberts Apperception Test for Childrent or RATC)**

a) बाल आत्मबोधन परीक्षण **CAT** –

इस परीक्षण का निर्माण सन् 1954 में बेल्लाक द्वारा किया गया।

- **CAT** द्वारा बच्चों के व्यक्तित्व का मापन किया जाता है।
- **CAT** के कार्ड में सभी पात्र पशु हैं, मानव नहीं।
- **TAT** के समान ही **CAT** में भी बच्चों के व्यक्तित्व का मापन प्रत्येक कार्ड के आधार पर लिखी गई कहानी का विश्लेषण करके किया जाता है।

b) रोजेनविग तस्वीर–कुंठ अध्ययन –

- इस परीक्षण का निर्माण प्रख्यात मनोवैज्ञानिक रोजेन विग द्वारा किया जाने के कारण उन्हीं के नाम इसका नाम ''रोजेनविग तस्वीर–कुंठा गध्ययन'' रखा गया है।
- इस परीक्षण का निर्माण सन् 1949 में हुआ था।
- इस परीक्षण में कुल 24 कार्टून होते हैं, जिसके अन्तर्गत एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से इस प्रकार का व्यवहार करते हुये दिखालाया गया है कि दूसरे व्यक्ति में उस पहले वाले व्यक्ति के व्यवहार के कारण निश्चित तौर पर कुंठा की भावना उत्पन्न हो।
- इस परीक्षण में प्रयोज्य को प्रत्येक कार्टून को देखकर यह बताने के लिये कहा जाता है कि ऐसी परिस्थिति में कुंठित व्यक्ति किस प्रकार की प्रतिक्रिया व्यक्त करेगा।

c) रोबर्टस आत्मबोधन परीक्षण : बच्चों के लिये **(RATC)** –

- **RATC** का निर्माण सन् 1982 में मैकअर्थर तथा रोबर्टस ने किया था।
- इस परीक्षण में कुल 27 कार्ड होते हैं, जिनमें प्रत्येक कार्ड में कुछ बच्चे, अन्य बच्चों या कारकों के साथ अन्तःक्रिया करते हुये दिखाये जाते हैं।
- प्रयोज्य को प्रत्येक कार्ड को देखकर यह बताना होता है कि उस कार्ड के पात्र क्या कर रहे हैं अथवा क्या करेंगे।

तो प्रिय पाठकों, उपर्युक्त विवेचन के आधार पर आप समझ गये होंगे कि संरचना परीक्षण क्या है और किस प्रकार से इनको क्रियान्वित किया जाता है। इसके बाद अब हम चर्चा करते हैं। प्रक्षेपी विधियों में दी अगली विधि ''पूर्ति परीक्षण'' के विषय में।

iii) पूर्ति परीक्षण **(Completion Test)** –

प्रिय विद्यार्थियों ''पूर्ति परीक्षण'' का प्रक्षेपी विधियों में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। पूर्ति परीक्षण से संबंधित मुख्य बातें निम्नानुसार हैं–

- इस परीक्षण में प्रयोज्य को उद्दीपक अर्थात् वाक्य का एक हिस्सा दिखाया जाता है और भाग खाली होता है। इस खाली भाग की पूर्ति प्रयोज्य अपने अनुसार वाक्य बनाकर करता है।

- प्रयोज्य अधूरे वाक्य को जिस ढंग से पूरा करता है, परीक्षणकर्ता उस आधार पर उसके व्यक्तित्व का मापन करता है।
- सन् 1940 में रोहडे तथा हाइड्रोथ द्वारा तथा सन् 1950 में रौट्टर द्वारा पूर्ति परीक्षण का निर्माण किया गया।
- भारत में भी इस प्रकार के परीक्षणों का अनेक विद्वानों द्वारा निर्माण किया गया। जिनमें ''विश्वनाथ मुखर्जी'' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्रिय पाठकों, वाक्यपूर्ति परीक्षण के एकांश के कतिपय उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं। जैसे कि–
- मेरे माता–पिता मुझसे प्रायः .....
- मेरी इच्छा है कि .....
- मैं प्रायः सोचता रहता हूँ कि .....

इत्यादि।

iv) चयन या क्रम परीक्षण **(Choice or Ordering Test)** –

प्रिय पाठकों, प्रक्षेपी परीक्षणों की अन्य विधि चयन या क्रम परीक्षण है। इस प्रकार के परीक्षणों में प्रयोज्य को परीक्षण उद्दीपकों को एक विशिष्ट क्रम में सुव्यवस्थित करना होता है अथवा दिये गये परीक्षण उद्दीपकों में से कुछ उद्दीपकों को अपनी पसंद, इच्छा या अन्य किसी आधार पर चुनना होता है। परीक्षणकर्ता, प्रयोज्य द्वारा चुने गये उद्दीपकों या उन उद्दीपकों को प्रयोज्य द्वारा जिस क्रम में सुव्यवस्थित किया जाता है, के आधार पर उसके व्यक्तित्व के शीलगुणों का मापन करता है।

उद्दीपकों को एक खास क्रम में सुव्यवस्थित करने तथा बहुत सारे उद्दीपकों में से प्रयोज्य द्वारा कुछ उद्दीपकों का चयन करने के कारण ही इस परीक्षण का नाम क्रम या चयन परीक्षण रखा गया है।

इस श्रेणी में आने वाले कुछ प्रमुख परीक्षण निम्न हैं–

क. जोन्डी परीक्षण, 1947

ख. काहन टेस्ट ऑफ सिम्बोल अरेन्जमेन्ट, 1955

क. जोन्डी परीक्षण–

- इस परीक्षण का निर्माण सन् 1947 में जोन्डी द्वारा किया गया था।
- इसमें प्रयोज्य को अनेक फोटोग्राफ के छः समूह एक–एक करके दिखलाये जाते हैं।
- इन तस्वीरों में से प्रयोज्य को दो ऐसे तस्वीरें चुनने के लिये कहा जाता है, जिनको वह सबसे अधिक पसन्द करता है तथा दो तस्वीरें ऐसी चुननी होती हैं, जिन्हें वह सर्वाधिक नापसंद करता है।
- प्रयोज्य द्वारा चयनित तस्वीरों के आधार पर परीक्षणकर्ता द्वारा उसके व्यक्तित्व के शीलगुणों का मापन किया जाता है।

ख. काहन टेस्ट ऑफ सिम्बोल अरेन्जमेन्ट (1955)–

पाठकों, जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है कि इसका निर्माण महान् मनोवैज्ञानिक काहन द्वारा सन् 1955 में किया गया था।

- इस परीक्षण में प्रयोज्य को 16 प्लास्टिक से बनी हुयी वस्तुऐं दिखायी जाती है। जैसे कि– तारा, पशु, क्रास इत्यादि और इन्हें कई श्रेणियों में छाँटना होता है, जैसे घृणा, प्रेम, अच्छा, बुरा, जीवित मृत इत्यादि।
- इसके बाद प्रयोज्य से पूछा जाता है कि उसने जिन–जिन 16 वस्तुओं को देखा है। उन वस्तुओं से वह किस व्यक्ति, वस्तु या घटना को साहचर्चित कर रहा है अथवा वह वस्तु उसे जिसके समान दिखाई दे रही है।
- प्रयोज्य द्वारा जो अनुक्रिया व्यक्त की जाती है, उस आधार पर उसके व्यक्तित्व का मापन किया जाता है।

अभिव्यंजक परीक्षण **(Expressive Test)**–

विद्यार्थियों, जैसा कि इस परीक्षण के नाम से ही आपको स्पष्ट हो रहा होगा कि यह एक ऐसा प्रक्षेपी परीक्षण है, जिसमें प्रयोज्य को स्वयं को अभिव्यक्त करने का मौका दिया जाता है। अब प्रश्न यह उठता है कि व्यक्ति स्वयं को इस परीक्षण में किस प्रकार से अभिव्यक्त करता है अर्थात् अभिव्यक्ति का आधार क्या होता है?

इस परीक्षण में प्रयोज्य एक तस्वीर बनाता है। प्रयोज्य द्वारा जिस प्रकार की तस्वीर या चित्र बनाया जाता है, उस आधार पर उसके व्यक्तित्व के शीलगुणों के विषय में अनुमान लगाना संभव हो पाता है।

अभिव्यंजक परीक्षणों की श्रेणी में आने वाले कुछ प्रमुख परीक्षण निम्न हैं–

a) ड्रा–ए–परसन–परीक्षण **(Draw-a-person test or DAP Test)**

b) घर–पेड व्यक्ति परीक्षण **(House–Tree-Person Test or H-T-P)**

c) वेण्डर–गेस्टाल्ट–परीक्षण

a) डा–ए–परसन परीक्षण **(DAP Test)**–

- इसका निर्माण मैकोवर ने किया था।
- इस परीक्षण में प्रयोज्य को एक व्यक्ति का चित्र बनाने के लिये कहा जाता है।
- इसके बाद कभी–कभी आवश्यकतानुसार विपरीत लिंग के व्यक्ति, माँ, आत्मन् या परिवार का चित्र बनाने के लिये भी कहा जाता है।
- मै कोवर का मत है कि व्यक्ति जिस प्रकार से चित्र बनाता है, उसके आधार पर उसके अचेतन मन की अनेक प्रक्रियाओं के बारे में अनुमान लगाना संभव हो पाता है।

b) घर–पेड–व्यक्ति परीक्षण **(H-T-P test)**–

- इस परीक्षण का निर्माण प्रसिद्ध विद्वान बक द्वारा सन् 1948 में किया गया था।
- इसमें व्यक्ति को एक पेड़ तथा एक व्यक्ति का चित्र बनाना होता है।
- इसके बाद इन चित्रों का विवेचन एक साक्षात्कार में करना होता है।
- व्यक्ति द्वारा जिस ढंग से चित्र का वर्णन किया जाता है, उसके आधार पर उसके व्यक्तित्व के शीलगुणों का विश्लेषण किया जाता है।

c) वेण्डर–गेस्टाल्ट–परीक्षण–

इस परीक्षण का निर्माण सन् 1938 में लिऊरेटा वेण्डर द्वारा किया गया था।

- व्यक्ति के बौद्धिक ह्रास की मात्रा जानने के लिए इस परीक्षण का प्रयोग किया जाता है।
- इसमें 9 अत्यधिक साधारण चित्र होते हैं।
- इन चित्रों को देखकर पहले व्यक्ति को उनकी नकल उतारने के लिये कहा जाता है।
- इसके बाद उसके सामने से चित्र हटा लिये जाते हैं और उसे अपनी स्मृति के आधार पर ही उस चित्र को बनाना होता है।
- चित्र बनाते समय प्रयोज्य द्वारा प्रायः अनेक गलतियाँ होती हैं। जिनमें से कुछ प्रमुख निम्न हैं, जैसे कि–
  समन्वय में कमी
  पुनरावृत्ति
  चित्र घूर्णन इत्यादि।
- वेण्डर का मत है कि चित्र को बनाते समय की गई गलतियों के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का विश्लेषण किया जाता है।

12.4.6 प्रक्षेपी विधि की सीमायें–

प्रिय पाठकों, इस बात में कोई संदेह नहीं है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण के क्षेत्र में प्रक्षेपी विधियों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। और खासकर व्यक्तित्व के मापन में, फिर भी कुछ विद्वानों ने कतिपय आधारों पर प्रक्षेपी विधियों की आलोचना की है।

आइजेन्क ने निम्न आधारों पर प्रक्षेपण परीक्षण की आलोचना की है–

i) अर्थपूर्ण तथा परीक्षणीय सिद्धान्त का अभाव–

आइजेन्क का कहना है कि प्रक्षेपी विधियों का कोई परीक्षणीय तथा अर्थपूर्ण सिद्धान्त नहीं है। अतः इनके द्वारा जो व्यक्तित्व का मापन किया जाता है, उससे व्यक्तित्व के बारे में कोइ ठोस निष्कर्ष नहीं निकलता है।

ii) आत्मनिष्ठ प्राप्तांक लेखन–

प्रक्षेपण परीक्षण की आलोचना इस आधार पर भी की गई है कि इन परीक्षणों का प्राप्तांक लेखन एवं व्याख्या अत्यधिक आत्मनिष्ठ है, जिसके कारण तक ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का मापन यदि अलग–अलग व्यक्तियों द्वारा किया जाता है तो उस व्यक्तित्व के बारे में उनके निष्कर्षो में भी भिन्नता पाई जाती है, जो किसी भी प्रकार से अर्थपूर्ण नहीं होता है।

iii) उच्च वैधता का अभाव–

आलोचकों का यह भी मत है कि प्रक्षेपी विधियों में पर्याप्त वैधता का अभाव पाया जाता है।

iv) प्रक्षेपीय परीक्षण के सूचकों तथा शीलगुणों के बीच प्रत्याशित संबंध का वैज्ञानिक आधार नहीं–

आइजेन्क ने प्रक्षेपण परीक्षण की आलोचना इस आधार पर भी की है कि प्रक्षेपीय परीक्षण के सूचकों तथा शीलगुणों के बीच प्रत्याशित संबंध का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है।
इस प्रकार अनेक आधारों पर प्रक्षेपी विधियों की आलोचना की गई है।

पाठकों, उपर्युक्त विवरण से आप जान चुके हैं कि प्रक्षेपी विधि क्या है? प्रक्षेपण क्या हैं? प्रक्षेपी विधि में कौन–कौन से प्रमुख परीक्षण आते हैं और उनके क्रियान्वयन का तरीका क्या है। यद्यपि विद्वानों ने अनेक तर्क देकर प्रक्षेपी विधि की आलोचनायें की है तथापि मनोचिकित्सा की दृष्टि से व्यक्तित्व मापन में प्रक्षेपी विधियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

विद्यार्थियों, नीचे कुछ कथन दिये गये हैं। जो कथन सत्य है उनके आगे सही का तथा जो गलत हो, उनके सामने क्रास का निशान लगायें–

1. प्रक्षेपण शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग सिगमण्ड फ्रायड द्वारा किया गया था। ( )
2. रोशार्क परीक्षण, साहचर्य परीक्षण के अन्तर्गत आता है। ( )
3. रोशार्क परीक्षण, प्रक्षेपी विधि के अन्तर्गत आता है। ( )
4. रोशार्क परीक्षण में कुल 20 कार्ड होते हैं। ( )
5. टी.ए.टी. की गणना पूर्ति परीक्षण के अन्तर्गत की जाती है। ( )
6. टी.ए.टी. में कुल 30 कार्ड होते है। ( )
7. प्रक्षेपी परीक्षण द्वारा व्यक्तित्व के अनेक पहलुओं का मापन संभव हो पाता है। ( )
8. प्रक्षेपी परीक्षण में तुलनात्मक रूप से स्पष्ट उद्दीपकों का प्रयोग किया जाता है। ( )
9. प्रक्षेपी परीक्षण में व्यक्ति अपने द्वारा की गई अनुक्रियाओं का अर्थ नहीं समझता है। ( )
10. रोशाक परीक्षण का प्रतिपादन सन् 1920 में किया गया था। ( )

प्रिय विद्यार्थियों प्रक्षेपी विधियों के बाद, अब हमारी चच्रा का अगला विषय है–

12.5 सारांश–

प्रिय पाठकों, उपरोक्त विवेचन से आप प्रक्षेपण तथा प्रक्षेपी विधि के अर्थ, महत्व क्रियान्वयन तथा इनके गुण एवं दोषों को भली–भाँति समझ गये होंगे। व्यक्तित्व शीलगुणों को व्यापक ढंग से समझने तथा व्यक्तित्व संबंधी कठिनाइयों के मूल्यांकन एवं निराकरण में प्रक्षेपी विधियाँ अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। जैसा कि आप जान ही गये हैं कि प्रक्षेपी विधियों के भी संरचना, साहचर्य, पूर्ति इत्यादि के आधार पर अनेक भेद हैं। अतः रोशार्क परीक्षण टेट आदि का नाम व्यक्तित्व के मापन में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वस्तुनिष्ठ विधियों के समान ही प्रक्षेपी विधि में भी कुछ खामियाँ हैं। लेकिन फिर भी व्यक्तित्व मापन में इनके योगदान की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

12.6 शब्दावली–

प्रक्षेपण– अपनी इच्छाओं प्रेरणाओं एवं भावनाओं का दूसरों पर आरोपण करना।
प्रयोज्य– जिन पर प्रयोग किया जाता है।
उद्दीपक – जो अनुक्रिया करने के लिये उत्तेजित करे।
मनोवैज्ञानिक परीक्षण– एक मापक जिसके द्वारा किसी मानसिक योग्यता (बुद्धि, अभिवृत्ति, रचनात्मकता इत्यादि) का मात्रात्मक मापन किया जाता है।
साहचर्य– संबंध
अनुक्रिया– प्रतिक्रिया

12.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. असत्य
5. असत्य
6. असत्य
7. सत्य
8. असत्य
9. सत्य
10. असत्य

12.8 संन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, अरूण कुमार। (2006) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।
2. सुलेमान, मुहम्मद एवं तरन्नुम, रिजवाना। (2009) मनोविज्ञान में प्रयोग एवं परीक्षण। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।
3. सिंह, अरूण कुमार। (2006) व्यक्तित्व मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।
4. सिंह, अरूण कुमार। (2006) उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

12.9 निबंधात्मक प्रश्न

प्र.1 प्रक्षेपण शब्द से आप क्या समझते हैं? रोशार्क परीक्षण का विस्तृत वर्णन कीजिए।

प्र.2 प्रक्षेपी विधि के अर्थ को स्पष्ट करते हुये प्रमुख प्रक्षेपण परीक्षणों का वर्णन कीजिए।

प्र.3 संरचना परीक्षण से आप क्या समझते हैं? प्रमुख संरचना परीक्षणों पर प्रकाश डालिए।

इकाई – 13 स्मृति परिभाषा प्रकार स्मृति के उन्नयन की विधियॉ

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 स्मृति क्या है

13.4 परिभाषा

13.5 स्मृति के प्रकार

13.6 स्मृति के उन्नयन की विधियॉ

13.7 सारांश

13.8 शब्दावली

13.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

13.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

13.11 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना–

प्रिय विद्यार्थियों प्रस्तुत इकाई में हमारे अध्ययन का विषय है–''स्मृति'' यह एक ऐसा शब्द है जिससे हममें से प्रत्येंक व्यक्ति भलीभॉति परिचित है तथा जिसका प्रयोग हम अपने व्यवहारिक जीवन में प्रतिदिन करते है। स्मरण शक्ति का प्रयोग प्रत्येक प्राणी चाहे वह बच्चा हो, जवान हो, वृद्ध हो अथवा स्त्री या पुरूष हो अपनी–अपनी क्षमता के अनुसार करते है । वस्तुतः हमारी गत अनुभूतियॉ (Past experiences) को याद रखने की क्षमता होती है। उसे ही स्मृति (Memory) कहते है। ये स्मृतियां या यादें अच्छी–बुरी, सुखद का नाकारात्मक पक्ष विस्मरण है। अर्थात गत अनूभूतियों या घटनाओं को समय के साथ या स्मृति चिन्हों के कमजोर होने के कारण हम भूल जाते है। इसे ही विस्मरण (Forgetting) कहा जाता है। पाठकों , आपके मन में अनेक प्रकार के प्रश्नों का समाधान पाने की जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी। जैसे कि –

- स्मृति को विभिन्न विद्वनों ने किस प्रकार से परिभाषित किया है?
- स्मृति एक ही प्रकार की होती है अथवा इसके एक ये ज्यादा भेद होते है?
- हम सूचनाओं या घटनाओं को क्यों याद रख पाते है अर्थात स्मृति की प्रक्रिया क्या है?
- क्या ऐसे उपाय या विधियॉ है, जिनके माध्यम से हम अपनी समरण शक्ति को बढ़ा सकते है?

तो आइये इन्हीं जिज्ञासाओं का समाधान के लिये हम चर्चा करते है – स्मृति क्या है?

13.2 उद्देश्य–

जिज्ञासु पाठकों इन इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप –

- स्मृति क्या है? इसे स्पष्ट कर सकेंगे।
- स्मृति की विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
- स्मृति के विभिन्न भेदों का वर्णन कर सकेंगे।
- स्मृति को बढ़ाने की तकनीकों का विवेचन कर सकेंगे।

13.3 स्मृति क्या है

मनुष्य अपने दिन के जीवन में बहुत से व्यक्तियों, वस्तुओं तथा घटनाओं का सामना करता है। तथा अपने व्यक्तिगत अनुभव और अभ्यास द्वारा बहुत कुछ सीखने का प्रयास करता है। इनमें से कुछ अनूभव सुखद तथा दुःखद होते है जो उसके स्मृति पटल पर एक अमिट छाप छोड़ जाते है। किन्तु कुछ अनुभव कुछ समय पश्चात ही विस्मृत हो जाते है। जब हम कुछ सीखने का प्रयास करते हैं, तो हमारे स्नायु कोषों में संरचनात्मक परिवर्तन होते है, जिन्हें स्मृति चिन्ह कहते हैं। इन स्मृति चिन्हों के दुर्बल हो जाने या मिट जाने पर व्यक्ति अपने पूर्व अनुभव को बपनी वर्तमान चेतना में लाने में सफल नहीं हो पाता है, इसे ही विस्मरण कहते हैं। याद रह जाने वाले विषयों तथा अनुभवों की स्मृति समयावधि एक सेकण्ड से कम या सम्पूर्ण जीवनकाल भी हो सकती है। व्यक्ति की स्मृति का महत्व इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है–''स्मृति के सहारे ही व्यक्ति अपने आसपास की वस्तुओं तथा व्यक्तियों को पहचानता है। स्मृति की सहायता से ही वह अपने सीखें गये अनुभवों को जीवन के विभिन्न संघर्षो से जूझने में उपयोग कर पाता है। स्मृति के माध्यम से ही मनुष्य सृष्टि क समस्त प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। यदि स्मृति की क्षमता मनुष्य में न होती तो वास्तव में उसकी दशा बड़ी ही दयनीय होती।'' अतः स्पष्ट है कि स्मृति मानव जीवन का एक महत्वपूर्ण व उद्भव पहलू है, जिसके अभाव में मानवीय जीवन कष्टमय हो सकता है।

प्राणी में पायी जाने वाली इस अद्भुत शाक्ति को शक्ति सिद्धान्त एक मानसिक शक्ति के रूप में कल्पना करते हैं जिसे अभ्यास के द्वारा बढ़ाया जा सकता है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, चिंतन की भांति स्मृति को भी एक मानसिक प्रक्रिया मानते हैं।

13.4 स्मृति की परिभाषा–

स्मृति की परिभाषा मनोवैज्ञानिकों ने अनेक प्रकार से दी है–

1.स्मृति उस सीमा तक एक आदर्श पुनरावृत्ति है, जिस सीमा तक पूर्व अनुभवों को उसी रूप और क्रम में याद किया जाता है, जिस प्रकार उसे अनुभव किया गया था **(स्टाउट,1958)**

2.स्मृति वह संरचनात्मक तंत्र है, जिसके द्वारा हम सूचना को संचित करजे है। तथा उसे पुनः स्मरण में लाते हैं। **(बेरॉन,2003)**

3.पहले सीखी गई अनुक्रियाओं को वर्तमान समय में प्रदर्शन करने का अर्थ ही स्मृति है। **(हिलगार्ड और एटकिन्सन,1967)**

4.स्मृति व्यक्ति की वह योग्यता है, जिसके द्वारा वह पहले अधिगम की गई प्रक्रियाओं (अनुभव, धारणा) से सूचना एकल करता है और फिर इस सूचना को विशिष्ट उद्दीपकों के प्रत्युत्तर में पुनरुत्पादित करता है। **(आईजेन्क,1970)**

5.स्मृति का तात्पर्य है स्मृति की घटनाओं और अनुभवों की कल्पना करना और इस तथ्य को पहचान लेना िकवह अतीत के अनुभव हैं,से है। **(मैक्डूगल,1958)**

6.बुडवर्थ,1954 ने स्मृति को सीखी गई वस्तुओं का सीधा प्रयोग माना है।

7.स्मृति वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा जानकारी का कूटसंकेतन संचयन तथा पुनः प्राप्ति किया जाता है। **(स्पेन्सर ए. रैटस,2001)**

8.स्मृति एक सक्रिय तंत्र है जो जानकारी ग्रहण करता है,संचित करता है,व्यवस्थित करता है, परिवर्तित करता है तथा पुनः प्राप्त करता है। **(बैडली,1996)**

9.पुरानें अनुभवों अथवा अभ्यास को संचित करने तथा बाद में आवश्यकता पड़ने पर पुनरुत्पादित करने की मन की क्षमता स्मृति है। **(एस.के.मंगल,2002)**

10.कूटसंकेतन, संचयन तथा पुनः प्राप्ति द्वारा निश्चित अवधि तक जानकारी को धारण करना ही स्मृति हैं। **(जॉन डब्ल्यू सैन्ट्रॉक,2005)**

इन परिभाषाओं के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। कि–

- ❖ स्मृति एक मानसिक प्रक्रिया है।
- ❖ स्मृति से पूर्व शिक्षण के प्रभाव स्मृति चिन्हों के रुप में मस्तिष्क द्वारा धारित किये जाते है।
- ❖ स्मृति में पूर्व शिक्षण को वर्तमान या भविष्य में प्रत्याह्वान किया जाता है। अथवा उनकी प्रत्यभिज्ञा की जाती है।
- ❖ स्मृति में स्मृति चिन्हों के रुप में जानकारी का कूटसंकेतन किया जाता है, संचयन किया जाता है तथा आवश्यकता पड़ने पर उन्हें पुनः प्राप्त किया जाता है।

  स्पेन्सर ए.रैट्स ,2001 ने अपनी पुस्तक इशोन्सियल्स ऑफ साइकोलॉजी में स्मृति की तीन प्रक्रियाओं का वर्णन किया है।

  (1)कूटसंकेतन अथवा पंजीकरण(इनकोडिंग/रजिस्ट्रेशन)

  सूचना को ऐसे स्वरूप में परिवर्तित करना जिससे वह स्मृति में धारण की जा सके। **(डेनिसकून,2001)**

  कूटसंकेतन में वाह्य अंगों द्वारा प्राप्त वाह्य सूचनाओं को कोड वाह्य के रुप में परिवर्तित कर दिया जाता है। वाह्य भौतिक जगत से सूचना हमारे मस्तिष्क तक भौतिक तथा रासायनिक उत्प्रेरक (स्टीमुलस) के रुप में पहुँचती है। जब हम किसी भी सूचना का कूटसंकेतन करते हैं, तब हम इसे मनोवैज्ञानिक स्वरुपों में

परिवर्तित कर लेते हैं। जिसे मानसिक रुप से बार बार दोहराया जा सकें। इसके लिए हम दृश्य,श्रव्य तथा अर्थगत कूटलेखन का प्रयोग करते हैं।

(क) दृश्य कूटलेखन (विजुअल कोड)

दृश्य कूटलेखन में हम किसी भी सूचना को उसके स्वरुप अर्थात पिक्चर के आधार पर मानसिक रुप से प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं। कलाकार अपनी कृतियों का निर्माण दृश्य कूटलेखन के आधार पर ही करते हैं।

(ख) श्रव्य कूटलेखन(एकोस्टिक कोड)

श्रव्य कोड में हम सूचनाओं को उनके अर्थ के आधार पर अर्थगत कूटलेखन करने का प्रयास किया जाता है। अर्थगत कूटलेखन में सूचनाओं को एक्रोनिम के रुप में भी कूटलेखित किया जाता है। इनमें शब्दों की श्रेणी में से प्रत्येक का प्रथम शब्द लेकर कोड का निर्माण कर लिया जाता है। जैसे यूनाइटेड स्टेट ऑफ अमेरिका में प्रत्येक का प्रथम शब्द लेकर यू एस ए एक्रोनिम का निर्माण कर लेते हैं। यह प्रत्यक्षण भी अर्थ को व्यक्त करता है।

साधारण बोलचाल की भाषा में स्मृति चिन्हों का निर्माण होना ही कूटसंकेतन कहलाता है। इसमें प्रत्यक्षित वाह्य संवेद(स्टीमुली) हमारे तन्त्रिका तन्त्र में कोड के रुप में संचित होते है।

(2) संचयन अथवा धारणा (स्टोरेज अथवा रिटेन्शन)

संचयन सूचना संचरण की दूसरी अवस्था है। इस अवस्था में स्मृति में कूटसंकेतिक सूचनाओं को बाद में प्रयोग हेतु इकट्ठा करके रखा जाता है। पहली अवस्था में जिन स्मृति चिन्हों का निर्माण होता हैं, दूसरी अवस्था में उन्हें कुछ समय के लिए सुरक्षित रखते है। सूचनाओं को संचित करके रखने हेतु दो प्रक्रियाओं का उपयोग किया जाता है। प्रथम प्रक्रिया के अन्तर्गत किसी सूचना को जिसे हम याद रखना चाहते है, बार बार मानसिक रुप से दोहराते जाते हैं। इसे मेन्टिनेन्स रिहर्सल कहते हैं। दूसरी प्रक्रिया के अन्तर्गत हम किसी भी सूचना को पूर्व में ज्ञात सूचना के साथ जोड़ कर याद करते है। अतः स्पष्ट है कि संचयन के अन्तर्गत स्मृति में प्रवेश पा चुकी सूचनाओं को कुछ समय तक धारित करके रखा जाता है जिससे आवश्यकता पड़ने पर पुनः प्राप्त किया जा सकें।

(3) पुनः प्राप्ति अथवा स्मरण (रेट्राइवल अथवा रिमेम्बरिंग)

पुनः प्राप्ति प्रक्रिया के अन्तर्गत मस्तिष्क में संचित सूचनाओं को पुनः याद किया जाता है। संचित सूचनाओं को चेतन स्तर पर लाने हेतु इनकी खोज (लोकेट) तथा वापसी (रिटर्निंग) की जाती है। हमारे दैनिक जीवन में उपयोग होने वाली सूचनाएँ तथा अनुभव हमें असानी से याद आ जाते हैं किन्तु कुछ ऐसी सूचनाएँ घटनाएँ तथा अनुभव जिनका सामना हम कभी कभी करते हैं, कई बार इन्हें हम स्मरण कर भी नहीं पाते हैं। अतः स्पष्ट है कि पुनः प्राप्ति ऐसी प्रक्रिया हैं, जिसमें आवश्यकतानुसार व्यक्ति संचयन में मौजूद संचनाओं में से विशिष्ट सूचनाओं की खोज करता है। तथा उन तक पहुँचने का प्रयास करता है।

अतः स्पष्ट है कि स्मृति प्रक्रिया की तीन अवस्थाएँ होती हैं इन्हें एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझ सकते हैं।– एक छात्र को अध्यापक द्वारा भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद का नाम बतलाया जाता है, जो स्मृति चिन्ह के रुप में उसके तन्त्रिका तन्त्र में स्थित हो जाता है, यह कूटसंकेतन की प्रक्रिया हुई । छात्र

संचयन के अन्तर्गत मानसिक पुनरावृत्ति द्वारा राष्ट्रपति का नाम कुछ दिनों तक याद करके रखता है। दस दिनों बाद अध्यापक उस छात्र से भारत के प्रथम राष्ट्रपति का नाम पूछता है, अतः छात्र प्रत्याहन अर्थात स्मरण द्वारा राष्ट्रपति का नाम बताने का प्रयास करता है। इसे पुनः प्राप्ति (रेट्राइवल) कहा जाएगा। छात्र राष्ट्रपति का नाम बता सके ऐसा आवश्यक नहीं है। हो सकता है कि स्मृति चिन्हों के क्षेत्र के कारण वह राष्ट्रपति का बता सकने में समर्थ न भी हो सकें। इसका कारण छात्र को बताई गई जानकारी का कूटसंकेतन ठीक प्रकार से न किया जाना हो सकता हैं, परिणाम स्वरुप संचयन तथा पुनः प्राप्ति का प्रश्न ही नहीं उठता । ऐसी हालत में विस्मरण निश्चित है। उसी प्रकार यदि कूटसंकेतन किया गया है किन्तु संचयन नहीं किया गया है तो पुनः प्राप्ति नहीं होगी। यदि कूटसंकेतन तथा संचयन हो गया है किन्तु किसी कारण वश पुनःप्राप्ति नहीं हो पा रही है, तो इससे भी विस्मरण हो जाएगा। अतः स्पष्ट है कि स्मृति की इन तीनों का सीधा संबंध विस्मरण से है।

13.5 स्मृति के प्रकार

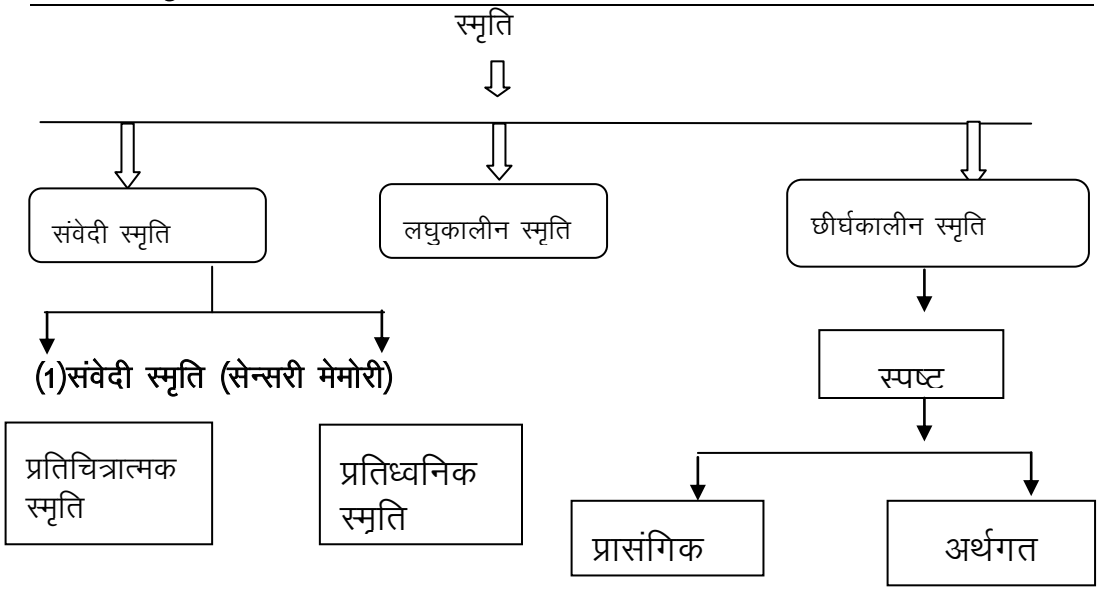

संवेदी स्मृति का तात्पर्य संवेदना ग्राही अंगों द्वारा किसी जानकारी को अत्याधिक कम समय तक याद रख पाने की क्षमता से है। संवेदी स्मृति में सूचनाएँ अधिकतम 4 सेकण्ड तक ही संचित रखी जा सकती है। संवेदी स्मृति में कूटसंकेतन न होने के कारण सूचनाएँ अपने यथार्थ स्वरुप में होती है। अधिकांश मनोवैज्ञानिक इसकी अवधि 1 सेकण्ड तक ही मानते है। **नीथ,1998** का कथन है कि संवेदी स्मृति में सूचनाएँ तभी तक संचित रहती है जब तक कि वे दूसरी स्मृति में संचालित न हो जाएं। सांवेदिक स्मृति मनुष्य की सभी ज्ञानेन्द्रियों से संबंधित होती है। दूसरे शब्दों में जितने प्रकार की ज्ञानेन्द्रियाँ होती है,उतने ही प्रकार की सांवेदिक स्मृतियां होती है। प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के क्षेत्र में प्रतिचित्रात्मक स्मृति तथा प्रतिध्वनिक स्मृति पर अध्ययन अधिक किये गये हैं। जब हम किसी स्थान पर अध्ययन अधिक किये गये हैं।जब हम किसी स्थान से होकर गुजरते हैं। तो वहाँ के विभिन्न दृश्य

और आवाजें अत्याधिक मात्रा में हमारी संवेदी स्मृति में संचित हो जाती हैं, किन्तु जब हम उन्हें चेतन स्तर पर लाने का प्रयास करते हैं तब हम इनमें से कुछ दृश्य व आवाजों को ही याद कर पाते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि हमारी ध्यान देने (एकाग्रता) की चयनात्मक क्षमता हमारी चेतना में बहुत सारी जानकारीयों को इकटठा हो जाने से रोकती है।

नाइस्सेर (1967) ने संवेदी स्मृति के दो प्रकारों का उल्लेख किया है, जिन्हें प्रतिचित्रात्मक स्मृति (इकोनिक मेमोरी) तथा प्रतिध्वनिक स्मृति (इकोइक स्मृति)कहते हैं।

(1)प्रतिचित्रात्मक स्मृति (आइकोनिक मेमोरी)

प्रतिचित्रात्मक स्मृति का तात्पर्य ऐसी स्मृति से है जिसमें दृश्य उद्दीपक के आँखों के सामने से हट जाने के बाद भी उसकी छवि या उसका प्रतिचित्र कुछ समय तक हमारे मानस पटल पर बना रहता है, जिससे आवश्यकतानुसार इन प्रतिचित्रों का स्मरण कर इन्हें अल्प कालिक स्मृति में ले जाया जा सके। विभिन्न प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध हो चुका है कि प्रतिचित्रात्मक स्मृति में सूचनाएँ अधिकतम एक सेकण्ड तक ही संचित रह पाती हैं।

(स्परलिंग,1960)

एक सेकण्ड में क्षय से पूर्व प्रतिचित्रात्मक स्मृति में 11 से 16 सूचनाएँ ही रह पाती हैं।

(एवरबैकतथास्परलिंग,1961;ईस्टस तथा टेलर,1966)

प्रतिचित्रात्मक स्मृति में बनने वाली प्रतिमा आइकन कहलाती हैं। इसको एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझ सकते है।–जब हम सिनेमा देखते है,वह अलग अलग दृश्यों की एक श्रेणी होती है,जो एक के बाद एक के क्रम में हमारे सामने उपस्थित होते हैं। जिनकी प्रतिमा आइकन के रुप में हमारी दृश्य में 1 सेकण्ड के लिए संचित होती जाती हैं अतः हम पूरी पिक्चर क्रमबद्ध रुप से देखते जाते हैं। ना कि अलग अलग।

प्रतिचित्रात्मक स्मृति के अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए विभिन्न स्मृति मनोवैज्ञानिकों ने अलग अलग प्रयोग किये हैं, इनमें **जॉर्ज स्परलिंग (1967)** का अध्ययन अधिक महत्वपूर्ण हैं। उसने प्रयोज्यों को एक स्क्रीन के सामने बिठाकर अपना पूरा ध्यान उस खाली स्क्रीन पर देने का निर्देश दिया फिर 12 अक्षरों को 3 पक्तियों व 4 कॉलम्स में व्यवस्थित करके .05 सेकण्ड के लिए स्क्रीन पर चमकाया, फिर प्रयोज्यों से देखे गये 12 अक्षरों को बताने के लिए कहा । प्रयोज्य 12 अक्षरों में से औसत 4 से 5 अक्षर ही बता पाये। स्परलिंग ने प्रश्न किया कि ध्यान का विस्तार इतना छोटा क्यों होता है? इसके दो कारण हो सकते हैं– प्रथम कारण है कि प्रयोज्य एक बार में 4–5 अक्षर ही देख सकता है, 12 अक्षरों की प्रतिमा बनाना काफी कठिन कार्य हैं। इसका कारण यह हो सकता है कि प्रयोज्य प्रतिमा पुरे 12 अक्षरो की बना लेते है।किन्तु बताते यमय विस्मृत हो जाने के कारण4–5 ही शेष रह जाते है प्रयोज्य से पूछे जाने पर उनका जवाब था कि उन्होने 12 अक्षरो की ही प्रतिमा संचित की थी, किन्तु बताते समय 4–5 ही शेष रहे बाकी विस्मृत हो गयें ।

डसका पता लगाने के लिये स्परलिंग ने आंशिक प्रयोग विधि का प्रयोग किया इसमें उसने प्रयाज्यो से 12 अक्षरो के स्यान पर अलग अलग पंक्तियां में उपस्थित अक्षर बताने के लिये कहा। प्रत्येक पंक्ति को उच्च,मध्यम तथा निम्न तारत्व

(पिच) की आवाजो के साथ सम्बन्धित कर दिया गया। प्रयोज्य इस बात से अनभिज्ञ थे कि किस तारत्व (पिच) की आवाज सुनाई देगी। उच्च तारत्व की आवाज होने पर प्रयोज्यो से ऊपरी पंक्ति में उपस्थित अक्षर तथा निम्न तारत्व की आवाज होने पर निम्न पंक्ति में उपस्थित अक्षर बताने के लिये कहा गया। परिणाम में देखा गया कि प्रयोज्यो ने प्रत्येक

पंक्ति में 3.3का औसत अर्थात 12 अक्षरो में 10(9.9) का औसत दिया जो पूर्व में प्राप्त 4–5 अक्षर से बहुत अधिक है। स्क्रीन पर अक्षर दिखाने के बाद सेकण्ड का विलम्ब करके जब आवाज प्रस्तुत की गई तब प्रयोज्यों की प्रतिक्रिया घटकर पूर्व के ही समान हो गई। स्पर्लिंग ने निष्कर्ष निकाला कि यद्यपि सम्पूर्ण जानकारी प्रतिचित्रात्मक स्मृति में रहती हैं किन्तु 1 सेकण्ड के भीतर ही इसका ह्रास हो जाता है। **लॉफफ्स,डंकन तथा गेहरिग(1992)** ने अपने प्रयोगों के आधार पर बताया है कि प्रतिचित्रात्मक स्मृति की आर्दश अवधि 1 सेकण्ड न होकर 0.3 सेकण्ड के नजदीक हैं।

सेकिट्ट (1975,1976) ने अपने प्रयोगात्मक अध्ययनों के आधार पर बताया कि प्रतिचित्रात्मक स्मृति का भण्डारण आँख की रेटिना में स्थित दण्डों में होता है। इस अध्ययन में यह भी बताया गया है। कि जब आँख के सामने से उद्दीपक हटा लिया जाता है। या हट जाता है, तो उद्दीपक हटने के बाद भी रेटिना के ये दण्ड सक्रीय रहते है। जिससे प्रतिचित्रात्मक स्मृति आँख की रेटिना पर कुछ क्षण तक बनी रहती है। लेकिन इस दिशा में **बैंकर्स तथा बार्बर(1977)** ने जो प्रयोगात्मक अध्ययन किये हैं, उनसे यह स्पष्ट हुआ है कि प्रतिचित्रात्मक स्मृति के भण्डारण में आँख की रेटिना में स्थित दण्ड के साथ साथ शंकु भी सक्रीय रहते हैं। इन्हीं शंकुओं के द्वारा उद्दीपक के रंग की जानकारी होती है। कुछ अन्य प्रयोगात्मक अध्ययनों से यह भी सक्रीय रहने के साथ साथ प्रयोज्य का केन्द्रीय नाड़ी संस्थान भी सक्रीय रहता है। विभिन्न प्रयोगात्मक अध्ययनों से यह भी सिद्ध हुआ है कि प्रतिचित्रात्मक स्मृति को अभ्यास के माध्यम से बढ़ाना संभव नहीं होता है।

(2) प्रतिध्वनिक स्मृति (इकोइक मेमोरी)

प्रतिध्वनिक स्मृति का तात्पर्य ऐसी स्मृति से हैं जिसमें ध्वनि उत्पन्न करने वाले उद्दीपक को हटा लेने के बाद भी उसका 'इको' व्यक्ति के मानस पर कुछ सेकण्ड तक बना रहता है। इसमें श्रवण उद्दीपक के समाप्त हो जाने के बाद भी व्यक्ति अल्प समय के लिए उसकी ध्वनि को अनुभव करता है। प्रतिध्वनिक स्मृति की भण्डार की वास्तविकता को सिद्ध करने के लिए दो प्रकार के साक्ष्य प्रस्तुत किये गये, जिनमें कुछ साक्ष्य प्रायोगिक है। तथा कुछ साक्ष्य वास्तविक जीवन में घटने वाली घटनाओं से लिये गये है।

इनमें से कुछ मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य इस प्रकार है।

हम अपनी प्रतिध्वनिक स्मृति के द्वारा ही किसी की बात का कुछ सेकण्ड पश्चात उत्तर देते है। हम कोई आवश्यक कार्य कर रहे है, हमारा मित्र हमसे कुछ पूछता है, उसकी बात को कुछ समय तक ना सुनकर फिर क्या कहते हुए उत्तर देते हैं। प्रतिध्वनिक स्मृतियाँ एक अन्य साधारण उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझ सकते है।– हमारा मित्र कुछ अंक बोलता जा रहा है और अचानक रुक जाता है, फिर हमसे अन्तिम चार अंक बताने के लिए कहता है। उत्तर देने के लिए हमें पुनः सने गये अंको को याद करना होगा। क्योंकि प्रतिध्वनिक स्मृति का समय कुछ ही सेकण्ड होता है, अतः यदि हमारे मित्र ने अंक बोलने के तुरन्त बाद , अन्तिम चार अंक बताने को कहा तो हम असानी से सही उत्तर देते हैं, किन्तु यदि वह अंक बोलने के कुछ सेकण्ड का विराम लकर फिर प्रश्न पूछता है तो हम सभी अंक नहीं बता पाते हैं

ब्राउन,2001

आइजेन्क तथा कीन(1995) ने प्रतिध्वनिक स्मृति की मानसिक 'प्ले बैक' की क्षमता को इस प्रकार एक उदाहरण के माध्यम से समझाया है। हमारा एक मित्र दुकान से खरीदी जाने वाली वस्तुओं की लिस्ट पढ़कर हमको सुना रहा है। अचानक हम उससे पूछते हैं। कि

आपने क्या कहा किन्तु वह उत्तर दे इसके पहले ही हमें उसके द्वारा उच्चारित वस्तु का नाम याद आ जाता है। हमारी यह मानसिक 'प्ले बैक' की क्षमता कि, किसी ने क्या कहा, प्रतिध्वनिक स्मृति पर निर्भर करती है।

नाइस्सेर (1967) ने वास्तविक जीवन के कुछ ऐसे उदाहरणों को प्रस्तुत किया है, जिनसे प्रतिध्वनिक स्मृति की वास्तविकता प्रमाणित होती हैं। व्यक्ति कभी कभी आदतन या समाजिक परिवेश से प्रभावित होकर अनेंक शब्दों का गलत उच्चारण करता है। उदाहरण के लिये अनेंक छात्र 'शहद' को सहद और श्याम को 'स्याम' कहते हैं। अध्यापक उच्चारण सुनकर कहता है कि श्याम कहो स्याम नहीं। यदि छात्र के प्रतिध्वनिक स्मृति भण्डार में श्याम की अनुगूँज न बनी रहे वह अपना उच्चारण नहीं सुधार सकता ।

इसी प्रकार कुछ प्रयोगात्मक साक्ष्य हैं जो प्रतिध्वनिक स्मृति की वास्तविक को सिद्ध करते हैं–

मासारो (1970) ने श्रवणपरक पृष्ठोन्मुखी आच्छादन प्रविधि का प्रयोग करके प्रतिध्वनिक स्मृति की अवधि निर्धारण का प्रयत्न किया। इस प्रयोग में प्रयोज्य को यह बताना था कि दो परीक्षण ध्वनियों मे से कौन सी ध्वनि पहले प्रस्तुत की गई है। प्रत्येक प्रभाव में 20 मिली सेकण्ड क लिए एक ध्वनि का प्रस्तुत किया गया और उसके बाद विभिन्न अन्तरालों के बाद एक आच्छादक ध्वनि को 20 मिली सेकण्ड से लेकर 250 मिली सेकण्ड तक विलम्बित किया गया तो प्रयोज्यों द्वारा सही स्तरों की पहचान की मात्रा बढती गई। किन्तु जब आच्छादक ध्वनि को 250 मिली सेकण्ड से ज्यादा देर करके प्रस्तुत किया गया, तो जाँच आवाज की पहचान की परिशुद्धता में कोई खास वृद्धि नहीं हुई। अतः भासारो के अध्ययन के अनुसार प्रतिध्वनिक स्मृति की संचयन अवधि 250 मिली सेकण्ड होती हैं। साथ ही यह मानना भी अनिवार्य हो जाता है कि परीक्षण स्वर के बाद से आच्छादक स्वर की प्रस्तुति के बीच परीक्षण स्वर की अनुगूँज प्रतिध्वनिक स्मृति में अवश्य बनी रहती होगी, अन्यथा प्रयोज्य परीक्षण स्वर की पहचान न कर पाते।

डार्विन तथा अन्य (1972) ने अपने प्रयोगात्मक अध्ययनो के आधार पर प्रतिध्वनिक स्मृति 2 से0 बताई है।

ट्रीजमैन (1971) ने अपने प्रयोग में प्रयोज्य के दाहिने कान में निर्देश सुनाया और उसे दोहराने के लिए कहा। प्रयोज्यों को मूल संदेश जितनी शीघ्रता से संभव हो,दुहराना था। इसी समय इनके बाये कान में भी एक संदेश पढ़ा जाता था। प्रयोज्यों को यह ज्ञात नहीं था कि दोनों कानों में प्रस्तुत किये गये संदेश एक ही थे प्रतिध्वनिक कान में दिये गये संदेश की तुलना अप्रतिध्वनिक कान से की गई दोनों संदेशों के तादात्म्य में आश्चर्य जनक बात यह प्राप्त हुई कि प्रयोज्य उन्हें सुनते ही अपने आप इस तादात्म्य पर टिप्पणी से लगते थे। स्वतन्त्र चर के रुप में दोनों कानों में मिलने वाले संदेश का विलम्ब था, जिस पर प्रयोज्य दोनों ध्वनियों का तादात्म्य करता था। प्राप्त निष्कर्ष में प्रतिध्वनिक स्मृति 1सेकण्ड से 10 सेकण्ड तक प्राप्त हुई है। किन्तु अधिकांश मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रतिध्वनिक स्मृति का समय 4 सेकण्ड माना गया है। इस दिशा में और अधिक अनुसंधान किये जाने की आवश्यकता है।

लु.विलियम्सन तथा कॉफमैन(1992) ने प्राइमरी ऑडीटरी कॉर्टेक्स में एक यर्थाथ क्षेत्र का पता लगाया है, जो प्रतिध्वनिक स्मृति का संचालन करता है।

(2) लघुकालीन स्मृति (शॉर्टटर्म मेमोरी)

लघुकालीन स्मृति का तात्पर्य ऐसी स्मृति से है जिसमें सूचना अत्यन्त अल्प समय के लिए संचित रहती हैं। जब हम संवेदी स्मृति में उपस्थित जानकारी पर ध्यान देते हैं अथवा दीर्धकालीन स्मृति में उपस्थित की पुनः प्राप्ति का प्रयास करते तब यह जानकारी अथवा सूचना लघुकालीन स्मृति में प्रवेश पा जाती है, जो अत्यधिक सीमित क्षमता के साथ इस जानकारी को अधिकतम 20 सेकण्ड तक संचित करके रख पाती हैं। क्योंकि लघुकालीन स्मृति का उपयोग संवेदी स्मृति अथवा दीर्घ कालीन स्मृति का उपयोग संवेदी स्मृति अथवा दीर्धकालीन स्मृति में उपस्थित जानकारी के आधार पर करते हैं, अतः

हल्म और रुडेन्रीज (1995) ने इसे कार्यकारी स्मृति कहा। वर्तमान में स्मृति मनोवैज्ञानिक लघुकालीन स्मृति तथा कार्य कारी स्मृति का प्रयोग अलग अलग करने लगे हैं।

लघुकालीन स्मृति को विलियम जेम्स ने प्राथमिक स्मृति का नाम दिया । इसमें प्रवेश पाने वाली सूचनाएँ कमजोर प्रकृति की होती हैं जो 20 से0 में ही भुला दी जाती हैं। इसे एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझ सकते हैं– हम अपने किसी परिचित मित्र के घर फोन करना चाहते हैं, टेलीफोन डायरेक्टरी से हम उसका नम्बर तब तक याद रखते हैं जब तक कि उसे डायल न करलें । नम्बर डायल कर लेने वे तुरन्त बाद ही इसे भुला दिया जाता हैं।

चैपलिन(1975) के अनुसार ''अल्प कालीन स्मृति उसे कहते हैं, जिसका सत्ताकाल छोटा होता है। और जिसकी क्षमता सीमित होती हैं।''

रैबर एवं रैबर(2001) के अनुसार ''अल्पकालीन स्मृति की क्षमता अपेक्षाकृत लघुकालीन स्मृति में सूचनाएँ प्रायः ध्वनि कोड के रुप में ही संचित होती हैं किन्तु एच.सी. एलिस(1987) का कथन है कि लघुकालीन स्मृति में सूचनाएँ तीन कोड्स के रुप में संचित होती हैं–

(1) दृश्यकूट लेखन(विजुअल कोड)

(2) श्रव्य कूटलेखन (एकस्टिक कोड)

(3) अर्थगत कूटलेखन (सीमेन्टिक कोड)

कोनरेड (1962) का कथन है कि लघुकालीन स्मृति में दृश्य रुप में उपस्थित सूचनाओं का कूटलेखन उनकी आवाज के आधार पर किया जाता हैं इसको एक प्रयोग के आधार पर सिद्ध किया गया जिसमें प्रयोज्यों को 6 अक्षरों की एक श्रेणी दिखाई गई जिसे दिखाई गई जिसे देखने के तुरन्त बाद उन्हें वे अक्षर बताने होते थे। परिणाम में देखा गया कि प्रयोज्य एक जैसी आवाज वाले अक्षरों के प्रति कन्फ्यूज थें जैसे Q व O

लघुकालीन स्मृति की संचयन क्षमता –

संवेदी स्मृति तथा दीर्घ कालीन स्मृति की तुलना में लघुकालीन स्मृति की संचयन क्षमता अपेक्षाकृत कम होती हैं। जैसे हम सात अक्षरों (6,3,9,1,4,7,5) तथा ग्यारह अक्षरों (5,8,1,9,7,6,2,6,8,5) को पढ़े फिर उन्हें लिखने का प्रयास करें , तो हम सात अक्षरों वाली श्रेणी को असानी से लिख सकते हैं।

जॉर्ज मिलर (1956) ने लघुकालीन स्मृति में संचयन हेतु मैजिकल नम्बर 7±2 का सूत्र दिया है अर्थात् लघुकालीन स्मृति में संचयन की क्षमता 5 से 9 के बीच हैं।

मिलर ने इसके साथ ही चुंकिंग की प्रक्रिया का भी उल्लेख किया हैं। इस प्रक्रिया के द्वारा एक समय में नौ से भी अधिक अलग अलग सूचनाओं को संचित किया जा सकता है।

चुंकिंग एक ऐसी प्रक्रिया है। जिसमें छोटी छोटी सूचनाओं को बड़ी इकाइयों में समूहन करके याद करते हैं। इन इकाईयों को चुंक प्रत्याहान कहा जाता है। जिसमें वैसी सूचनाएँ होती हैं जो आपस में संबंधित होती हैं तथा जिन्हें अर्थपूर्ण इकाई में एक साथ समूहन किया जा सकता हैं।

लघुकालीन स्मृति में चुंकिंग के प्रभाव को समझने हेतु मान लिया जाए कि हम 12 अक्षरों की श्रेणी CNNIBMMTVUSA को पढ़ते हैं फिर उसे दोहराने का प्रयास करते हैं तो हम पूरी श्रेणी दोहरा नहीं पाते किन्तु यदि इन्हीं 12 अक्षरों को चुंकिंग प्रक्रिया द्वारा कोटिबद्ध कर दिया जाय तो CNN IBM MTV USA हम इसे पढ़कर आसानी से दोहरा लेते हैं। इसका कारण यह है कि हमने अपनी लघुकालीन स्मृति में 12 अक्षरा संचित न करके 4 चुंक संचित किये। **(ब्राउन 1970)** इसके साथ ही एक अन्य कारण यह है कि जिन से हम षब्दों पूर्व परिचित होते है उनकी लघुकालीन स्मृति अपरिचित षब्दों से ज्यादा होती हैं **बैडली,1994** का कथन है कि चुंकिंग की प्रक्रिया द्वारा लघुकालीन स्मृति की संचयन क्षमता बढ़ाई जा सकती हैं। अभ्यास द्वारा हम चुंक का आकार बढ़ा सकते हैं जिससे लघुकालीन स्मृति की संचयन क्षमता में वृद्धि होती हैं।

लघुकालीन स्मृति का ह्रास – विभिन्न प्रोयोगिक अध्ययनों से सिद्ध हुआ है कि लघुकालीन स्मृति का ह्रास तीव्रता से होता हैं। पीटरसन तथा पीटरसन (1959) ने अपने प्रायोगिक अध्ययनों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि अधिगम के 12 सेकण्ड में ही अधिगम की गई सामग्री का 75 प्रतिषत ह्रास हो जाता है। 18 सेकण्ड पष्चात यह ह्रास 90 प्रतिषत हो जाता है। अतः स्पश्ट है कि अधिगम के तुरन्त बाद विस्मरण तीव्र गति से होता है या धारणा में ह्रास तीव्र गति से होता है।

मरडॉक (1961) ने अप्लकालीन स्मृति पर प्रत्युत्तर एकीकरण के प्रभाव का सफल अध्ययन किया है। मरडॉक ने तीन प्रकार की वाचिक साम्रगी को लेकर अपना प्रयोग किया अपने प्रयोग की एक दषा में एक त्रिपद, दूसरी दषा में तीन अंग्रेजी के त्रिपद एवं तीसरी दषा में एक अंग्रेजी के षब्द का प्रयोग किया। परिणाम प्रथम दो दशओं के लिए पीटरसन एवं पीटरसन की भाँति ही प्राप्त हुए जबकि एक शब्द का स्मृति ह्रास न के बराबर हुआ । अतः स्पष्ट है कि जैसे –2 समय बीतता है ,स्मृति चिन्हों का क्षय हो जाने के कारण ,धीरे–धीरे लघुकालीन स्मृति का ह्रास हो जाता है।

कुछ अन्य मनोवैज्ञानिकों ने माना है कि लघुकालीन स्मृति में ह्रास अग्रलक्षी अवरोध proactive inhibition) तथा अवरोध retroactive inhibition के कारण भी होता हैं।

अग्रलक्षी अवरोध में पहले सीखे गये एकांश नये एकांशों की धारणा में बाधा उत्पन्न करते है, इसके कारण विस्मरण उत्पन्न होता है। पृष्ठोन्मुख अवरोध में नये सीखे गये एकांश पूर्व में सीखने गये एकांशों की धारणा में बाधा में बाधा उत्पन्न करते है और विस्मरण उत्पन्न करते हैं ।अग्रलक्षी उवरोध के प्रभाव की **केपोल एवं अंडरवुड (1962) लोयस (1964) एवं वाइकेन्स (1970)** ने अपने–अपने प्रयोगों के आधार पर सम्पुष्ट किया है।

पृष्ठोन्मुख अवरोध के प्रभाव को **वाइकेलग्रेन (1965)** ने अपने प्रयोगों के आधार पर सत्यसिद्ध किया है। राइटमैन (1971) ने अपने प्रयोगों के आधार पर बताया कि लघुकालीन स्मृति में विस्मरण ह्रास एवं बाधा दोनों के कारण उत्पन्न हेाता है। **बाफ एवं नॉरमैन** ने विस्थापन (डिके) को (इन्टरफेरेन्स) लघुकालीन स्मृति के विस्मरण का कारण माना ।

संपोशण रिहर्सल (मोन्टिनेन्स रिहर्सल)के द्वारा लघुकालीन स्मृति की अवधि को बढ़ाया जा सकता है। संपोषाण रिहर्सल से तात्पर्य मानसिक रूप से किसी सूचना को दोहराते रहने से है ,जब तक कि उस सूचना का उपयोग न हो जाये । **ल्वायड तथा मार्गरेट पीटरसन (1959)** के अनुसार बिना रिहर्सल की हुई सूचना 20 सेकण्ड में लघुकालीन स्मृति से पूर्णतः समाप्त हेा जाती है।

3. दीर्घकालीन स्मृति (लॉग टर्म मेमोरी) –दीर्घ कालीन स्मृति से तात्पर्य ऐसी स्मृति से है जो लम्बे समय तक ठहरती है।

मॉर्गन एवं किंग (1977) के अनुसार –'' दीर्घकालीन स्मरण उसे कहते हैं, जिसमें सामग्री घण्टों ,दिनों ,वर्शों या एक जीवन काल के लिए संचित रहती है ।'' अपनी उच्चतम क्रियाविधि में दीर्धकालीन स्मृति में अपरिमित मात्रा में जानकारियॉ एकत्र रहती है ,जैसे कोई विद्वान किसी प्रसिद्ध ग्रन्थ के सभी शब्दों को याद रखता है तथा पेज नं. बताये जाने पर ,उस पेज में क्या लिखा है, अक्षरशः बता देता है, **जेनेवा ,स्विटरजलैंड** के **पियरे माउशॉन** सत्रह जिल्दों वाली फ्रेंच इन्साइक्लोपीडिया के सभी 18,000,000 शब्द याद कर लिये थे। शतरंज के जादूगर अमेरिका निवासी पॉल मर्फी न 535 पृश्ठों वाले लोसिआना सिविल कोड को रट डाला था और अपनी कानून की परीक्षा 19 वर्श की आयु में ही पास कर ली थी। यह दीर्घकालीन स्मृति का ही परिणाम है। विलियम जेम्स ने दीर्घकालीन स्मृति को द्वितीय स्मृति (सेकण्डरी मेमोरी) कहा है।

दीर्घकालीन स्मृति का संचालन कूटसंकेतन (इनकोडिंग)संचयन (स्टोरेज) तथा पुनः प्राप्ति (रेट्राइवल) प्रक्रियाओं के द्वारा होता है।

दीर्घकालीन स्मृति में सूचनाओं को कोड करने तथ्ता संचित करने हेतु विस्तृत रिहर्सल (इलेबोरेटिव रिहर्सल)अधिक उपयोगी है जबकि लघुकालीन स्मृति में संचय हेतु संपोषण रिहर्सल का प्रयोग किया जाता है। क्या कारण है कि हम प्रतिदिन सामने आने वाली सूचना को भी याद रख पाने में असफल हेा जाते है, इसका मुख्य कारण संपोषण रिहर्सल तथा विस्तृत रिहर्सल के मध्य का अन्तर है। संपोषण रिहर्सल में हम किसी भी सूचना की ऊपरी जानकारी रखते हैं ,जबकि विस्तृति रिहर्सल में हम किसी भी सूचना को अपने शब्दों में व्यवस्थित करके ,अधिक महत्वपूर्ण बनाकर याद कर करते है, साथ ही इसे पूर्ण में ज्ञात किसी सूचना के साथ जोड़ देते है। जिससे वह लम्बे समय तक दीर्घकालीन स्मृति में बनी रहती है तथा आवश्यकता पड़ने पर आसानी से हम उसे पुनः प्राप्त कर सकते हैं।

दीर्घकालीन स्मृति के प्रकार

एण्डेल टुलविंग (1985) ने स्मृति को दो भागों में विभाजित किया हैं–

1. अघोषणात्मक स्मृति या प्रक्रियात्मक स्मृति
2. घोषणात्मक स्मृति

1. **अघोषणात्मक स्मृति या प्रक्रियात्मक स्मृति** :– (नॉन डिम्लेरेटिव अथवा प्रोसीज्युरल मेमोरी) अघोषणात्मक स्मृति को अस्पश्ट स्मृति भी कहा जाता है। इस पद का प्रतिपादन स्कैक्टर (1987) द्वारा किया गया । प्रक्रियात्मक स्मृति में पेशीय कौशल ,आदत तथा क्लासिकी अनुबन्धन द्वारा सीखी गई अनुक्रियाऍ सम्मिलित होती है। ,जैसे टाइपिंग करना , किसी पजल का समाधान करना , गोल्फ खेलना आदि । प्रक्रियात्मक स्मृति का क्षेत्र मस्तिष्क को निचले भाग होता है, इसमें सेरीबेलम मुख्य है।

2. **घोषणात्मक स्मृति** :–(डिम्लेरेटिव मेमोरी) घोषणात्मक स्मृति को स्पश्ट स्मृति भी कहा जाता है। घोषणात्मक स्मृति में तथ्य पूर्ण (एक्स्प्लीसिट मेमोरी) जानकारियॉ जैसे – नाम ,चेहरे ,,षब्द ,तारीखें तथा विचार संचित रहते है। घोषणात्मक स्मृति को शब्दों से प्रतीकों के रूप में व्यक्त किया जाता है। एग्नीजिया बीमारी से ग्रसित व्यक्ति में घोषणात्मक स्मृति का अभाव होता है । **नीवर्ग तथा टुलविंग (1996)** ने घोषणात्मक स्मृति को दो भागों में विभाजित किया हैं।

(क) प्रासंगिक स्मृति (एपीसोडिक मेमोरी)

(ख) अर्थगत स्मृति (सीमैन्टिक मेमोरी)

(क) प्रासंगिक स्मृति (एपीसोडिक मेमोरी) :–प्रासंगिक स्मृति में व्यक्ति के आत्म संबंधी या व्यक्तिगत जीवन से संबंधित अनुभव शामिल होते है। इसमें दिन प्रतिदिन, वर्श प्रति वर्ष घटित घटनाऍ संचित रहती है। प्रासंगिक स्मृति में संचित सूचनाओं के कुछ उदाहरण इस प्रकार है –

1. क्या हमें अपना सातवॉ जन्मदिन याद हैं।
2. एक दुर्घटना जो चार वर्श की उम्र में हमारे साथ घटी ।
3. हमारे स्कूल का प्रथम दिन ।
4. हमने एक हफते पहले क्या किया ।

प्रासंगिक स्मृति को बहुत से कारक प्रभावित करते हैं , इनमें सबसे महत्वपूर्ण कारक संवेग है। जब कोई घटना घटी तब किस प्रकार का संवेग उत्पन्न हुआ । संवेग प्रासंगिक स्मृति को मजबूत बनाते है। प्रासंगिक स्मृति का महत्वपूर्ण क्षेत्र मस्तिष्क में स्थित हिप्पोकैम्पस है।

(ख) अर्थगत स्मृति (सीमेन्टिक मेमोरी) :– अर्थगत स्मृति से तात्पर्य ऐसी स्मृति से होता है , जिसमें शब्दों ,सम्प्रत्ययों ,तथ्यों एवं प्रतीकों के अर्थ से संबंधित सूचनाऍ संचित होती है। अतः अर्थगत स्मृति शब्दों ,संप्रत्ययों ,तथ्यों एवं प्रतीकों के बारे में एक संगठित ज्ञान है। जैसे दिनों के नाम , महिनों के नाम , गणित के सूत्र , शब्द , भाषाऍ ,जानवरों केनाम तथा अन्य तथ्यपूर्ण जानकारियॉ अर्थगत स्मृति के अन्तर्गत आती है। वैज्ञानिकों में अर्थगत स्मृति के मस्तिष्क के केन्द्र को लेकर मतभेद हैः कुछ का कथन है कि इसका मुख्य केन्द्र हिप्पोकैम्पस तथा संबंधित क्षेत्र है जबकि कुछ अन्य वैज्ञानिकों का कथन है कि अर्थगत स्मृति का केन्द्र पूरा मस्तिष्क है।

प्रासंगिक स्मृति तथा अर्थगत स्मृति में निम्नांकित अन्तर है –

1. प्रासंगिक स्मृति का संबंध कब से होता हैं ,जबकि अर्थगत स्मृति का संबंध क्यों , कैसे आदि से होता हैं।
2. प्रासंगिक स्मृति में विस्मरण अर्थगत स्मृति की अपेक्षा तेजी से होता है।
3. प्रासंगिक स्मृति में नये अनुभव बाधा उत्पन्न करते हैं जबकि अर्थगत स्मृति में ऐसा बहुत कम होता है।
4. प्रासंगिक स्मृति प्रायः उसी से मिलता जुलता प्रसंग आने पर उत्पन्न होती है। जबकि अर्थगत स्मृति के लिए परोक्ष संकेत ही पर्याप्त है।
5. **Schochter 1996** नक अपने अध्ययन में पाया कि सर्जिक्स ऑपरेशन या कुछ विशेष रोग हो जाने से , मस्तिष्क का कुछ भाग क्षतिग्रस्त हो जाने के बाद यह देखा गया कि ऐसे रोगियों की अर्थगत स्मृति बिल्कुल भी प्रभावित नहीं थी ,

जबकि प्रासंगिक स्मृति बिल्कुल समाप्त थी । कुछ में स्थिति इसके विपरित देखी गई ।

इससे स्पष्ट है कि प्रासंगिक स्मृति तथा अर्थगति स्मृति में स्पष्ट अन्तर का आधार जैविक भी होता है।

13.6 स्मृति के उन्नयन की विधियाँ

स्मृति उन्नयन से तात्पर्य अच्छी स्मृति की विशेषताओं को यथासंभव विकसित करने से हैं। मनोवैज्ञानिकों के सामने यह समस्या रहती है कि वे व्यक्तियों की स्मृति शक्ति को कैसे उन्नत बनाये ताकि उनकी स्मृति अच्छी से अच्छी हो सकें ।

वुडरो (1927) ने स्मृति प्रशिक्षण या स्मृति को उन्नत बनाने से संबंधित उपायों की प्रभावशीलता दिखलाने के लिए एक प्रयोग किया । इस प्रयोग में दो समूह थे– प्रयोगात्मक समूह तथा नियंत्रित समूह । दोनों को एक समान विषय तीन घण्टे तक सीखने के लिए दिया गया। इसके अलावा प्रयोगात्मक समूह को अपनी स्मृति में सुधार लाने के सात तरीके बताए गये तथा नियंत्रित समूह को उन तरीकों के बारे में कुछ नहीं कहा गया । इसके बाद इन दोनों समूहों की स्मृति की जॉच की गई और परिणाम में पाया गया कि प्रयोगात्मक समूह की स्मृति 36 प्रतिशत पहले से उन्नत हो गई थी , जंबकि नियंत्रित समूह की स्मृति मात्र 4.5 प्रतिशत ही उन्नत हो गई थी । वुडरो द्वारा स्मृति को उन्नत बनाने के वे सात तरीके निम्न है–

1. यथासंभव पूर्ण विधि (होलमेथड) और विराम विधि (डिस्ट्रीब्यूटेड) से सीखना चाहिए ।
2. सीखते समया अपने आपकों जॉचते रहना चाहिए ,अर्थात् अपनी धारणा की जॉच करते रहनी चाहिए।
3. विशय के सदृश अंकों को संगठित करके तथा उनमें सामंजस्य स्थापित करके सीखना चाहिए।
4. विषय को उसका अर्थ समझकर सीखना चाहिए।
5. सीखते समय सतर्कतां तथा मानसिक एकाग्रता बनाए रखना चाहिए ।
6. अपनी स्मृति षक्ति पर विश्वास करना चाहिए।
7. गौण साहचर्यों (सेकण्डरी एसोसिएषन) का प्रयोग करना चाहिए।

स्मृति प्रशिक्षण के लिए

वुडरो द्वारा दिये गये सात सुझावों के अलावा भी आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने कुछ विशेष प्रविधियों का वर्णन किया है , जिनके सहारे स्मृति को उन्नत बनाया जा सकतां है। इनमें से दो अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

1. प्रभावी अध्ययन आदतों का उपयोग कारके
2. स्मृति, सहायक प्रविधियों का उपयोग करके

1. प्रभावी अध्ययन आदतों का उपयोग कारके :– (यूजिंग इफेक्टिव स्टडी हैबिट्स) प्रभावी अध्ययन आदतों का उपयोग ,सफलतम् विद्यार्थियों की मुख्य विशेषता रही है। एक जैसी स्मृति क्षमता वाले दो विद्यार्थियों में से एक विद्यार्थी अच्छी अध्ययन आदतों का उपयोग करके विद्यालय में श्रेष्ठ अंक प्राप्त करता है **(सैन्गुइ –1995)** अच्छी अध्ययन आदतों का

उपयोग करने के लिए सबसे पहले हमें अच्छी समय –सारणी का निर्धारण करना चाहिए जिसका उपयोग करके हम कम समय में ज्यादा से ज्यादा विषय याद कर सकें । समय –सारणी में अध्ययन करने का समय लिखते समय ऐसे टाइम का निर्धारणर करना चाहिए ,जब हम मानसिक व शरीरिक रूप से अत्यधिक तरोताजा महसूस करते हों ,यह समय प्रातः काल का समय हेा सकता है। या देर रात्रि का समय हो सकता है। अथवा अन्य कोई भी समय हो सकता है। इसके साथ ही एक अन्य बात ध्यान रखनी चाहिए कि हम अध्ययन हेतु एक शान्तिपूर्ण तथा आरामदायक स्थान का चयन करें ,जहाँ ज्यादा शोरगुल ना होता हो तथा जहाँ पर ज्यादा लोगों का आना जाना ना हेा ।

इसके साथ ही कुछ अन्य अध्ययन आदतों सें संबंधित विधियाँ इस प्रकार है–

(क) एस क्यू थ्री आर विधि (S Q 3 R METHOD) इस विधि का विकास **(रॉबिन्सन 1970**) द्वारा किया गया है। इस विधि का मुख्य उददेष्य पाठ्यपुस्तक की सामग्रियों का छात्रों द्वारा अध्ययन करने तथा स्मरण करने की क्षमता को बढ़ाना है। इस विधि का नाम करण इसकी पाँच अवस्थाओं के प्रथम अक्षरों को मिला कर किया गया है।

(1) survey
(2) Question
(3) Read
(4)Recite
(5)Review

(1) survey . इस अवस्था में पाठ की विषय सूची का व्यक्ति अवलोकन करता है, पाठ के मुख्य शीर्षकों व चित्रों को ध्यान से देखता है तथा अन्त में दिये गये अध्ययन सारांशों को पढ़कर अध्ययन में सम्मिलित किये गये, प्रमुख सामग्रियों के बारे में अनुमान लगाया है।

(2) Question – इस अवस्था के अन्तर्गत व्यक्ति अध्याय के मुख्य शीर्षक व अन्य उप शीर्षकों के नाम पढ़कर प्रश्नों का निर्माण कर लेता है जैसे यदि पाठ का शीर्षक है , बुद्धि तथा चिन्तन तो छात्र इसे प्रश्न के रूप में बदल देता है, बुद्धि तथा चिन्तन एक दूसरे से किस प्रकार संबंधित है ? देता जाता है।

(3) Read – तीसरी अवस्था के अन्तर्गत छात्र अध्याय के अन्तर्गत दी गई अध्ययन सामग्री को ध्यानपूर्वक पढ़ना प्रारम्भ करता है। साथ ही मुख्य शब्दों तथा वाक्यों को रेखांकित भी करता जाता है। प्रत्येक अनुच्छेद को पढ़ने के साथ वह अपने द्वारा निर्मित प्रश्नों के उत्तर भी ढूँढता जाता है । अध्ययन पढ़ने के क्रम में यदि छात्र बोल बोलकर पढ़ता है तो वह ज्यादा समय तक पउठ को याद रख पाता है । इसमें **(गैदर कोल तथा कॉन्वे 1988**) द्वारा किया गया प्रयोग अति महत्वपूर्ण है। इस प्रयोग में देखा गया कि वे छात्र जो पाठ को बोल बोलकर पढ़ते हैं ।उन छात्रों की तुलना में जो पाठा को शान्त होकर पढ़ते हैं या दूसरों को पढ़ाते हुए सुनकर याद करते हैं । पाठ को ज्यादा समय तक याद रख पाते हैं। अतः पाठ पढ़ते समय हमें प्रत्येक पंक्ति व शब्द को बोलकर पढ़ना चाहिए ।

(4) Recite. इस अवस्था के अन्तर्गत छात्र एक अनुच्छेद पूरा पढ़ने के पश्चात् उसके मुख्य सम्प्रत्यय एवं विचारों का मन ही मन मनन करता है जिससे उसे अपने ज्ञान

की रिक्तियों का तो पता चलता ही है। साथ ही साथ वह अपनी स्मृति में पाठ को आसानी से संगठित भी कर पाता है। वह तब तक आगे नहीं बढ़ता जब तक कि वह पढ़े गये अनुच्छेद का भली भाँति मन ही मन मनन ना कर लें

(5) Review – इस अवस्था के अन्तर्गत छात्र पढ़े गये अध्याय की जाँच व उसकी समीक्षा एक निश्चित अवधि (साप्ताहिक या मासिक) में करता रहता है। विभिन्न तरीकों से प्रष्नों निर्माण करके अपना जाँच करता है तथा उत्तर ढूँढता है।

उत्तर देने में असमर्थ पाये जाने पर पुनः उस अध्ययन को पढ़ता है तथा उपरोक्त वर्णित सभी अवस्थाओं का उपयोग करता हैं। विभिन्न शोध अध्ययनों में एक क्यू थ्री आर विधि कॉलेज जाने वाले विद्यार्थियों पर (मार्टिन 1985) तथा प्राथमिक स्कूल के विद्यार्थियों (डार्च, कैरनिन तथा कैभी ,1986) पर प्रभावी रही है।

(ख) विस्तृत रिहर्सल (इलेबोरेटिव रिहर्सल) :– विस्तृत रिहर्सल का उपयोग सूचना का कूटसंकेतन करने तथा संचयन करने में किया जाता है। इसमें छात्र वर्तमान में पढ़े गये अध्ययन को पूर्व में पढ़े गये किसी अध्याय के साथ जोड़ देता है तथा पढ़े गये पाठ की अपने शब्दों में नवीन व्याख्या करता है। इससे वह पाठ को आसानी सके ज्यादा समय तक याद रख पाता है। **फ्लैनेगन तथा ब्लिक (1989)** ने अपने प्रयोग में छात्रों के दो समूह लिए एक समूह को कुछ अन्फेमिलियर टर्म्स तथा परिभाषाएँ संपोषण रिहर्सल (मेन्टिनेन्स रिहर्सल) द्वारा याद रखने को कहा गया तथा दूसरे समूह को यही अन्फेमिलियर टर्म्स तथा परिभाषाएँ विस्तृत रिहर्सल (इलेबोरेटिव रिहर्सल) द्वारा याद करवाई गई । एक सप्ताह पश्चात् दूसरे समूह जिसने विस्तृत रिहर्सल का प्रयोग किया , परिभाषाओं व टर्म्स को ,संपोषण रिहर्सल करने वाले समूह की तुलना में ज्यादा अच्छे से सुना पाया प्राप्त परिणाम से विस्तृत रिहर्सल की उपयोगिता स्पष्ट होती हैं ।

(ग) आधिक्य सीखना (ओवर लर्निंग) :– किसी विषय या पाठ को जब पूरी तरह से सीख लेने के बाद भी सीखने के लिए अभ्यास जारी रखा जाता है। ,तो इसे आधिवन्य सीखना कहा जाता है। **ड्रिकेल , विलिस तथा कूपर (1992)** द्वारा किये गये शोध अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ है ,कि आधिवन्य सीखने के अभ्यास द्वारा पाठ को याद रख पाने की क्षमता में सार्थक रूप से वृद्धि होती है। आधिवन्य सीखने के अभ्यास द्वारा छात्र में इस विश्वास की वृद्धि होती हैक कि उसे पढ़ा हुआ पाठ , पूरी तरह से याद है ।(नेल्सन इत्यादि, 1982) यह विश्वास हमारे तनाव को कम करके हमारे संपादन को बढ़ातां है।

यह आधिवन्य सीखने का ही परिणाम है कि हम अपने साथ पढ़ने वाले किसी मिल का नाम और चेहरा कई वर्शों के पश्चात् भी याद रख पाते है (वेहरिक, वेहरिक तथा विटलिंगर 1975) अतः उपरोक्त वर्णित शोध निश्कर्शों से स्पष्ट है कि किसी विषय या पाठ को आधिवन्य सीखने से , पाठ का साहचर्य काफी मजबूत हो जाता है। फलस्वरूप उसकी स्मृति काफी लम्बे समय तक बनी रहती है।

(घ) विराम विधि का प्रयोग :– किसी भी अध्ययन को पढ़ने की दो विधियाँ होती हैं। –प्रथम विधि ,जिसमें पाठ को टुकड़ों में बाँटकर विभिन्न समय अन्तरालों में पढ़ा जाता है यह विधि विराम विधि (डिस्ट्रीव्यूटेड मेथड) है।दूसरी विधि जिसमें पूरे पाठ को एक बार में ही पढ़कर याद करने का प्रयास किया जाता है। एक साथ पाठ को पढ़ने से थकान व ऊबन महसूस होतें है । जिससे पाठ को याद करना एक कठिन कार्य बन जाता है जबकि विराम ले लेकर पढ़ने से व्यक्ति थकान व ऊबन महसूस नहीं करता, इससे पाठ आसानी

से लम्बे समय तक याद रह जाता है। जिमर तथा होकेवर (1994) का कथन है कि शैक्षणिक सामग्री को याद करने में विराम विधि का प्रयोग अत्यधिक उपयोगी है।

(च) बाधा को कम करना :– कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि सीखने की परिस्थिति से यदि बाधा उत्पन्न करने वाले कारकों को हटा दिया जाता है , तो इससे सीखे गये पाठ या विषय की स्मृति अपने आप अच्छी हेा जाती है। जैसे सीखने की विभिन्न परिस्थितियों एवं सामग्रियों के बीच समानता को कम कर दिया जाता है। तो इससे उत्पन्न बाधा अपने आप कम हो जाएगी , और विषय या पाठ की स्मृति उन्नत हो जाएगी।

(2) स्मृति सहायक प्रविधियों का उपयोग (यूजिंग नेमोनिक डिवाइसेस) मनोवैज्ञानिकों ने कुछ ऐसी स्मृति सहायक प्रविधियों का वर्णन किया है, जिनसे भी स्मृति उन्नत होती है। इनमें कुछ महत्वपूर्ण विधियाँ इस प्रकार हैं–

(क) लोकी विधि (मेथड ऑफ लोकीन्स)– लोकी अर्थात् स्थान । लोकी विधि में हम याद किये जाने वाले एकांशों को किसी परिचित स्थान में मौजूद उप स्थानों के साथ जोड़ कर याद करते हैं। ये स्थान गली में मौजूद विभिन्न मकान , किसी बिल्डिंग के विभिन्न कमरे , हमारे घर में उपस्थित कमरे , हमारे कमरे में मौजूद विभिन्न वस्तुएँ या अन्य कुछ भी हो सकता है , जिसकी प्रतिमा आसानी से हम अपने मस्तिष्क में बना सकें । एकांशों की पुनः प्राप्ति करते समय हम संबंध स्थानों की एक मानसिक परिक्रमा कर लेते हैं जिनके साथ एकांशों को जोड़ा गया था । अन्सचूज इत्यादि (1985) ने अपने अध्ययनों में लोकी विधि का उपयोग वह व्यक्तियों के किराना दुकान से लायी जाने वाली वस्तुओं को याद करवाने में किया । वोअर (1973) ने अपने अध्ययन में पाया कि लोकी विधि का प्रयोग करने वाले प्रयोज्य शब्दों की सूची से उन प्रयोज्यों की अपेक्षा तिगुणा अधिक प्रत्याछन(recall)किये ,जो इस विधि का उपयोग नहीं किये थें ।

(ख) परिवर्णी शब्द (एक्रोनिम वर्ड) का उपयोग – शब्दों की श्रेणी मे उपस्थित प्रथम अक्षरों को जोड़कर बनाया गया ,शब्द परिवर्णी शब्द कहलाता है। परिवर्णी षब्द के उपयोग से जटिल सूचनाओं को याद रखने एवं उनका प्रत्याहान करने मे मदद मिलती है । जैसे यूनाइटेड स्टेट ऑफ अमेरिका का परिवर्णी शब्द यू एस ए है इसी प्रकार वर्ड रेल्थ ऑर्गेनाइजेषन का परिवर्णी शब्द डब्लू एच ओ है। विल्डिंग इत्यादि (1986) ने चिकित्सा क्षेत्र से संबंधित छात्रों में परिवर्णी शब्द का उपयोग विभिन्न लक्षणों के आधार पर रोग का नाम याद करने में किया ।

(ग) तुक विधि (राइम्स विधि) का उपयोग – तुक विधि के अन्तर्गत व्यक्ति याद किये जाने वाले एकांशों को कविता या दोहे के रूप में परिवर्तित करके याद करता है। क्योंकि कविताओं अथवा दोहों के अन्तिम शब्द आवाज में मिलते जुलते हैं , इसलिए इन्हें व्यक्ति जल्दी याद कर लेता है। यही कारण है कि छोटे बच्चे कविताओं और दोहों को जल्दी याद कर लेते हैं भले ही वे उनका अर्थ न समझते हों ।

(घ) परिवर्णी पंक्ति शब्द (एक्रोस्टिक्स) का उपयोग –परिवर्णी पंक्तियाँ ऐसी पंक्तियाँ होती है , जिसमें प्रथम कुछ अक्षर संकेत के रूप में कार्य करतें हैं। और उसे देखते ही या सुनते ही व्यक्ति शेष भागों का प्रत्याछन कर लेता है। जैसे – सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा में सारे को सुनकर ही बालक पूरी पंक्ति का प्रत्याछन कर लेते है। यह एक परिवर्णी पंक्ति का उदाहरण है।

(च) वर्णनात्मक विधि (नैरेटिव मेथड) – वर्णनात्मक विधि स्मृति सहायक विधियों में एक महत्वपूर्ण विधि है , इसमें विभिन्न एकांशों को एक कहानी के रूप में संगठित कर याद करते हैं। **बोअर एवं क्लार्क (1969)** ने अपने अध्ययनों में पाया कि जब छात्रों को असंबंधित शब्दों की एक सूची को एक कहानी के रूप में संगठित कर सरइ करने के लिए कहा गया तब वे कुल शब्दों का 90 प्रतिशत तक प्रत्याहान करने में समर्थ थे। परन्तु जब उन सूचियों को ऐसे ही याद करने के लिए कहा गया, तब वे 20 प्रतिशत का ही प्रत्याहान करने में समर्थ हो सके ।

(छ) चुंकिंग – चुंकिंग का प्रयोग लघुकालीन स्मृति के उन्नत बनाने के लिए किया जाता है। मिलर (1956) के अनुसार चुंकिंग से तात्पर्य याद की जाने वाली छोटी –छोटी इकाईयों को एक साथ संयोजित कर बड़ी इकाई में बदलने से होता है ताकि उसे आसनी से प्रत्याछन किया जा सके। जैसे –टेलीफोन नम्बर 666322 को छह लाख छाछठ हजार तीन सौ बाइस कहने के बजाय यदि व्यक्ति उसे तीन छह ,तीन व दो दो के रूप में संगठित कर लेता हैं,तो यह चुंकिंग का उदाहरण होगा ,इसे टेलीफोन नम्बर की स्मृति अधिक समय तक बनी रहती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि स्मृति के उन्नयन की कई विधियाँ है जिन पर मनौवैज्ञानिकों ने गम्भीरता से विचार किया है।

अभ्यासार्थ प्रश्नः– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

I. स्मृति वह ..... तन्त्र है जिसके द्वारा हम सूचनाओं को संचित करते है तथा उसे पुनः स्मरण में लाते है।
II. स्मृति वह प्रकिया है जिसके द्वारा जानकारी का..... संचयन तथा पुनः प्राप्त किया जाता है।
III. स्मृति एक .....प्रकिया है।
IV. संवेदी स्मृति के दो प्रकार है जिन्हें.....तथा प्रतिध्वनिक स्मृति कहा जाता है।
V. प्रतिचित्रात्मक स्मृति में बनने वाली प्रतिमा .....कहलाती है।

13.7– सारांश –

प्रिय विद्यार्थियों उपर्युक्त विवरण से आप ठीक प्रकार से समझ गये हैं कि स्मृति क्या है। इस की विभिन्न परिभाषायें क्या है इसके कितने प्रकार है तथा किस प्रकार से स्मरण शक्ति को बढ़ाया जा सकता है। निस्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि किसी भी प्राणी के अतीत के अनुभवों, जिसमें सूचनाओं , घटनाओं इत्यादि सभी शामिल है, को याद रखने की क्षमता ही स्मृति कहलाती है। मोटे तोर पर इसे संवेदी स्मृति के भेद से तीन भागों में बाटा गया है। इसके भी अनेक उपभेद है। स्मृति का नाकारात्मक पक्ष विस्मरण है। जिसके कारण हमें घटनाओं विस्मृत हो जाती है, याद नहीं रह पाती है। पाठकों मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यदि हम देखे तो किसी भी व्यक्ति वस्तु या घटना को याद रखने में हमारे संवेगों या भावनाओं का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान होता है। जिन चीजों या वे हमें लम्बे समय तक याद रहती है और जिनसे हमारा भावनात्मक सम्बन्ध नहीं होता है। अतः यदि हम अपनी स्मरणशक्ति को बढ़ाना चाहते है ता हमें अपनी भवनाओं को बहुत ही गहराई से समझना चाहिऐ। जिन व्यक्तियों , वस्तुओं, घटनाओं को हम लम्बे समय तक अपने मन में संजोकर रखना चाहते है। उनके साथ हमें एक प्रकार का भावनात्मक सम्बन्ध स्थापित करना

चाहिए। जब हम याद किये जाने वाले विषय के साथ समन्वय स्थापित करने में सक्षम हो जाते है तो हमारी एकाग्रता स्वतः ही बनने लगती है। हमें विषय में रूचि आने लगती है और विषय हमें बहुत ही सहजता से न केवल याद हो जाता है वरन हमारी दीर्घकानील स्मृति में संचित हो जाता है।

13.8—पारिभाषिक शब्दावली

इकोइकः— ध्वनि या श्रवण से सम्बन्धित ।

पुनरूत्पादितः— फिर से उत्पन्न होना।

बाहयः— बाहरी।

कूटसंकेतनः— बाहय सूचनाओं या संवेदनाओं का मस्तिष्क में कोड के रूप में संचित होना या मस्तिष्क में स्मृति चिन्हों का निर्माण होना।

उद्दीपकः— जिसके कारण किसी की प्रतिक्रिया

13.9 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1—संरचनात्मक 2—कूटसंकेतन 3—मानसिक 4—प्रतिचित्रात्मक 5—आइकन

13.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

I. सिंह, अरूण कुमार। (2006) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान/मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

II. सुलेमान, मुहम्मद ।(2006) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान/मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

III. श्रीवास्तव रामजी एवं अन्य। (2007) अधिगम एवं स्मृति मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

IV. श्रीवास्तव रामजी एवं अन्य। (2007) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान । स्मृति मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

V. आत्मा श्रीवास्तव, शर्मा तिवारी। (2007) आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान । स्मृति मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

13.11—निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1:— स्मृति क्या है? इसे परिभाषित करते हुवे स्मृति के विभिन्न प्रकारों का विवेचन कीजिए।

प्रश्न 2:— स्मृति के उन्नयन की विभिन्न विधियों पर प्रकाश डालिए।

इकाई – 14 – चितंन – परिभाषा प्रकार तथा महत्व

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 चिंतन : अर्थ एवं परिभाषा

14.4 चिंतन का स्वरूप

14.5 चिंतन : प्रकार

14.6 चिंतन : महत्व

14.7 सारांश

14.8 शब्दावली

14.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

14.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

14.10 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना–

प्रिय विद्यार्थियों, सामान्यता चिंतन शब्द से हम सभी परिचित हैं, क्योंकि यह एक ऐसी अव्यक्त मानसिक प्रक्रिया है, जो प्रायः सभी प्राणियों में निरन्तर चलती रहती है।

चिन्तन का हमारे व्यक्तित्व से प्रत्यक्ष संबंध है। हमारा चिन्तन जितना श्रेष्ठ होगा, हमारा व्यक्तित्व भी उतना ही विकसित एवं परिपक्व होगा। यदि हम किसी के व्यक्तित्व से परिचित होना चाहते हैं तो हम यह जान लें कि उस व्यक्ति के विचार कैसे हैं। उसका चिन्तन सकारात्मक है या नकारात्मक। यह अत्यधिक श्रेष्ठ साधन है, किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व से परिचित होने का। हमारे चिन्तन का हमारे स्वास्थ्य में भी अति महत्वपूर्ण स्थान है। स्वास्थ्य की कुंजी सकारात्मक सोच है। हमारे चिन्तन का हमारे स्वास्थ्य पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। हम जैसा सोचते हैं, हमारा शरीर वैसा ही रिएक्ट करता है। नकारात्मक चिन्तन शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को कम कर, इसे अस्वस्थ बना देता है। सकारात्मक रहना आसान है और चिन्तन को सकारात्मक स्वरूप देना उससे भी ज्यादा आसान है, आवश्यकता सिर्फ सकारात्मक रवैया इख्तियार करने की है। जीवन में जितनी भी

कठिनाइयों एवं संघर्ष क्यों न आयें, सकारात्मक रूख अपनाये रखें, यही उत्तम स्वास्थ्य एवं श्रेष्ठ व्यक्तित्व की कुंजी है।

अब आपके मन में यह प्रश्न उत्पन्न हो रहा होगा कि यह चिंतन आखिर है क्या? हम सभी हर पल, हर समय कुछ न कुछ सोचते तो रहते हैं किन्तु इस सोचने की प्रक्रिया से क्या आशय है? यह ठीक–ठीक बताने में हम प्रायः असमर्थ रहते है? प्रस्तुत ईकाई में आप इसी चिंतन प्रक्रिया का अर्थ, इसकी विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण इसकी विशेषताओ, प्रकार इत्यादि का अध्ययन कर सकेंगे।

वस्तुतः, चिंतन प्रत्यक्ष रूप से दिखाई न देने वाली एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया है जो प्रत्येक प्राणी में निरन्तर चलती रहती है। जब प्राणी के सामने कोई समस्या उत्पन्न होती है तो चिंतन की शुरूआत होती है और जब तक समस्या का समाधान नहीं हो जाता तब तक चिंतन की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है।

पाठकों, इस चिंतन के स्वरूप को ठीक ढंग से समझने के लिये आप स्वयं अपने व्यावहारिक जीवन से, अपने व्यक्तिगत जीवन से इस प्रक्रिया को जोड़कर देखें कि किस प्रकार स्वयं हमारी नित्यप्रति की जिन्दगी में यह प्रक्रिया घटित होती है, हम किस प्रकार से इसका उपयोग करते हैं। यदि आप इस पद्धति से अध्ययन करेंगे तो निश्चित ही अपने विषय को भली–भाँति जानने–समझने में सक्षम हो सकते हैं।

14.2 उद्देश्य –

विद्यार्थियों प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप –

- चिंतन के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे।
- इसकी विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
- चिंतन की विभिन्न विशेषताओं का अध्ययन कर सकेंगे।
- चिंतन के विभिन्न प्रकारों का वर्गीकरण कर सकेंगे।
- चिंतन प्रक्रिया को हम किस प्रकार विकसित कर सकते है, इसे स्पष्ट कर सकेंगे।
- व्यावहारिक जीवन में चिंतन के महत्व को स्पष्ट कर सकेंगे।

14.3 चिंतन : अर्थ एवं परिभाषा–

मानव के व्यवहार में चिंतन का विशेष महत्व है। चिंतन के कारण ही मनुष्य पशुओं से भिन्न है। आधुनिक युग में दिखाई देने वाली सभी प्रकार की प्रकगति चाहे वह वैज्ञानिक हों ,दार्शनिक हो या तकनीकी साहित्यिक हो या सांसारिक,चिंतन का ही परिणाम है। अपनी चिंतन क्षमता द्वारा ही मनुष्य एक नयी सभ्यता और संस्कृति का निर्माण कर सका ,जबकि पशु ऐसा न कर सका । चिंतन की सहायता से मनुष्य अनेक प्रकार की समस्याओं का समाधान करता हैं चिंतन का प्रयोग समस्या समाधान में ही नहीं अपितु ओंर प्रकार के अधिगम में ही किया जाता हैं । चिंतन में परिर्वतन से व्यक्ति की आदतें और व्यवहार परिवर्तित हो जाते हैं शिक्षित लोगों के वार्तालाप में चिंतन शब्द का उपयोग अनेक प्रकार की अप्रकट मानसिक क्रियाओं का उल्लेख करने के लिए किया जाता हैं । चिंतन शब्द के स्थान पर क्रिया सूचक शब्द सोचने का उपयोग सभी वर्ग कें लोग बहुतायत में करते हैं, जब कोई कवि कविता लिखता है या कोई कलाकार कलाकृतियों का निर्माण करता है,तब वह अपनी कल्पना के माध्यम से अनेक प्रकार के विम्बों को उभारने का प्रयत्न करता हैं

उससे प्रश्न करने पर उसका उत्तर होता है कि वह सोंच रहा हैं वह शायद ही कभी कहता है कि वह कल्पना कर रहा हैं एक बेरोजगार युवक बैठा है , आँखें बन्द हैं किन्तु चेहरे से स्पष्ट लगता है कि वह अपने विचारों में खोया हुआ है। वह कल्पना करता है कि उसे एक बहुत अच्छी नौकरी मिल गई है, उसके पास एक बहुत अच्छा मकान है गुणवान तथा सुशील पत्नी व बच्चे हैं , उसके पास सुख सुविधाओं के सभी साधन उपलब्ध हुै। पूछने पर वह बताता है कि वह कुछ सोच रहा हैं, वह यह नहीं रहता, कि वह दिवास्वप्न देख रहा है । एक नववधू अभी –2 शादी होकर ससुराल आई है। उसे अपने घर परिवार की याद सता रही हैं पूछने पर वह भी यही रहती है कि वह अपने घर ,परिवार के बारे में सोच रही है। जब मनुष्य को किसी समस्या का समाधान खोजना होता है तब वह चिंतन प्रकिया का ही आश्रय लेता है । वह चिंतन प्रकिया द्वारा वातावरण ,उसकी वस्तुओं और वस्तुओं के पारस्परिक संबंधों को जानने का प्रयास करता हैं। अतः कहा जा सकता है कि चिंतन एक महत्वपूर्ण मानसिक प्रकिया है, जो समस्या समाधान की ओर उन्मुख होती है । चिंतन के दो पक्ष होते हैं प्रथम व्यवहारिक तथा द्वितीय सैंद्धान्तिक । इस संबंध में कुछ भी कहने से पूर्व इसकी विभिन्न परिभाषाओं को जानना एवं उनका विश्लेषण करना आवश्यक है।

परिभाषा –

इंगलिश और इंगलिश (1980) के अनुसार :– चिंतन के चार मुख्य अर्थ है–

(1)कोई भी प्रकिया या कार्य जो मुख्यतः प्रत्यक्षात्मक नहीं, चिंतन हो सकता है।

(2)दूसरे अर्थ में समस्या का समाधान ही चिंतन है। जिसमें प्रकट प्रहस्तन औ प्रत्यक्षीकरण न होकर मुख्यतः विचार होते हैं।

(3)तीसरे अर्थ में चिंतन का अर्थ किसी समस्या में निहित संबंधों को समझना अथवा उस पर विचार करना है।

(4)चिंतन का अर्थ आन्तरिक और मुख वाणी व्यवहार से मिलाया जाता है।

एटकिंसन ,एटकिंसन एवं हिलगार्ड (1998) के अनुसार :– ''चिंतन एक ज्ञानात्मक प्रकिया है, जिसमें घटनाओं तथा वस्तुओं के प्रतिनिधियों के रूप में प्रतीकों की विशेषता होती हैं। ''

बेरोन(1992) के अनुसार :–''चिंतन में सम्प्रत्ययों ,प्रतिज्ञाप्ति तथा प्रतिमाओं का मानसिक जोड़ तोड़ होता हैं ।''

गैरेट (1961) के अनुसार :–''चिंतन एक ऐसा आन्तरिक व्यवहार हैं, जिसमें वस्तुओं विचारों के लिए प्रतीक प्रयुक्त होते हैं।''

सैनट्रोक (1995) के अनुसार :–''चिंतन में मानसिक रूप से सूचनाओं का जोड़–तोड़ सम्मिलित होता हैं विशेष कर जब हम सम्प्रत्यय का निर्मण करते हैं, समस्याओं का समाधान करते हैं,तर्क करते हैं तथा निर्णय लेते है।''

रेबर तथा रेबर (2001)के अनुसार :– सामान्यतः चिंतन का अर्थ है विचारों ,प्रतिमाओं, प्रतीकों, शब्दों, कथनों ,स्मृतियों, प्रत्ययों अवबोधनों, विश्वासों तथा अभिप्रायों का अन्तःज्ञानात्मक तथा मानसिक परिचालन ।''

कागन तथा हैवमैन (1976)के अनुसार :– ''प्रतिमाओं,प्रतीकों, सम्प्रत्ययों, नियमों तथा अन्य मध्यस्थ इकाइयों के मानसिक जोड़ तोड़ को चिंतन कहा ताता है। ''

वारेन के अनुसार :– "चिंतन एक विचारात्मक क्रिया है, जिसका स्वरूप प्रतीकात्मक है, इसका प्रारम्भ व्यक्ति के समक्ष उपस्थित किसी समस्या या कार्य से होता है, इसमें कुछ

मात्रा में प्रयत्न सन्निहित होता है। किन्तु यह चिंतन इस समस्या के प्रत्यक्ष प्रभाव में हेाता है और यह अन्तिम रूप से समस्या सुलझाने और उसके निष्कर्ष की ओर ले जाता है। ''

आइजेन्क तथा उनके साथियों (1972) के अनुसार :– ''काल्पनिक परिभाषा के रूप में चिंतन का काल्पनिक जगत में व्यवस्था स्थापित करना है । यह व्यवस्था स्थापित करना वस्तुओं से संबंधित होता है तथा साथ ही साथ वस्तुओं के जगत की प्रतीकात्मकता से भी संबंधित होता है।वस्तुओं में संबंधों की व्यवस्था तथ वस्तुओं में प्रतीकात्मक संबंधों की व्यवस्था का नाम चिंतन है। ''

कोलिन्स एवं ड्रेवर के अनुसार :–चिंतन परिस्थिति के प्रति चेतन समायोजन है।

जॉन डीवे के अनुसार :– ''चिंतन किसी विश्वास या अनुमानित प्रकार के ज्ञान का , उसके आधारों तथा निष्कर्ष के प्रकाश में सक्रिय, निन्तर, एवं सावधानी पूर्वक विचार करना है।''

वुडवर्थ का मत है '' चिंतन करना एक कठिनाई को दूर करना है। ''

डैशियल (1949)के अनुसार :– उच्च स्तरीय समस्या समाधान की आन्तरिक कहानी ही चिंतन है। ''

जॉर्सविक (1970) के अनुसार :– '' चिंतन की कार्यात्मक परिभाषा यह है कि इसके द्वारा अनुभव की गई सांसारिक घटनाओं अथवा उनके प्रतिनिधियों के बीच व्यवस्था स्थापित की जाती है। ''

चिंतन के संबंध में हम्फ्रे (1963) ने निम्न विचार व्यक्त किये हैं–

1. जब प्राणी किसी समस्या का समाधान करता है तो इस क्रिया में वह पूर्वानुभव का प्रयोग करता है।
2. समस्या प्राणी को उसके उददेश्य तक पहुँचने में बाधा उत्पन्न करती है, अतः चिंतन की आवश्यकता पड़ती है।
3. समस्या समाधान की परिस्थिति में चिंतन क्रियाशील होता हैं।
4. सभी विचारपूर्ण क्रियाओं में प्रयास और भूल का स्वरूप देखा जाता है, चाहे वे क्रिया में आन्तरिक हो अथवा बाह्य ।
5. चिंतन मे प्रेरणा पाई जाती है । इसका अर्थ यह है कि चिंतन उददेश्य पूर्ण होता है।
6. चिंतन प्रक्रिया से भाषा को अलग नहीं किया जा सकता। भाषा मानव चिंतन में अति आवश्यक है।
7. समस्या के समाधान में जब चिंतन क्रिया प्रारम्भ होती है तो उसमें प्रतिमाएँ, पेषीय, क्रियाएँ तथा आन्तरिक सम्भाषण आदि पाये जाते हैं।

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि चिंतन का संबंध उपस्थित वस्तुओं से कम और उनके प्रतिनिधियों और प्रतीको से अधिक है। प्रतीक हमारे मानसिक जगत में पूर्व अनुभवों के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करते हैं। किसी वस्तु की अनुपस्थिति में जब कोई मानसिक क्रिया उस वस्ततु का प्रतिनिधित्व करती है तो उसे मध्यस्थ इकाई कहते हैं । चिंतन में भौतिक वस्तुओं की उपस्थिति वर्जित नहीं है परन्तु चिंतन क्रिया अनुपस्थित वस्तुओं के अनुपस्थित के प्रतीकों को भी अपने अन्दर अनिवार्य रूप से समेट लेती है । चूँकि चिंतन में वस्तुओं एवं विषयों की भौमिक उपस्थिति आवश्यक नहीं है इसलिए इसमें सम्पूर्ण जीवन मे सीखी गयी मध्यस्थ इकाईयों के प्रवेश करने की पूरी गुंजाइश रहती है।किसी उददीपन अथवा समस्या ने मस्तिष्क में कुछ सूचना भेजी जाती है। उस सूचना के प्रति उपयुक्त क्रिया होने से पहले सूचना संसाधन क्रिया होती

है । उस सूचना संसाधन का कार्यस्थ प्रधानतः मस्तिष्क होता है। यद्यपि सम्पूर्ण शरीर से सोचन का भी दसवाँ किया गया है। ***विचार, विम्ब, प्रत्यय*** आदि को मानसिक स्तर पर नये – नये ढंग से मिलान एवं संगठित करने की क्रिया होती है। आरम्भ में अनेक संगठनों को रद्द किया जाता है और अन्त के किसी संगठन को समस्या के उपयुक्त माना जाता है । इससे स्पष्ट है कि चिंतन में मानसिक स्तर पर प्रयत्न एवं भूल या त्रुटि होती हैं, जो समस्या का समाधान प्राप्त हेाते तक चलती रहती हैं । ये प्रयत्न एवं भूल अनियमित ढंग से नहीं बल्कि समस्या से उत्पन्न एक विशेष प्रकार की तत्परता द्वारा संचालित होते है। किसी समस्या का समाधान कब प्राप्त होगा अथवा समस्या पर चिंतन कब समाप्त होगा,? इसे निश्चित नही किया जा सकता। किसी –किसी समस्या पर चिंतन क्रिया जीवन भर चलती रहती है।

चिंतन मे भूत ,वर्तमान और भविष्य तीनों से व्यक्ति का संबंध रहता है। भूतकाल से चिंतन की सामग्रियाँ मिलती हैं , वर्तमान चिंतन को समस्या देता है और भविष्य चिंतन के फल दर्शाता है। कल्पना की कोई दिशा नहीं होती है और न इसकी कोई अन्तिम सीमा होती है,जबकि चिंतन की एक निश्चित दिशा होती है, और समस्या समाधान होते ही यह चिंतन किया समाप्त हो जाती है। इसी आधार पर विद्वानों ने निर्दिष्ट चिंतन तथा अनिर्दिष्ट चिंतन मे भेद किया है। निर्दिष्ट चिंतन किसी समस्या से उत्पन्न होता है और साहचर्यों के आधार पर एक लक्ष्य तक पहुँचता है। इसके विपरीत अनिर्दिष्ट चिंतन स्वतः उत्पन्न होता है और इसका कोई लक्ष्य नहीं होता है।

14.4 चिंतन का स्वरूप–

पाठकों, चिंतन की विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण करने के उपरान्त चिन्तन के स्वरूप के संबंध में निम्नलिखित तथ्य उजागर होते हैं–

1. जब प्राणी के सामने कोई ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होती है, जिसका समाधान तो वह करना चाहता है, किन्तु उसे समाधान का उपाय या रास्ता दिखाई नहीं देता है तो वह सोचना शुरू करता है अर्थात– उसमें चिंतन की प्रक्रिया प्रारंभ होती हैं अतः स्पष्ट है कि चिंतन एक समस्या समाधान व्यवहार है।
2. चिंतन एक अव्यक्त मानसिक प्रक्रिया है अर्थात– इसे स्थूल वस्तुओं की भाँति प्रत्यक्ष रूप से आँखों से नहीं देखा जा सकता वरन्–प्राणी के व्यवहार के आधार पर यह पता लगता है कि वह क्या सोच रहा है? उसके चिंतन का स्तर क्या है?
3. चिंतन प्रक्रिया का संबंध भूत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों से होता है।
4. चिंतन का प्रमुख उद्देश्य किसी समस्या का समाधान करना होता है। अतः इसमें प्रयत्न एवं त्रुटि की प्रक्रिया शामिल होती है।
5. चिंतन की एक निश्चित दिशा होती है क्योंकि यह लक्ष्य निर्देशित होता है।
6. चिंतन में भाषा तथा प्रतीकों का भी उपयोग होता है। विद्यार्थियों आपने अक्सर अनुभव किया होगा कि सोचते–सोचते कभी–कभी हम अपने मन में कुछ–कुछ बोलने भी लगते हैं अर्थात् भाषा का प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार दिखायी एवं सुनायी देने वाली प्रतिभाओं का उपयोग भी हम सोचने में करते हैं।

प्रिय पाठकों, चिंतन की उपर्युक्त विशेषताओं को जानने के बाद आशा है कि आप इसके अर्थ एवं स्वरूप को भलीभाँति समझ गये होंगे।

अब अगले परिच्छेद में चिंतन किस–किस प्रकार से किया जाता है? इसके विभिन्न प्रकार कौन–कौन से है इस पर चर्चा कि जायेगी, जिससे कि आप विषय को ठीक ढंग से आत्मसात कर सकें।

14.5 चिंतन : प्रकार –

अतः विद्यार्थियों, आप जान गये होंगे कि भिन्न–भिन्न विद्वानों ने चिन्तन के भिन्न प्रकार बतलाये है। वस्तुतः समस्या के स्वरूप पर भी बहुत कुछ हद तक यह निर्भर करता है कि चिंतन किस प्रकार का है।

मनोवैज्ञानिकों ने चिंतन को कई भागों में बाँटकर अध्ययन किया है।

जिम्बार्डो तथा रूक (1977) ने चिंतन को निम्नांकित दो भागों में बाँटा हैं–

1. ***स्वली चिंतन (ऑटिस्टिक थिंकिंग)***
2. ***यथार्थवादी चिंतन (रियलिस्टिक थिंकिंग)***

1. ***स्वली चिंतन (ऑटिस्टिक थिंकिंग) :–*** स्वली चिंतन का तात्पर्य ऐसे चिंतन से होता है जिका संबंध कल्पनाओं से होता है। स्वली चिंतन मं व्यक्ति की इच्छाएँ तथा विचार ही कल्पनाओं के रूप मं अभिव्यक्ति होते हैं। विभिन्न प्रकार के स्वप्न तथा इन स्वप्नों में दिखने वाले दृश्य साथ ही व्यक्ति की अभिलाषाएँ स्वली चिंतन के उदाहरण हैं मेडिकल प्रवेश परीक्षा की तैयारी कर रहा कोई छात्र यदि यह कल्पना करता है कि मेडिकल प्रवेश परीक्षा पास करने के पश्चात वह किसी प्रसिद्ध मेडिकल कॉलेज में एड्मिशन लेगा तथा पढ़ाई पूरी करने के पश्चात वह एक बहुत बड़ा हॉस्पिटल खोलेगा, बहुत से लोगों की सफलता पूर्वक चिकित्सा करने पर उसका देश विदेश में नाम हेागा तथ वह खूब सारा पैसा कमायेगा तो यह स्वली चिंतन का उदाहरण हेागा। इस तरह के चिंतन का कोई वास्तविक आधार नहीं होता है साथ ही इसका संबंध किसी भी प्रकार की समस्या के समाधान से नहीं होता है।

   स्वली चिंतन का कोई वास्तविक आधार न होने के कारण कई बार व्यक्ति अपने उददेश्य से भटककर भी चिंतन करना प्रारम्भ कर दकता है जिससे उसके समय व ऊर्जा दोनों की बर्बादी होती है। जिस समय का सदुपयोग वह अपने उददेश्य की पूर्ति हेतु प्रयत्न करने में कर सकता या उस समय को वह यूँही व्यर्थ कल्पनाओं में बिता देता है।

2. ***यथार्थवादी चिंतन (रियलिस्टिक थिंकिंग):–*** यथार्थवादी चिंतन का तात्पर्य ऐसे चिंतन से होता है, जिसका संबंध व्यक्ति के वास्तविक जीवन से होता है। यथार्थवादी चिंतन व्यक्ति की समस्याओं का समाधान करने में मदत करता है । उदाहरणार्थ – यदि कोई व्यक्ति बस में बैठकर मात्रा कर रहा है और अचानक बस रूक जाती है तब वह विभिन्न प्रकार से सोचना प्रारम्भ कर देता है कि कहीं ड्राइवर ने कोई एक्सीडेंट तो नहीं कर दिया है ,कहीं बस का डीजल तो नहीं खत्म हेा गया है , कहीं बस के इंजन मे कोई खराबी तो नही आ गयी है, कहीं पहिये का टायर तो नहीं फट गया है , आदि आदि । इस प्रकार व्यक्ति समस्या उत्पन्न करने मे संभावित विभिन्न कारणों पर चिंतन करने के पश्चात मुख्य कारण तक पहुँचता है तथा निश्चित करता है कि बस इस कारण से ही बन्द हुई है ,फिर वह

प्रस्तुत समस्या के समाधान का प्रयास करता है । इस प्रकार का चिंतन यथार्थवादी चिंतन का उदाहरण है।

यथार्थवादी चिंतन प्रक्रिया के अन्तर्गत कई बातें आती है–

1. ***नयी समस्या की खोज करके उसको पहचानना ।***
2. ***समस्या के संकेतों का अर्थ समझना ।***
3. ***अतीत के अनुभवों का स्मरण करना ।***
4. ***अतीत के अनुभवों का लाभ उठाकर ,उनके आधार पर कल्पना करना।***
5. ***परिकल्पना के आधार पर नियम खोजना तथा नियमों के आधार पर सही निष्कर्ष तक पहुँचना है।***

मनोवैज्ञानिकों ने यथार्थवादी चिंतन को निम्न लिखित भागों में विभाजित किया है–

1. ***अभिसारी चिंतन (कनवर्जेन्ट थिंकिंग)*** :– इस तरह के चिंतन को निगमनात्मक चिंतन (डेडक्टिव थिंकिंग) भी कहा जाता है। अभिसारी चिंतन का प्रतिपादन सर्वप्रथम जाय पॉल गिल्फोर्ड ने किया । अभिसारी चिंतन चिंतन का एक ऐसा प्रकार है ,जिसमें व्यक्ति बहुत सारी जानकारियों तथा तथ्यों का विश्लेषण करके किसी एक उत्तर को खोजता है। अर्थात् किसी एक निष्कर्ष पर पहुँचता है। विद्यालयों में विद्यार्थियों द्वारा किया जाने वाला चिंतन, जिसके आधार पर वे विभिन्न पुस्तकों को पढ़कर जानकारियाँ एकत्र करते फिर अपने लिए उपयोगी जानकारी तक पहुँच जाते हैं तथा अध्यापकों द्वारा पूछे गये प्रश्नों का समाधान करते हैं। अभिसारी चिंतनमें गति परिशुद्धता तथ तर्कणा का विशेष महत्व है। अभिसारी चिंतन का प्राथमिक उददेश्य कम से कम समय में सर्वश्रेष्ठ तार्किक उत्तर तक पहुँचना होता है। एक अभिसारी चिंतक प्रायः ऐसी जानकारियों के एकत्रीकरण का प्रयास करता है अर्थात ऐसे ज्ञान को प्राप्त करता है जिसका उपयोग वह भविष्य में आने वाले समस्याओं के समाधान में करता है। अभिसारी चिंतन में हम सामान्य से विशिष्ट की ओर जाते हैं अर्थात इसमें ज्ञात सामान्य नियमों के अनुसार किसी विशिष्ट बात या घटनाक्रम का हम विश्लेषण करते हैं । जब किसी प्रदत्त नियम के आधार पर हम विशिष्ट निष्कर्ष पर पहुँचते हैं तब हमारा चिंतन अभिसारी चिंतन के प्रकार का होता है। अभिसारी चिंतन का केन्द्र बिन्दु किसी समस्या का समाधान करना होता है, इसके लिए हम विभिन्न साक्ष्य व तथ्य एकत्र करते हैं, उनका विष्लेशण करते हैं। और समस्या का समाधन करते हैं। इस तरह के चिंतन में व्यक्ति अपनी जिन्दगी के भिन्न –भिन्न क्षेत्रों में प्राप्त अनुभवों को एक साथ मिलाकर उसके आधार पर एक समाधान खोजता है। ऐसे चिंतन द्वारा जिस समस्या का समाधान होता है , उसका एक निश्चित उत्तर होता है ।

   उदाहरण :– बहुविकल्पी प्रष्न में अभिसारी चिंतन का प्रयोग करना होता है जिसमें दिये गये। 4 या 5 उत्तरों का विष्लेशण कर सही उत्तर तक पहुँचते हैं। इसी प्रकार यदि हमसे पूछा जाय कि 10 का गुणा 15 से करने पर क्या उत्तर आयेगा , तो इसके उत्तर देने मे निहित चिंतन अभिसारी चिंतन का उदाहरण होगा।

2. ***अपसारी चिंतन (डाइवर्जेन्ट थिंकिंग)*** :– अपसारी चिंतन का प्रतिपादन सर्वप्रथम जॉय पॉल गिलफोर्ड ने किया ।अपसारी चिंतन में किसी भी समस्या का समाधान करने हेतु विभिन्न जानकारियाँ , साक्ष्य व तथ्य एकत्र किये जाते हैं फिर इन जानकारियों ,साक्ष्यों व तथ्यों के आधार पर अलग–अलग तरीकों से समस्या

समाधान किया जाता जाता है। अपसारी चिंतन सामान्यतः स्वतंत्र व स्वैच्छि होता है। जिसमें हमारा मस्तिष्क अव्यवस्थित रूप से समस्या समाधान के उपाय खोजता है। और विभिन्न तरीकों से समस्या समाधान करता है। अपसारी चिंतन का प्रयोग सामान्यातः ओपन इन्डेड प्रश्नों के समाधान में किया जाता है। जिसमें उत्तरदाता अपने अनुसार कोई भी उत्तर देने के लिए स्वतंत्र होता है उत्तर देते समय वह विभिन्न उदाहरणों के माध्यम से अपनी बात स्पष्ट करता है।

अपसारी चिंतन में प्रयुक्त तकनीकें–

(क)***ब्रेनस्टॉर्मिंगः–*** ब्रेनस्टॉर्मिंग का तात्पर्य ऐसी तकनीकी से है जिसमें अल्प अवधि में अनेक विकल्पों पर विचार करते हुए किसी समस्या का समाधान किया जाता हैं या कोई निर्णय लिया जाता है। ***ब्रेनस्टॉर्मिंग*** में मुख्य तत्व पिगिबैकिंक है जिसमें एक विचार दूसरे विचार के लिए अभिप्रेरक का कार्य करता है। इसमें बहुत सारे विचारों कों एकत्र करने के पश्चात् हर विचार का विश्लेषण करके उत्तर प्राप्ति का प्रयास किया जाता है।

(ख) ***शोध पत्रिकाओं का प्रयोग*** :–शोध पत्रिकाओंएँ अपसारी चिंतन में महत्वपूर्ण स्त्रोत साबित हुई है। इन शोध पत्रिकाओं में किसी विशिष्ट विषय पर अलग –2 लोगों द्वारा प्रस्तुत शोध निष्कर्ष होते है। जिनका प्रयोग चिंतन को एक दिशा प्रदान करता है।

(ग) ***स्वतंत्र लेखन*** :– स्वतंत्र लेखन व्यक्ति किसी विषय में बिना रूके लिखना प्रारम्भ कर देता है, उसके दिमाग मे जो कुछ भी विष्खय संबंधित आता है , वह लिखता जाता है।इससे अल्प समय में ही बहुत से विचार एकत्र हो जाते हैं , जिनका विशिष्ट क्रम में बाद भी संगठन कर लिया जाता है।

(घ) ***मानसिक प्रतिमा का निर्माणः–*** इसमें ब्रेनस्टॉर्मिंग से उत्पन्न विभिन्न विचारों की एक मानसिक प्रतिमा तैयार कर ली जाती है जिसका उपयेग अन्य विचारों की उत्पत्ति में सहायक के रूप में किया जाता है।

इस प्रकार अपसारी चिंतन में अलग –2 तकनीकों का प्रयोग करके समकस्या समाधान का प्रयास किया जाता है। साधारण शब्दों में अपसारी चिंतन को एक समस्या तथा उसके विभिनन हल (उत्तर) से समझ सकते हैं।

(3) ***रचनात्मक चिंतन (क्रियेटिव थिंकिंग)*** – रचानात्मक चिंतन ,चिंतन की एक सकारात्मक प्रकिया है जिसमें व्यक्ति दिये गये तथ्यों में कुछ नये तथ्य जोड़कर एक निष्कर्ष तक पहुँचता है। विज्ञान ,साहित्य और कला का विकास रचनात्मक चिंतन का ही परिणम है। हिन्दी के शब्द जानने वाले तो करोड़ों हैं परन्तु इन्हीं शब्दों के अनुपम प्रयोग से कुछ लोग बड़े कवि तथा कलाकार बन जाते हैं । पेड़ से पके फल टूटकर जमीन पर गिरते तो बहुतों ने देखा था परन्तु न्यूटन ने इसी साधारण सी घटना से गुरूत्वाकर्षण का नियम निकाला । हॉंडी में उबलते पानी और वाष्प को देखकर जेम्स वॉंट ने रेल के इदंजन का अविष्कार कर दिया । ये सब रचनात्मक चिंतन के ही परिणाम हैं । किसी भी व्यक्ति का रचनात्मक चिंतन उसके लिए एक आश्चर्यजनक घटाना हो सकती है। पेड़ से जमीन पर गिरते फल तथा उबलते हुए पानी की भाप से ढक्कन हिलते बहुतों ने देखा परन्तु गुरूत्वाकर्षण का नियम ***न्यूटन*** ने ही तथा भाप के इंजन का अविष्कार ***जेम्स वॉट*** ने ही किया । रचनात्मक चिंतन करने वाले व्यक्ति की कल्पनाओं में इतनी नवीनता तथा सहजता होती है कि वह विभिन्न वस्तुओं क असाधारण उपयोग बता सकता है।

मनोवैज्ञानिकों ने रचनात्मक चिंतन को भिन्न–2 शब्दों में परिभाषित किया है– ***रॉस के अनुसार*** :– रचनात्मक चिंतन ज्ञानात्मक पक्ष की मानसिक क्रिया है।

वेलेन्टाइन के शब्दों में :– रचनात्मक चिंतन शब्द का प्रयोग उस क्रिया के लिए किया जाता है, जिसमें श्रृंखलाबद्ध विचार किसी लक्ष्य अथवा उददेश्य की ओर प्रवाहित होते है।

समाधान की नवीनता और सहजता रचनात्मक चिंतन के मुख्य गुण हैं। अनेक विद्वानों ने सर्जनात्मक अथवा रचनात्मक चिंतन और रचनात्मक समस्या समाधान को एक ही माना है।

ड्रेवडाल (1956) ने रचनात्मक चिंतन की सबसे उचित तथा विस्तृत परिभाषा दी है– सर्जनात्मक चिंतन अथवा सर्जनात्मकता व्यक्ति की उस क्षमता को कहा जाता है। जिससे कुछ ऐसी नयी चीजों ,रचनाओं या विचारों को पैदा करता है ,जो नया होता है एवं जो पहले से उसे ज्ञात नहीं होता है । यह एक काल्पनिक क्रिया या चिंतन संश्लेषण हो सकता है। इसमें गत अनुभूतियों से उत्पन्न सूचनाओं का एक नया पैटर्न और सम्मिश्रण सम्मिलित हो जाता है ना कि निराधार स्वप्न चित्र होता है । यह वैज्ञानिक ,कलाकार या साहित्यिक रचना के रूप में हो सकता है।

बेरोन (2001) ने रचनात्मक चिंतन की एक सटीक परिभाषा दी है जो इस प्रकार है– ''मनोवैज्ञानिकों द्वारा सर्जनात्मकता को ऐसी कार्य करने की क्षमता के रूप में परिभाषित किया जाता है। जो नवीन (मौलिक ,अप्रत्याशित) तथा उचित (लाभदायक या कार्य अवरूद्धता को दूर करने लायक) दोनों ही होते है।
उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से रचनात्मक चिंतन की विशेषताओं का पता चलता है जो इस प्रकार है–

रचनात्मक चिंतन की विशेषतायें

1. *रचनात्मक चिंतन एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है, जिसमें अनेक सरल मानसिक प्रक्रियाएँ निहित होती है।*
2. *रचनात्मक चिंतन लक्ष्य निर्देशित होता है। इसमें व्यक्ति को अपने लक्ष्य का स्पष्ट ज्ञान होता है। तथा उसका प्रत्येक व्यवहार इसी लक्ष्य प्राप्ति हेतु होता है।*
3. *रचनात्मक चिंतन में व्यक्ति कुछ नई तथा भिन्न चीजों की रचना करता है। जो अपने आप में अनूठी होती है। इस तरह की रचना शाब्दिक, अशाब्दिक, मूर्त तथा अमूर्त कुछ भी हो सकती है। जो व्यक्ति के लिए लाभदायक होती है।*
4. *रचनात्मक चिंतन में व्यक्ति समस्या समाधान के अनेक उपायों पर विचार करता है और अन्त में किसी एक उपाय का प्रयोग करके समस्या का समुचित समाधान करता है।*
5. *रचनात्मक चिंतन की दिषा सूक्ष्म की ओर होती है।*
6. *रचनात्मक चिंतन में संकेतों, सम्प्रत्ययों एवं भाषा का विशेष योगदान रहता है।*
7. *सर्जनात्मक चिंतन पर व्यक्ति के पूर्व अनुभवों का स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। ये पूर्व अनुभव जितने ज्यादा होंगे ,रचनात्मक चिंतन करने की क्षमता उतनी ही अधिक होगी।*

8. *रचनात्मक चिंतन उददेश्य पूर्ण होता है तथा यह व्यक्ति को क्रियाशील बनाता है।*
9. *रचनात्मक चिंतन में स्वली चिंतन नियंत्रित ढंग से मौजूद होता है। दूसरे शब्दों मे रचनात्मक ढंग से सोचते समय व्यक्ति कुछ अर्थ पूर्ण कल्पनाएँ करता है। इसी अर्थ पूर्ण कल्पना का ही परिणाम है कि व्यक्ति कुछ वैज्ञानिक कलात्मक तथा साहित्यिक रचना कर पाता है।*
10. *रचनात्मक चिंतन मे अपसारी चिंतन मौजूद होता है जिसमें व्यक्ति समस्या के भिन्न –भिन्न दिषाओं मे सोचता है।*
11. *रचनात्मक चिंतन में अभिसारी चिंतन भी मौजूद होता है, जिसमें व्यक्ति कुछ इस तरह से जानकारियों को एकत्र करता है, जिससे समस्या समाधान में मदद मिलती है।*
12. *रचनात्मक चिंतन मानव का एक विशिष्ट गुण है, जो उसे प्राणी जगत में सर्वोच्च स्थान प्रदान करता है।*
13. *रचनात्मक चिंतन में व्यक्तिगत भिन्नता पाई जाती है, भिन्न – भिन्न व्यक्तियों की रचनात्मक चिंतन प्रक्रिया उनके उददेश्यों,परिस्थियों अथवा समस्याओं के अनुरूप भिन्न – भिन्न होती है।*
14. *रचनात्मक चिंतन वातावरण के साथ व्यक्ति की अन्तःक्रिया का एक पक्ष है।*
15. *रचनात्मक चिंतन चिंतन का एक विशेष तरीका है। यह बुद्धि से एक अलग सम्प्रत्यय है क्योंकि बुद्धि में रचनात्मक चिंतन के अलावा भी अन्य मानसिक क्षमताएँ सम्मिलित होती है।*

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि रचनात्मक चिंतन एक जटिल संज्ञानात्मक प्रक्रिया है। इस तरह का चिंतन करने की क्षमता सभी व्यक्तियों में अधिक ही हो यह आवश्यक नहीं हैं।

गिलफोर्ड (1967) *ने चिंतन को दो भागों में विभाजित किया है ।*

(1) ***अभिसारी चिंतन***

(2) अपसारी चिंतन

इन दोनों चिंतन प्रकारों की व्याख्या पूर्व में की जा चुकी है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने अपसारी चिंतन को रचनात्मक चिंतन के समतुल्य माना हैं।

बुचर (1968) के अनुसार:– जिन लोगों में अपसारी चिंतन करने की क्षमता अधिक होती है ,उसे लोग सर्जनात्मक चिंतन कहते हैं।

रचनात्मक चिंतन की अवस्थाएँ :–

रचनात्मक चिंतन में विचारों का आगमन अथवा समस्या समाधान पायः बड़े सहज ढंग से अचानक होता है। कभी ऐसा भी होता है कि समस्या आते ही कुछ नये ढंग का समाधान अचानक सूझ गया। अधिकांश समस्या और उसके सर्जनात्मक समाधान के बीच कुछ समय बीतता है । ***हेल्महोल्डा (1896)*** ने सर्वप्रथम रचनात्मक चिंतन की अवस्थाओं पर कार्य किया । एक समस्या के हल करने की प्रक्रिया में उन्हें जब कुछ कठिनाई हुई तो उस समस्या पर विचार करना , कुछ समय के लिए उन्होंने स्थगित कर दिया । परन्तु थोड़ा आराम कर लेने के बाद समकस्या का समाधान उन्हें स्वयं मिल गया। जब वे आराम कर रहे थे तब उनका अवचेतन मन उस समस्या के प्रति सक्रिय रहा।

वैलेन्स (1926) के अनुसार – चाहे व्यक्ति सामान्य विधि द्वारा किसी समस्या का समाधान कर रहा हो या रचनात्मक चिंतन कर रहा हो, चिंतन की सम्पूर्ण क्रिया चार मुख्य अवस्थाओं मं बाँटी जा सकती है। ये अवस्थाएँ है–

1. *तैयारी या आयोजन (प्रिपरेशन)*
2. *उद्‌भव या परिपाक (इनकुबेशन)*
3. *प्रदीप्ति या प्रबोधन (इल्युमिनेशन)*
4. *प्रमाणीकरण (वैरीफिकेशन)*

1. ***तैयारी या आयोजन (प्रिपरेषन)*** :– तैयारी या आयोजन रचनात्मक चिंतन का आरम्भिक चरण या पद है । इस पद पर चिंतक विभिन्न घटनाओं को संगठित करता है अर्थात् समस्या से संबंधित आवश्यक तथ्यों एवं प्रमाणों को एकत्रित करता है। समस्या को ठीक ढंग से परिभाषित करके उसके पक्ष तथा विपक्ष में प्रमाण एकत्रित किये जाते है। ऐसा काने में प्रयत्न तथा त्रुटि का सहारा लिया जाता है। ***उदाहरणार्थ –न्यूटन*** ने देखा कि पेड़ से फल जमीन पर ही गिरता है अथवा किसी ऊँचे स्थान से जब कोई वस्तु गिरती है तो वह जमीन की ओर ही जाती है । इस वस्तु स्थिति के आधार पर ***न्यूटन*** ने परिकल्पना बनायी कि पृथ्वी में सभी वस्तुओं को अपनी ओर खींचने की शक्ति होती है। पृथ्वी मं जिस गुरूत्वाकर्षण की शक्ति की उसने कलपना की उस कल्पना की पुष्टि हेतु उसन विभिन्न साक्ष्यों तथा तथ्यों का एकत्रीकरण किया । अतः अपनी परिकल्पना को प्रभावित करने के लिए ही विभिन्न साक्ष्यों तथा तथ्यों का संकलन करना रचनात्मक चिंतन की तैयारी या आयोजन है। समस्या के स्वरूप तथा व्यक्ति के ज्ञान के अनुसार यह अवस्था लम्बे या कम समय की हो सकती है तो यह अवस्था लम्बे समय तक जारी रह सकती है किन्तु यदि समस्या की जटिलता कम है तथा व्यक्ति कम ज्ञान भंडार अधिक परिपक्व है तो यह अवस्था कम समय तक जारी रहती है । सामान्यतः समस्या समाधान इसी बात पर निर्भर करता है कि समस्या विवरण किस ढंग से किया गया और साक्ष्यों को किस प्रकार सकत्र तथा व्यवस्थित किया गया। सर्जनात्मक ढंग से सोचने वाला व्यक्ति बड़े कौ से साक्ष्यों का गठन एवं पुनर्गठन करता है। और समस्या का विवरण व पुनर्विवरण करता है। ***पैट्रिक (1935,1938)*** ने अपने परीक्षण के आधार पर यह दावा किया है कि आयोजन का अधिक या कम समय लगने पर आयु लिंग तथा बुद्धि का प्रभाव पड़ता है।
2. ***उद्‌भव या परिपाक (इनकुबरेषन)***:–किसी भी सर्जनात्मक चिंतन या समस्या समाधान की दूसरी अवस्था उद्‌भव, उद्‌भवन की होती है। इस अवस्था में चिंतक समस्या पर आगे विचार करना बंदकर देता है, इस अवस्था में उसकी निष्क्रियता बढ़ जाती है। जब कई तरह से समस्या समाधान का प्रयास करने के बाद भी सफलता नहीं मिलती है, तब इस अवस्था की उत्पति होती है । इस अवस्था में व्यक्ति समस्या के समाधान के बारे में चिंतन करना छोड़कर या तो सो जाता है या किश्राम करने लगता है । इस अवस्था में समस्या को चेतन मन से हटाकर अवचेतन मन में डाल दिया जाता है। धीरे –धीरे समाधान को अवरूद्ध करने वाले विचार हटने लगते है और दर्शाने वाले विचार लगते है।व्यक्तिगत भेद के कारण यह अवस्था अत्यधिक देर या थोड़ी देर की हो सकती है। व्यक्ति के अनुभव तथा अधिगम तथा अधिगम भी समस्या समाधान में सहायक होते हैं। एक ऐसी अवस्था

आती है जब अचानक समाधान प्रकट हो जाता है और उद्‌भव की अवस्था समाप्त हो जाती है । ***पैट्रिक (1935)*** ने कवियों तथा कलाकारों पर अध्ययन करके इस बात की पुष्टि की है कि सर्जनात्मक चिंतन में उद्‌भव की अवस्था होती है।

3. ***प्रदीप्ति या प्रबोधन (इल्युमिनेशन)*** :– प्रदीप्ति या प्रबोधन समस्या समाधान की तीसरी अवस्था है। इस अवस्था में अचानक व्यक्ति को समस्या का समाधान मिल जाता हैं। उद्‌भव की अवस्था कुछ मिनटों की हो या कुछ वर्षों की जब प्रबोधन प्राप्त होता है तो समाप्त हो जाती है। प्रबोधन वस्तुतः समाधान का अचानक प्रकट होना है। जैसे–बटन दबाने ही अन्धकार में रो"नी फैल जाती है। प्रबोधन की मूल बात यह है कि यह अचानक प्रकट होता है।
4. ***सिलवरमैन (1978)के अनुसार*** :– समस्या समाधान के अकस्मात अनुभव को प्रबोधन कहा जाता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार व्यक्ति में उदभवन की अवस्था के बाद प्रबोधन की अवस्था कमी भी प्रकट हो सकती है यहाँ तक कि कभी –कभी व्यक्ति को स्वप्त में भी प्रबोधन का अनुभव होते पाया गया है। गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों ने इस प्रकार समाधान पाने की क्रिया को सूझ का परिणाम माना है।
5. ***प्रमाणीकरण (वैरीफिकेशन)***:–प्रमाणीकरण सर्जनात्मक चिंतन या समस्या समाधान की चौथी अवस्था है। प्रबोंधान से प्राप्त समाधान का शुद्ध होना आवश्यक नहीं है। इस अवस्था में प्रबोधन से प्राप्त परिणाम का मूल्यांकन किया जाता है । इस अवस्था में व्यक्ति यह देखने की कोशिश करता है कि उसे जो समाधान प्राप्त हुआ है वह ठीक है या नहीं । मूल्यांकन करने के बाद जब व्यक्ति इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि समाधान या निष्कर्ष सही नहीं था तो वह सम्पूर्ण कार्य विधि का संशोधन करता है और पुनः एक दूसरे समाधान की खोज करता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इस अवस्थाओं की आलोचना की है और कहा है कि सभी सर्जनात्मक चिंतन में ये सभी अवस्थाएँ नहीं होती हैं जैसेः– ***सर एलेक्जेण्डर फ्लेमिंग*** जिन्होंने पेनिसिलीन की और ना ही प्रबोधन की अवस्था पायी गयी।

फिर भी हमारे दिन प्रतिदिन के अनुभव तथा अधिकतर वैज्ञानिकों ,कलाकारों तथा कवियों के सर्जनात्मक चिंतन का विश्लेषण इस बात का सबूत है कि इस प्रकार का चिंतन उपर्युक्त अवस्थाओं के अनुसार ही होता है।

रचनात्मक चिंतन का विकास :–

रचनात्मक चिंतन के क्षेत्र में किये गये अनुसंधान इस बात के घोतक हैं कि रचनात्मक चिंतन के विकास में वंश परम्परा तथा वातावरण दोनों ही आवश्यक तत्व है। इतिहास से हमें ऐसे उदाहरण मिलते हैं कि कुछ महापुरूषों ने बाल्यकाल से ही अपनी प्रतिमा तथा रचनात्मकता का परिचय दिया है। अतः हम कह सकते हें कि इस प्रकार की प्रतिमा अवश्य ही वंश परम्परा संबंधी होती चाहिए । रचनात्मक चिंतन के विकास में संस्कृति भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। माता पिता तथा घर का वातावरण रचनात्मक चिंतन को प्रभावित करता है। इस संबंध में ***गेजल्स तथा जैक्सन (1961)*** के अनुसंधान कार्य अति विचारणीय हैं। प्रत्येक स्कूल में यह उददेश्य रखा जाता है कि शिक्षा के आधार पर उस स्कूल के विद्यार्थी अधिक रचनात्मक निकलें । रचनात्मक चिंतन की प्रक्रिया प्रारम्भ करने के लिए विद्यालयों में विद्यार्थियों को प्रोत्साहन दिया जाता है। ***गोल्ड (1965)*** ने रचनात्मक चिंतन को प्रोत्साहित करने के लिए कई संकेतों का परिचय दिया है। जिन्हें विद्यालयों में प्रयोग में लाया जाता है।

4.*आलोचनात्मक चिंतन (इवैलुवेटिव थिंकिंग)* – आलोचनात्मक चिंतन में व्यक्ति किसी वस्तु ,घटना या तथ्य की सच्चाई को स्वीकार करने से पहले उनके गुण दोष परख लेता है। हमारे समाज में कुछ व्यक्ति ऐसे होते हें जिन्हें किसी व्यक्ति, वस्तु या घटना के बारे में जो कुछ भी कहा जाता है। वे उसे उसी रूप में सम्त्यस मानकर स्वीकार कर लेते हैं अतः स्पष्ट है कि उनमें आलोचनात्मक चिंतन क कमअी है जबकी कुछ व्यक्ति ऐसे होते है। जिनके सामने जब कोई भी वस्तु या घटना उपस्थित होती है, तो वो उसके बारे में दोषों को परखते हैं। उसका विभिन्न दृष्टिकोणों से चिंतन करते है तथा फिर उसके आधार पर अपनी राय देते है। इस प्रकार का चिंतन आलोचनात्मक चिंतन का उदाहरण है ।

6. ***प्रत्यात्मक चिंतन (कॉन्सेप्च्युअल थिंकिंग)*** – प्रत्यात्मक चिंतन अन्य प्रकार के चिंतनों की अपेक्षा अधिक जटिल होता है। इसमें मानसिक प्रक्रिया के अन्तर्गत चिंतनकर्ता को अमूर्त्तता और सामान्यीकरण की प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है।इसी चिंतन के आधार पर व्यक्ति स्वयं को वातावरण में व्यवस्थित रखने में समर्थ हो पाता है। वह वातावरण की परिस्थिति का विश्लेषण करता है, उसकी घटनाओं, वस्तुओं और प्रभावों के बीच संबंध का अध्ययन करके नया संबंध देखता है। यह नया संबंध उसका मौलिक चिंतन होता है। यही उच्च चिंतन जिसमें मौलिकता होती है। प्रत्यावर्तन स्तर का सीखना होता हैं और प्रत्यात्मक चिंतन कहलाता है। प्रत्यात्मक चिंतन में प्रत्ययों का विकास होता है।

(अभ्यासार्थ प्रश्न) –

नीचे कुछ कथन दिये गये है। जो कथन सत्य है उनके आगे सही का निशान एवं जो गलत है, उनके आगे क्रास का निशान लगायें।

1. चिंतन एक व्यक्त मानसिक प्रक्रिया है। ( )
2. चिंतन में प्रयत्न एवं त्रुटि की प्रक्रिया सम्मिलित होती है। ( )
3. चिंतन की एक निश्चित दिशा नहीं होती है। ( )
4. चिंतन का संबंध समस्या समाधान से होता है।( )
5. बेरोन के अनुसार चिन्तन में सम्प्रत्ययों, प्रतिज्ञाप्ति एवं प्रतिमाओं का मानसिक जोड़–तोड़ होता है। ( )
6. यथार्थवादी चिंतन का संबंध कल्पनाओं से होता है। ( )
7. अभिसारी चिंतन का सर्वप्रथम प्रतिपादनजाय पॉल गिल्फोर्ड ने किया था। ( )
8. तैयारी उद्‌भव, प्रदीप्ति एवं प्रमाणीकरण रचनात्मक चिंतन की अवस्थायें हैं।( )
9. सृजनात्मक चिंतन की उद्‌ययन अवस्था में व्यक्ति में निष्क्रियता बढ़ जाती है।( )
10. अपसारी चिंतन का प्रतिपादन सर्वप्रथम जाय पॉल गिल्फोर्ड ने किया था।( )

14.6 चिंतन : महत्व

प्रिय विद्यार्थियों चिन्तन के विभिन्न प्रकारों को समझने के उपरान्त अब हम चिंतन के महत्व पर विचार करेंगे। चिंतन के विषय में आपने अब तक जितना समझा उससे आप यह तो

जान ही गये होंगे कि सोचना एक महत्वपूर्ण अव्यक्त मानसिक प्रक्रिया है। जिसके अभाव में मनुष्य की किसी भी क्षेत्र में प्रगति सम्भव नहीं है।

चिंतन के महत्व को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है।

1. व्यक्तित्व का परिचायक –

चिंतन का हमारे व्यक्तित्व से गहरा संबध है।

श्री अरविन्द कहते है कि यदि हम किसी व्यक्ति के विषय में जानना हो तो हम यह पता कर लें कि उसके विचार कैसे है? अर्थात् – यदि उसके विचार उत्कृष्ट है सत् हैं तो वह एक अच्छा इंसान है और यदि विचार निकृष्ट एवं असत् हैं, तो वह एक दुष्ट प्रवृत्ति का व्यक्ति है। अतः हम यह कह सकते है कि जैसे – जैसे हमारे विचारों का स्तर उच्च होता जाता है, वैसे – वैसे हमारा व्यक्तित्व भी श्रेष्ठ एवं विकसित होता है।

2. स्वास्थ्य का आधार –

जिज्ञासु पाठको स्वास्थ्य की दृष्टि से भी हमारे विचारों का अत्यधिक महत्व होता है। विचार दो प्रकार के होते हैं।

1. सकारात्मक या विधेयात्मक या रचनात्मक चिंतन
2. नकारात्मक या विध्वंसात्मक चिंतन

सकारात्मक या अच्छा सोचने से हमारा मन उर्जावान् बना रहता है, उसमें हर पल कुछ नया, कुछ अच्छा करने का उत्साह रहता है। मन में अच्छी – अच्छी कल्पनायें एवं भावनायें उठती है। जिसके परिणामस्वरूप न केवल हमें शारीरिक वरन् मानसिक सामाजिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य की प्राप्ति भी होती है। इसके विपरीत नकारात्मक चिंतन से मन की सारी ऊर्जा व्यर्थ में ही नष्ट हो जाती है तथा विध्वंसात्मक विचारों के रूप में एक नकारात्मक ऊर्जा, दूषित प्राण हमारे शरीर, मन एवं भावनाओं पर अपना अधिकार जमा लेता है। जिससे हमारी आत्मा को भी कष्ट होता है। परिणामस्वरूप व्यक्ति विभिन्न प्रकार के शारीरिक मानसिक तथा भावनात्मक विकारों से (रोगों से) ग्रस्त हो जाता है।

इसलिये वेदों में भी भगवान् से सद्चिन्तन की प्रार्थना की गई है।

आयुर्वेद में भी कहा गया है –

"कल्याणकारी, विघ्नरहित, अप्रतिहत, शुभफलप्रद विचार हमें सभी ओर से प्राप्त है। जिससे आलस्य रहित और रक्षा करने वाले देवता प्रतिदिन सदा ही हमारी समृद्धि करें।"

सामान्य कहावत में भी प्रचलित है कि –

जो जैसा सोचता और करता है, वह वैसा ही बन जाता है।"

3. मानवीय गुण –

चिंतन एक मानवीय गुण है, जो उसे पशुओं से भिन्न करता है अर्थात् पशुओं में सोचने–समझने, विवेकपूर्ण निर्णय लेने की क्षमता नहीं होती। उनका कार्य आहार, निद्रा एवं मैथुन तक ही सीमित होता है। जबकि मनुष्य एक विचारशील प्राणी है। वह हर पल कुछ न कुछ सोचता ही रहता है। वर्तमान समय में मानव समाज ने किसी भी क्षेत्र में चाहे वह सामाजिक राजनीति धार्मिक, वैज्ञानिक, साहित्यिक हो, उन्नति की है, यह चिंतन का

ही परिणाम है। यदि मनुष्य में चिंतन की क्षमता नहीं होती तो आज भी हम बन्दरों की भाँति ही जीवन व्यतीत कर रहे होते। मानवीय सभ्यता एवं संस्कृति का इतना विकास नहीं होता।

अतः स्पष्ट है कि विचार अपने आप में एक बहुत बड़ी शक्ति है। हमारी यह शक्ति किसी अच्छे कार्य में लगे इसके लिये हमें सद्चिन्तन की राह पर चलना चाहियें।

समस्या समाधान –

पाठकों, जैसा कि आप समझ चुके है, चिंतन एक प्रकार का समस्या – समाधान व्यवहार अर्थात् इसके माध्यम से किसी न किसी समस्या समाधान होता है। चिंतन की प्रक्रिया ही उस समय प्रारम्भ होती है। जब व्यक्ति के समक्ष कोई परेशानी आती है और तब तक चलती रहती है। जब तक कि वह परेशानी दूर न हो जायें।

अतः यदि हमारे अन्दर विचार करने की क्षमता नहीं होती तो समस्याओं का समाधान किस प्रकार से होता है।

4. **सीखने में सहायक –** चिंतन से केवल समस्यायें ही दूर नहीं होती है। वरन् विभिन्न प्रकार के कार्यो को सुगमतापूर्वक सीखने में सहायता भी प्राप्त होती है। जिस व्यक्ति का चिंतन जितना रचनात्मक एवं प्रखर होता है, उसकी सीखने की क्षमता भी उतनी ही ज्यादा होती है।

5. **व्यवहार परिवर्तन में सहायक –** चिंतन के द्वारा किसी व्यक्ति की आदतों एवं व्यवहार को भी कुछ हद तक परिवर्तित किया जा सकता है। क्योंकि जैसा एक व्यक्ति का चिंतन होता है, उसी प्रकार की उस व्यक्ति विशेष में भावनायें उठती हैं और उन भवनाओं से प्रेरित होकर ही वह कोई भी अच्छा या बुरा व्यवहार करता है।

   अतः यदि मानव के चिंतन को सकारात्मक दिशा दे दी जाये, तो उसका व्यवहार एवं आदतें भी अच्छी बन सकती है।

6. **प्रगति एवं विकास का आधार –** मानवीय प्रगति एंव विकास का आधार भी चिंतन ही है। जिस दिन मनुष्य विचार करना बंद कर देगा, उस दिन उसकी विकास की गाडी भी रूक जायेगी। किन्तु, इस संबध में यह ध्यान देना आवश्यक है कि समृद्धि एवं विकास के लिये हमें हमेशा रचनात्मक, विधेयात्मक चिंतन करना चाहिये, नकारात्मक नहीं। नकारात्मक चिंतन हमें विध्वंस की ओर लेकर जाता है। जबकि विधेयात्मक चिंतन, सृजन, विकास एवं समृद्धि की ओर। इसलिये विश्व मानवता के कल्याण हेतु सद्चिन्तन करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है।

   पाठकों, अतः स्पष्ट है कि मानव जीवन में चिंतन का अत्यधिक महत्व है। जिसको शब्दों की सीमा में व्यक्त करना अत्यधिक कठिन है।

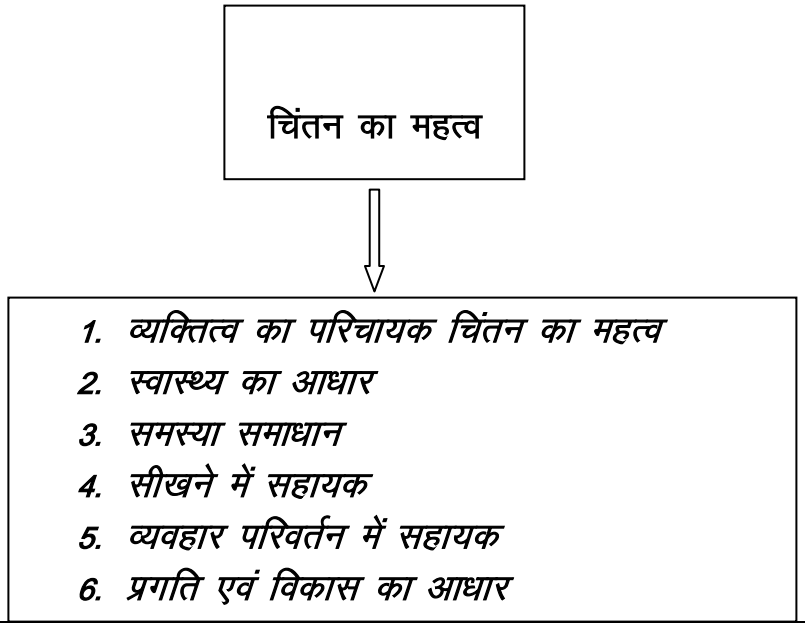

14.7 सारांश–

1. चिन्तन प्रत्येक प्राणी में होने वाली एक अव्यक्त मानसिक प्रक्रिया है, जो समस्या समाधान की ओर उन्मुख होती है।
2. चिंतन लक्ष्य निर्देशित होता है अर्थात् इसकी एक निश्चित दिशा होती है।
3. चिंतन का संबंध समस्या समाधान से होने के कारण इसमें प्रयत्न एवं त्रुटि की प्रक्रिया शामिल होती है।
4. चिंतन प्रक्रिया तीनों कालों भूत, वर्तमान, एवं भविष्य से सम्बद्ध होती है।
5. जिम्बार्डो तथा रूक (1977) ने चिन्तन के निम्न दो प्रकार बताये हैं–
   - *अ. स्वली चिंतन*
   - *ब. यथार्थवादी चिन्तन*

6. यथार्थवादी चिन्तन को मनोवैज्ञानिकों ने पाँच भागों में वर्गीकृत किया है जो निम्न हैं–
   1. *अभिसारी चिन्तन*
   2. *अपसारी चिन्तन*
   3. *रचनात्मक चिन्तन*
   4. *आलोचनात्मक चिन्तन*
   5. *प्रत्यात्मक चिन्तन*
7. रचनात्मक चिन्तन के मुख्यतः चार चरण हैं–
   1. *तैयारी या आयोजन (Preparation)*
   2. *उद्‌भव या परियाक (Incubation)*
   3. *प्रदीप्ति या प्रबोधन (Ilumination)*
   4. *प्रमाणीकरण (Verification or Revision)*
8. मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रयोगों के माध्यम से चिंतन में तत्परता के महत्व को स्पष्ट किया है। सही एवं उचित तत्परता से समस्या समाधान हेतु चिंतन में

सहायता मिलती हैं, इसके विपरीत अनुचित तत्परता से चिंतन में बाधा उपस्थित होती हैं।

9. विभिन्न प्रयोगों के माध्यम से मनोवैज्ञानिकों ने चिंतन में भाषा के महत्व को भी स्वीकार किया है।

14.8 शब्दावली –

चिंतन – सोचने की प्रक्रिया

अव्यक्त– जिसे प्रत्यक्ष रूप से देखा ना जा सके।

सम्प्रत्यय– अवधारणा

यथार्थवादी– वास्तविक

प्रत्यात्मक– अवधारणात्मक

तत्परता– एक ऐसी मानसिक स्थिति जिसके सहारे प्राणी समस्या का समाधान करने की कोशिश करता है।

14.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.गलत 2.सही 3.गलत 4.सही 5.सही 6. गलत 7.सही 8. सही 9. सही 10.सही

14.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. सिंह, अरूण कुमार, (2006) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड जवाहर नगर, दिल्ली।
2. सिंह, अरूण कुमार, (2006) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगालो रोड, जवाहर नगर दिल्ली।
3. अर्जीमुर्र रहमान, (2003) सामान्य मनोविज्ञान : विषय और व्याख्या।
4. श्रीवास्तव, रामजी, आलम, आसिम (2004) आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान।
5. श्रीवास्तव, रामजी। (2003), संज्ञानात्मक मनोविज्ञान।

14.11 निबंधात्मक प्रश्न–

प्रश्न.1 चिन्तन को परिभाषित हुये इसके स्वरूप पर प्रकाश डालें।

प्रश्न. 2 रचनात्मक चिंतन से आप क्या समझते है ? इसकी विशेषताओं एवं अवस्थाओं का विवेचन कीजिए।

प्रश्न. 3 चिन्तन के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिये।

प्रश्नः 4 चिन्तन के महत्व का विवेचन कीजिये।

इकाई– 15 समायोजन – परिभाषा, समायोजन का महत्व, कुसमायोजन के कारण एवं निवारण।

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 समायोजन

15.3.1 समायोजनः अर्थ एवं परिभाषा

15.3.2 समायोजन का महत्व

15.4 कुसमायोजन

15.4.1 कुसमायोजन के प्रारंभिक लक्षण

15.4.2 कुसमायोजन के कारण

15.4.3 कुसमायोजन के निवारण के उपाय

15.5 सारांश

15.6 शब्दावली

15.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

15.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

15.9 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावनाः–

पाठकों, इससे पूर्व की इकाईयों में आपने स्मृति क्षमता एवं चिंतन का अध्ययन किया है, प्रस्तुत ईकाई में हमारे अध्ययन का विषय है– समायोजन पाठकों , मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहता है, समाज के विभिन्न लोगों के साथ सम्पर्क स्थापित करता है। संबन्ध बनाता है तथा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। प्रत्येक प्राणी करे दो प्रकार से समायोजन करना पड़ता है। एक अपने आन्तरिक वातारण के साथ और दूसरा अपने बाहय वातावरण के साथ ज बवह इन दोनों स्तरों पर उचित तालमेल बना पाता है। तो वह अपने आपकों सुखी महसूस करता है और जब इसके विपरित समायोजन में बाधा होती है, तो अपने आपको कुंठित पाता है। परिणाम स्वरूप उसे दुखः एवं परेशानियों का सामना करना पड़ता है कि व्यवहारिक जीवन में सफल होने के लिये हमारी समायोजन क्षमता का अच्छा होना अत्यधिक आवश्यक है। अच्छी समायोजन क्षमता ही हमारे अच्छे मानसिक स्वास्थ्य का आधार होती है। अतः यह समायोजन क्षमता क्या है तथा किस प्रकार से इसे उन्नत बनाया जा सकता है। इस सभी विषयों के बारे में हम इस ईकाई में अध्ययन करेंगे।

15.2 उद्देश्य

पाठकों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप–

- समायोजन क्या है ? इसे स्पष्ट कर सकेंगे।
- समायोजन विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण कर सकेगे।
- समायोजन के स्वरूप को स्पष्ट कर सकेंगे।
- समायोजन के महत्व का विवेचन कर सकेंगे।
- कुसमायोजन क्या है ? इसका वर्णन कर सकेंगे।
- कुसमायोजन के लक्षणों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- कुसमायोजन को दूर करने के उपायों का वर्णन कर सकेंगे।

15.3 समायोजन

प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी सामाजिक वातावरण में रहता है। इस वातावरण से ही उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति होंती है। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह अपनी भौतिक व सामाजिक वातावरण के साथ सम्पर्क स्थापित करता है। जब तक कि उसकी किसी आवश्यकता की पूर्ति न हो जाती ,वह उसकी पूर्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है। व्यक्ति की इच्छाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति कभी यरल ढंग हो जाती है और कभी उसकी इन आवश्यकताओं की पूर्ति में बाधा का सामना करना पड़ता है या समय अधिक लगता है। आवश्यकताओं की पूर्ति में बाधा आ जाने या समय अधिक लगने से एसमें बेचैनी व तनाव उत्पन्न हो जाते है। वह कभी क्रोधित होता है और कभी दुःख व निराशा का अनुभव करता है। जब वह बाधओं को पार कर लेता हैं तथा उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है तो उसके सारे दुःख व निराशा समाप्त हो जाते है। कभी–2 ऐसा भी होता है कि व्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो पाती ऐसी स्थिति में वह व्यक्ति कुंठा

महसूस करता है। लम्बी अवधि तक उेसी स्थिति में रहने पर व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य पर विपरित प्रभाव पड़ता है तथा वह कुसमायोजन का शिकार हो सकता है। कुछ परिस्थितियों और कुछ लोंगों के साथ उसे प्रसन्नता तथा सन्तुस्टि का अनुभव होता है। इसके साथ उसका समायोजन अच्छा होता है जबकि कुछ दसाओं में और कुछ लोंगों के साथ उसे अप्रसन्नता और असंतुष्टि मिलती है। इसके साथ उसका समायोजन अचछा नहीं होता है। प्रत्येक व्यक्ति का वर्तमान और भविष्य का जीवन सुखी और आन्नददायक तभी हो सकता है जब उसका व्यवहार समायोजित हो।

15.3.1 समायोजनः अर्थ एवं परिभाषा

एक छात्र कक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करना अपना लक्ष्य बनाता है। किन्तु कुछ कारण वश वह कक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त नहीं कर पाता है। ऐसी स्थिति में वह निराश हो जाने बजाय अपने अध्ययन में रह जाने वाली कमियों का निरीक्षण करता है तथा उन्हें दूर करता है। पुनः पूरी तरह से अध्ययन में जुट जाता है और अगले आने वाली परीक्षा में वह कक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त कर लेता है। अतः स्पष्ट है कि उसने अपनी परिस्थितियों और वातावरण के साथ समायोंजन कर लिया । सामान्यतः समायोजन का तात्पर्य व्यक्ति का स्वयं को परिस्थितियों के अनुसार ढालने से होता है परन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इनका अर्थ इससे कुछ भिन्न होता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से समायोजन से तात्पर्य बालक अथवा व्यक्ति द्वारा अपनी आवश्यकताओं, आकांक्षाओं और अपनी परिस्थितियों के बीच सामंजस्यपूर्ण सन्तुलन बनाए रखने से होता हैं। लक्ष्य प्राप्ति के लिए परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाना या परिस्थितियों के अनुकूल हो जाना ही समायोजन है। यह समायोजन व्यक्ति अपनी क्षमता और योग्यता के अनुसार करता है।

समायोंजन के आर्थ को और अधिक स्पष्ट करने के लिए कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार हैं–

बोरिंग, लैंगफेल्ड तथा वेल्ड के अनुसार, '' समायोंजन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्राणी अपनी आवश्यकताओं और इन आवश्यकताओं की पूर्ति को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों में सन्तुलन करता है।''

गेट्स तथा अन्य के अनुसार, '' समायोजन निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति और वातावरण के मध्य समंजस्यपूर्ण संबंध बनाए रखने हेतु अपने व्यवहार में परिवर्तन करता है।''

विलियम क्लार्क ट्रो के अनुसार, '' समायोजन वातावरण से ऐसा सामंजस्यपूर्ण संबंध है, जो व्यकित की अधिकांस आवश्यकताओं की पूर्ति समाज द्वारा स्वीकृत तरीकों से करता है और इसका परिणाम व्यवहार के उन विभिन्न रूपों में दिखाई पडता है, जो कि निश्क्रिय अनुमोदन से लेकर सक्रिय समर्थन की अधिसीमा के अन्तर्गत होते हैं।''

कोलमैन के अनुसार, '' समायोजन अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए तथा खिंचवों से निपटने के लिए व्यक्ति द्वारा किए गए प्रयासों का परिणाम है।''

स्किनर के अनुसार,'' समायोजन एक अधिगम प्रक्रिया है।''

शेफर के अनुसार,'' समायोजन वह प्रक्रिया है जिसके सहायता से कोई जीवित प्राणी आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली स्थितियों तथा आवश्यकताओं के बीच संतुलन स्थापित करता है।''

वीटेन तथा ल्वायड (2003) के अनुसार,'' समायोजन मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया ह, जिसके द्वारा कोई व्यक्ति जीवन में आने वाली आवश्यकताओं और चुनौतियों का सामना करता है।''

लाल एवं जोषी (2008) के अनमसार,'' समायोजन से तात्पर्य व्यक्ति द्वारा अपनी आवश्यकताओं आकांक्षाओं और परिस्थितियों (अपनी योग्यता, क्षमता एवं अपने पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक धार्मिक एवं राजनैतिक पर्यावरण) के बीच सामंजस्यपूर्ण संतुलन बनाए रखने से होता है। समायोजित व्यक्ति तनाव रहित जीवन जीता है।''

इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि समायोजन निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। साथ ही समायोजित करने के लिए अपने व्यवहार में परिवर्तन करता है। अतः समायोजन मनुष्य की एक सन्तुलित दशा है।

शैफर एवं शोवेन ने समायोजन की प्रक्रिया का विश्लेषण करके इसके निमन पाँच चरण निर्धारित किये हैं–

(1) समायोजन की प्रक्रिया के प्रथम चरण का संबंध व्यक्ति के द्वारा किसी लक्ष्य की प्राप्ति करना है, जिससे वह अभिप्रेरित होता है।

(2) दूसरे चरण में व्यक्ति और उसके वातावरण के मध्य अनेक बाधाओं का आनसा है।

(3) तीसरे चरण में व्यक्ति बाधाओं को दूर करने का प्रयास करता है। असफलता मिलने पर भी प्रयत्नशील रहता है।

(4) चौथ चरण में व्यक्ति सफलता प्राप्त करने हेतु अपने लक्ष्य एवं व्यवहार में संशोधन करके सफलता के उपाय ढूँढता है, जिससे बाधाओं का सामना नहीं करना पड़े।

(5) पाँचवे चरण में वह बाधाओं पर विजय प्राप्त करके अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। जिससे उसे संतोष मिलता है।

समायोजन की व्याख्या–

मनोवैज्ञानिकों ने समायोजन की व्याख्या दो दृष्टिकोणों से की हैः–

(क) समायोजन – एक निष्पत्ति के रूप में

(ख) समायोजन – एक प्रक्रिया के रूप में

प्रथम दृष्टिकोण समायोजन की कार्यकुशलता पर बल देता है और दूसरा दृष्टिकोण उस प्रक्रिया की ओर संकेत करता है , जिससे मनुष्य वाह्य वातावरण के साथ समायोजन करता है।

(क) समायोजन एक निष्पत्ति के रूप में

निष्पत्ति के रूप में समायोजन का अर्थ है कि व्यक्ति कितनी कुशलता के साथ विभिन्न परिस्थितियों में अपने कर्तव्यों का पालन कर सकता है। व्यापार, सेना तथा शिक्षा के क्षेत्र में ऐसे विकास कर सकते हैं।

(ख) समायोजन एक प्रक्रिया के रूप में

एरिक्सन(1963) का कथन है कि समायोजन एक जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। **हेबर तथा रूनयान (1984)** ने बताया कि समायोजन की प्रक्रिया इस बात पर निर्भर करती है कि कोई व्यक्ति कितनी कुशलता से हमेशा परिवर्तित होने वाली परिस्थितियों का सामना करता है तथा धीरे–2 बड़ा होता है। जब बच्चा पैदा होता हैकिन्तु परिपक्वता के साथ उसमें स्वतः ही समायोजन विकसित होता जाता है किन्तु जब कोई संघर्ष की स्थिति आन्तरिक आवश्यकताओं तथा वाह्य भागों के द्वारा उत्पन्न होती है, तो व्यक्ति के समक्ष तीन विकल्प होते है–

1) व्यक्ति अपनी आन्तरिक आवश्यकताओं या माँग का दमन करे।

2) वह वातावरण में अपनी आन्तरिक आवश्यकताओं और मांगों की पूर्ति के लिए वांछित परिवर्तन करे।

3) वह प्रतिरक्षात्मक युक्तियों का प्रयोग संघर्ष की स्थिति से बचने और व्यक्तिगत को संतुलित बनाए रखने के लिए करें।

समायोजन वास्तव में जीवन के साथ–2 चलने वाली प्रक्रिया कही जाती है। यदि समायोजन या सन्तुलन नहीं रहता है तो जीवन की सुधरता समाप्त हो जाती है। इसे स्पष्ट करते हुए **बैट और उनके सहयोगी लेखकों ने बताया है** '' समायोजन लगातार चलने वाली प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने और अपने पर्यावरण के बीच अधिक समरूप संबंध रखने के लिए व्यवहार मे परिवर्तन करता है।'' इस प्रकार समायोजन के कारण मनुष्य का व्यवहार बदलता है और इस परिवर्तन में उसके व्यवहार में सुधार और संगठन होता है।

15.3.2 समायोजन का महत्व– समायोजन को मनोवैज्ञानिकों ने एक जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया कहा है, जिसका महत्व जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दृष्टिगोचर होता है। व्यक्ति का स्वयं के साथ जीवन में हर पल बदलने वाली परिस्थितियो के साथ परिवार तथा समाज में रहने वाले व्यक्तियों के साथ तालमेल बिठाने में समायोजन का महत्व दृष्टिगोचर होता है। जो व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं तथा उन आवश्यकताओं की परिस्थितियो अर्थात् पर्यावरण के मध्य संतुलन स्थापित कर लेते हैं, उनके व्यक्तित्व का एकीकृत विकास होता है।

समायोजन का महत्व निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है–

1) संतुलित व्यक्तित्व के विकास में–

जो व्यक्ति अपने जीवन में आवश्यकताओं तथा पर्यावरण में समांजस्य स्थापित कर लेते हैं, उनके व्यक्तित्व का संतुलित विकास होता है। व्यक्ति विकास के कई आयाम होते हैं। यदि व्यक्ति किसी एक आयाम में अन्य आयामों से अधिक विकास कर ले तो वह सन्तुलित विकास नहीं होता है। समायोजित व्यक्तित्व अपने व्यक्तित्व के सभी पक्षों का सन्तुलित विकास करता है।

2) तनाव में कमी – मानसिक रोग तनाव की अधिकता के परिणाम है। तनाव से ही व्यवहारों में असामान्यता उत्पन्न होती है। वर्तमान युग में कोई भी व्यक्ति तनाव से नहीं बचा है किन्तु समायोजन के द्वारा व्यक्ति अपने तनाव को कम कर सकता है।

3) आवश्यकता तथा पर्यावरण में सामंजस्य

समायोजन व्यक्ति की आवश्यकताओं तथा पर्यावरण के मध्य संतुलन बनाए रखने में मदद करता है। समायोजन के द्वारा व्यक्ति पर्यावरण के अनुसार ही अपनी आवश्यकताओं की संतुष्टि करता है। पर्यावरण के अनुसार ही उसे आवश्यकताओं की पूर्ति में न तो अधिक बाधाओं का सामना करना पड़ता है और न ही उसे अधिक तनाव ही होता है।

4) सामाजिकता की भावना का विकास –

जब व्यक्ति दूसरे को सम्मान देता है, उनकी भावनाओं को समझता है और तदनुरूप आचरण करता है तो उसमें सामाजिकता की भावना का विकास होता है एसमें स्वयं को समाज का एक अविच्छिन्न अंग समझने की भावना विकसित होती है।

5) मनोवैज्ञानिक शांति–

जब व्यक्ति दूसरों को सम्मान देता है उनके दुःख सुख में भागीदारी करता है , उनकी मदद करता है, परिस्थितियों के साथ सामंजस्य स्थापित कर लेता है तो इससे उसमें तनाव कम होता है व वह एक प्रकार की मनोवैज्ञानिक शांति का अनुभव करता है।

6) सामाजिक स्वीकृति–

समायोजन व्यक्ति को सामाजिक स्वीकृति प्रदान करता है। जब व्यक्ति समाज के मानकों, मूल्यों, विवासों के अनुरूप आचरण करता है, तो समाज उसे एक अच्छे नागरिक के रूप में स्वीकार कर लेता है। अतः समायोजन व्यक्ति को सामाजिक स्वीकृति दिलवाता है।

7) कार्य की कुशलता–

जब व्यक्ति जीवन में घटित होने वाली विभिन्न परिस्थितियों के साथ सामंजस्य स्थापित कर लेता है तो इससे वह दिये जाने वाले हर कार्य को बड़ी ही कुशलता के साथ पूर्ण कर पाता है। अतः समायोजन व्यक्ति को कार्य कुशलता में भी मदद करता है।

8) आत्म सन्तुष्टि का विकास–

समायोजन व्यक्ति को आन्तरिक रूप से सन्तुष्ट बनाता है। जब व्यक्ति को सामाजिक अनुभव प्राप्त होते है तथा वह प्रत्येक कार्य को बड़ी ही कुशलता के साथ पूर्ण कर लेता है तो वह स्वयं को आत्मसन्तुष्ट अनुभव करता है।

9) प्रसन्नता की अनुभूति–

समायोजन व्यक्ति में प्रसन्नता का विकास करता है। प्रसन्न होने के लिए आवस्यक है कि व्यक्ति अभिवृद्धि करती है।

10) उत्तरदायित्व की भावना का विकास–

जब व्यक्ति आने वाली हर समस्या का समाधान कुसलता पूर्वक कर लेता है तो इससे उसमें उत्तरदायित्व का बोध विकसित होता है। वह मातापिता अध्यापकों, सहपाठियों व मित्रों द्वारा दिये जाने वाले कार्य को करना अपना उत्तरदायित्व की भावना विकसित होती है।

11) आत्म विश्वास में अभिवृद्धि–

जब व्यक्ति आने वाली हर समस्या का समाधान कुशलतापूर्वक कर लेता है तब इससे उसके आत्मविश्वास में अभिवृद्धि होती है । अतः समायोजन व्यक्ति के आत्मविश्वास को विकसित करता है।

12) सकारात्मक जीवन दृष्टि का विकास –

समायोजन से व्यक्ति में जीवन के प्रति सही सोच तथा धनात्मक रवैये का विकास होता है। सकारात्मक जीवन दृष्टि के विकास में उसका स्वयं परिस्थितियों तथा व्यक्तियों के साथ तालमेल एक सकारात्मक जीवन दृष्टि का विकास करता है।

13) परिस्थितियों को अपने अनुसार ढालने की क्षमता का विकास–

समायोजन के माध्यम से व्यक्ति परिस्थितियों का निर्माण अपने अनुकूल करने की क्षमता विकसित कर लेता है।

14) मानसिक स्वास्थ्य में अभिवृद्धि–

समायोजन तथा मानिसक स्वास्थ्य एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। विभिन्न शोध निष्कर्षो से यह स्पष्ट हो चुका है कि जो व्यक्ति मानसिक रूप से जितना स्वस्थ उसका समायोजना भी उतना ही श्रेष्ठ होगा उसी प्रकार जो व्यक्ति जितना ही सामंजस्य स्थापित कर लेता है वह उसी प्रकार मानसिक स्वास्थ्य भी प्राप्त कर लेता है।

उपरोक्त वर्णित सभी तथ्यों से समायोजन का महत्त्व स्पष्ट है।

15.4 कुसमायोजन

समायोजन के साथ ही कुसमायोजन की समस्या भी पायी जाती है। समायोजन में व्यवहार की समरूपता एवं सन्तुलन पाया जाता है। जब यह समरूपता तथा संतुलन नहीं होता है तो वहाँ कुसमायोजन होता है। समायोजन एक प्रकार का धनात्मक संगठन है और कुसमायोजन ऋणात्मक संगठन है। कुसमायोजन में व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं, आकांक्षाओं और परिस्थितियों के बीच सामन्जस्यपूर्ण संबंध बनाने में असफल होने पर उत्पन्न मानसिक तनाव के कारण अपनी पारिवारिक व सामाजिक माप्यताओं से हटकर व्यवहार करता है। जैसे– कोई बालक अपनी स्वयं की योग्यता एवं क्षमता से अधिक शैक्षिक योग्यता प्राप्त करने की आकांक्षा करता है और साथ ही उसकी पारिवारिक, सामाजिक एवं शैक्षिक परिसिथतियाँ ाी उसकी आकांक्षा पूर्ति में सहायक नहीं होती है और वह असफल हो जाता है और इस स्थिति में वह अपने समूह में अपना स्थान बनाने के लिए दादागिरी करता है अथवा कोई अवांछनीय व्यवहार करता है तो मनोवैाानिक भाषा में यह अन्यथा व्यवहार कुसमायोजन कहलायेगा।

कुसमायोजन बालक अथवा व्यक्ति प्रायः असामाजिक व्यवहार करते हैं और हीन भावना से ग्रसित होते हैं। अत5 कहा जा सकता है कि बालक या व्यक्ति का अपने आपास के पातावरण के साथ मेल न कर पाना ही कुसमायोजन पर प्रकाश डालते हुए ड्रेवर ने लिखा है कि '' कुसमायोजन किसी व्यक्ति की वह दशा है जो अपने भौतिक, व्यावसायिक तथा सामाजिक र्यावरण के साथ अनुकूलन या व्यवस्थापन र्प्याप्त रूप से करने में असमर्थ हामता है– सामान्तः उसके संवेगात्मक जीवन तथा व्यवहार पर प्रभाव के साथ।''

गेट्स और अन्य लेखकों ने समायोजन को इस प्रकार बताया है– '' कुसमायोजन व्यक्ति और उसके वातापरण में असमरूपता की ओर संकेत करता है।''

इन परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि व्यक्ति कुसमायोजन के कारण वातावरण के साथ अुकूलन नहीं कर पाता है और उसमें एक प्रकार का संवेगात्मक और व्यवहारत्मक असंतुलन उत्पन्न हो जाता है जिसका प्रत्यक्ष प्राव जीवन पर पड़ता है। इस प्रकार व्यक्ति का वातावरण के प्रति ऐसा व्यवहार जो न तो उसके भीतर के द्वप्द का ठीक समाधान करता है न सामाजिक स्वीकृत प्राप्त करता है, कुसमायोजन कहलाता है।

15.4.1 कुसमायोजन के प्रारंभिक लक्षण

कुसमायोजन के प्रारम्भिक लक्षण–

व्यक्ति द्वारा किये जाने वाले कुछ असंगत व्यवहार ऐसे होते हैं जिनके भली भांति निरीक्षण द्वारा कुसमायोजन का पता लगाया जा सकता है।

1) शारीरिक लक्षण–

शारीरिक लक्षणों में तुतलाना, हकलाना सिर खुजलाना, नाखुन कुतरना, पैर हिलाना, बेचैनी, ऊँगलियों को बजाना तथा उल्टी करना आदि व्यवहार आते हैं।

2) व्यवहार संबंधी लक्षण–

आक्रामकता, प्रत्येक से बुरी तरह लड़ना, करना, नींद न आना, लेटना, धमकाना, विद्यालय की उपलब्धि में कमी, बसामाजिकता , तथा योनि संबंधी समस्यएँ।

3) संवेगात्मक लक्षण –

अतयधिक संवेदनशीलता, अत्यधिक चिंता , भय हीनता , अत्यधिक दब्बूपन, हीनता की भावना , मानसिक तनाव, सांवेगिक आस्थिरता।

ऊपर वर्णित लक्षणों के आधार पर कुसमायोजन व्यक्ति का पता लगाया जा सकता है।

15.4.2 कुसमायोजन के कारण

कुसमायोजन मानवीय व्यवहार की एक जटिल समस्या है। किसी विशेष कारक को हम कुसमायोजन का कारण हो सकते हैं। कारणों की दृष्टि से कुसमायोजन के अनेक कारण हो सकते हैं। कभी इन कारणों का संबंध घर से होता है, कभी स्कूल से , कभी उस वातावरण से जिसमें विद्यार्थी रहता है। कभी विद्यार्थी स्वयं ही कुसमायोजन का सबसे बड़ा कारण होता है। वह स्वयं ही समायोजित नहीं हो पाता है। इस प्रकार कुसमायोजन का संबंध विद्यार्थी का स्वयं व्यवहार और उसका वातावरण होता है। सामान्यतः कुसमायोजन के निम्नलिखित कारण होते हैं–

1) शारीरिक बनावट–

बालक के सामाजिक विकास में उसके शरीर तथा इसके सामान्य प्रभाव का महत्व अधिक है। यदि बालक शारीरिक रूप से कमजोर , भद्दा है और उसकी ज्ञानेन्द्रियों में भी कुछ दोष हैं, तो वह दूसरों के घर पसन्द नहीं किया जाता है।

मनोवैज्ञानिक गिलबर्अ ने अपने अध्ययन में कि जो बच्चे शारीरिक रूप से कुरूप तथा विकलांग होते हैं, उनका व्यवहार कुसमायोजित हो जाता है। माता–पिता, शिक्षक तथा सहपाठियों की टिप्पणियाँ एंसं बालकों के व्यवहार को प्रभावित करती है।

2) मनोवैज्ञानिक न्यूनता–

जिन बच्चों में बुद्धि की कमी होती है तथा स्मृति, चिंतन एवं समस्या समाधान की मानसिक योग्यतायें कम होती है, वे अपने अध्ययन कार्य में पिछड़ जाते हैं और शैक्षिक दृष्टि से अपने समूह में पीछे रह जाते है। इन सबके कारण उनमें भय , चिन्ता , हीनता की भावना जैसी नकारात्मक भावनाएँ एवं संवेग विकासित हो जाते है और वे कुसमायोजन की ओर बढ़ जाते हैं।

3) लम्बी बीमारी तथा चोट–

जब बालक को किसी दुर्घटना के कारण किसी प्रकार की शारीरिक चोट लग जाती है जो मरने में लम्बा समय लेती है अथवा बालक लम्बे समय तक बीमार पड़ जाता है तो इससे भी उसमें कुसमायोजन का विकास हो जाता है।

4) पारिवारिक स्थिति–

मनोवैज्ञानिक अध्ययनों के परिणाम बताते हैं कि जिन परिवरों की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं होती है उनकी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती है एंसं बच्चे जब अपने साथियों के बीच पहुँचते हैं और उन्हें अच्छे –2 कपड़े व मँहगी वस्तुओं का प्रयोग करते देखते हैं तो इससे उनमें हीन भावना का विकास हो जाता है जो उन्हें कुसमायोजन के ओर ले जाता है।

5) माता–पिता की बच्चों से अत्यधिक अपेक्षाएँ–

जो माता–पिता अपने बच्चों से उनकी क्षमता एवं योग्यता से अतिधक अपेक्षा करते हैं और बज बच्चे उन लक्ष्यों को प्राप्त करने में असफल होते है। तब वे कुसमायोजन की ओर बढ़ जाते है।

6).माता पिता की अपर्याप्तता :–

कभी 2 माता पिता की कमियों के कारण भी कुसमायोजन की समस्या उत्पन्न कहोती है। कई परिवारों में माता पिता आपस में झगड़ा करते हैं , एक दूसरे की कभवरओं का सम्मान नहीं करते अथवा ऐसे माता पिता के बच्चे माता पिता से प्र्याप्त स्नेह न तिल पाने के कारण तथा प्र्याप्त मार्गदर्शन न मिल पाने के कारण कुसमायोजन व्यवहार विकसित कर लेते है।

कई परिवारों में माता पिता के मध्य तलाक हो जाता है अथवा अन्यस कारणें से उनके मध्य संबंध विच्छेद हेा जाता है। तब ऐसे बालक या तो माता के पास रहते है। अथवा पिता के पास जिससे दोनों का प्सार न तित्रमल पाने के कारण ,ये बालक अकलापन तथा क्षुब्धता अनुभव करते है ,कुसमायोजन की ओर बढ़ जाते है।

कई बार ामाता पिता में से जतब किसी की मृत्यु हेा जाती है तब इससे भी बच्चे क्षुब्ध हो जाते हैं। और उनका व्यवहार कुसमायेजित हो जाता है।

7) सामाजिक तथा धार्मिक बन्धनः–

बच्चे जिस परिवा और समाज में रहते है , उन्हें उनकी सामाजिक एवं धार्मिक मान्यताओं के अनुकूल आवरण क्रना होता है। किशोरावस्था में बच्चे जब तर्क के आधार पर अपनाव्सहार करने तगते है तो इससे कभी 2 धार्मिक एवं सामाजिक मान्यताओं उनके निर्णयों में टकराव पैदा हो जाता है और यह टकराव उन्हें कुसमायोजन की ओर प्रवृत्त कर देता है।

8) बालक बालिकाओं में अन्तर :–

कुछ माता पिता बालक बालिकाओं में अन्तर करते है और बालकों को वरीयता प्रदान करते है।। लड़कियाँ स्वयं को उपेक्षित कहसूस करती हैं। माता पिता का यह पक्षपात पूर्ण व्यवहार भी कुसमायोजन के लिए जिम्मेदार है।

9. विद्यालयी पर्यावरण :–

यदि बच्चों को विद्यालय में आवश्यक साधमल उपलब्ध नहीं होते और ऊँपर से उपके शिक्षक उपके साथ निरंकुश शासक सा व्यवहार करते हैं तो उनमें क्रोध की उत्पत्ति हो जाती है । क्रोध की स्थिति में वे कुसमायोजित व्यवहार प्रारम्भ कर देते है।

10) भविष्य की चिन्ता –

बच्चों विशेषकर किशोरावस्था के बच्चों को अपने भविष्य की सताने लगती है और जिन बच्चों को अपना भविष्य अंधकारमय दिखई देता है, वे विचलित हो जाते है और कुसमायोजन की ओर प्रवृत्त हो जाता है।

11) संवेगात्मक धक्के –

वे बालक जो मृत्यु, दुर्घटना, बाढ़ तथा दंगों के कारण संवेगात्मक धक्का का अनुभव करते हैं उनको समायोजन करने में कठिनाई होती है।

12) पाठ्यक्रम की अति सरलता या अति दुरूहता–

कई विद्यालयों में पढ़ाया जाने वाला पाठ्यक्रम बच्चों की मानसिक क्षमताओं को ध्यान में रख कर नहीं बनाया जाता या तो वह इतना सरल होता है कि छात्र उसे बिना किसी श्रम के ही हल कर लेते हें अथवा इतना कठिन कि पाठ्यक्रम को समझ पाना बच्चों की सामर्थ्य के बाहर होता है , दोनों ही अवसीाओं में बच्चे क्षुब्धता अनुभव करते हैं और कुसमायोजित व्यवहार करना प्रारम्भ कर देते हैं।

13) पाठ्यक्रम की विषय वस्तु में जीवनोपयोगी सामग्री का अभाव–

किसी भी पाठ्यक्रम को जब इस प्रकार निर्मित किया जाता है कि उसका ज्ञान बच्चों के जीवन में आने वाली कठिनाईयों के समाधान में सहायक हो सके तो बच्चे उसे रूचिपूर्वक पढ़ते व समझते हैं किन्तु जब पठक्रम की संरचना ऐसी होती है जिसे बच्चे अपने जीवन में घटित घटनाओं के साथ नहीं जोड़ पाते तब एसका अध्ययन उन्हें निरर्थक समय बर्बाद करने वाला प्रतीत होता है, जो छात्रों में कुसमायोजित व्यवहार विकसित कर देता है।

14) शिक्षकों का पक्षपातपूर्ण रवैया–

कई बार शिक्षक पक्षपातपूर्ण रवैया अपना लेते हैं, कुछ छात्रों पर वे अधिक ध्यान देते हैं, उन्हें अच्छी पुस्तकों , नोटस आदि उपलब्ध करवा देते हैं जबकि अन्य छात्रों को उपेक्षित करने के साथ कोई उचित मार्गदर्शन प्रदान नहीं करते यहाँ तक कि परीक्षाओं में भी अपने प्रिय छात्रों को अधिक अंक प्रदान कर देते हैं अससे भी इन छात्रों में हीनता की भावना विकसित हो जाती है और वे अभद्रता पर उतर आते हैं।

15) शिक्षक का चरित्र–

यदि शिक्षकों का चरित्र इस प्रकार का है कि अपने विद्यार्थियों से अपने साथ के अध्यापकों की निन्दा करते हैं, अपशब्द कहते हैं अथवा एक विद्यार्थी से दूसरे विद्यार्थी की बुराई करते हैं। इससे बच्चों में अनिश्चितता की भावना का विकास हो जाता है, उन्हें लगता है कि शिक्षक अवश्य ही उसके सहपाठियों से उसकी बुराई करता होगा जो कुसमायोजन का एक कारण है।

16) भावनाओं को अभिव्यक्त ना कर पाना–

बच्चों में अनेक भावनाएँ होती हैं वे दूसरे से सम्मान और स्नेह पाना चाहते हैं, अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करना चाहते हैं, किन्तु यदि उन्हें अभिव्यक्ति का कोई उचित माध्यम नहीं मिल पाता तथा अन्य लोगों के द्वारा उपेक्षित किया जाता है तो वे कुंठित हो जाते हैं , भावनाओं को अभिव्यक्त ना कर पाने के कारण म नही मन परेशान होते रहते हैं जिससे उनका व्यवहार कुसमायोजित हो जाता है।

17) अन्य कारण –

कुसमायोजित व्यवहार के अन्य कारण भी हैं जैसे विद्यालय तथा घर में पर्याप्त स्थान की कमी, गन्दगी बहिस्कार, विचारों का मेल न खाना आदि इनसे भी बच्चों में कुसमायोजित व्यवहार हो जाता है।

अतः उपरोक्त वर्णित सभी बिन्दु कुसमायोजन के कारक का कार्य करते हैं, जिनसे बच्चों का वयवहार कुसमायोजित हो जाता

15.4.3 कुसमायोजन के निवारण के उपाय।

कुसमायोजन के कारणों को जानने के पश्चात यह आसानी से कह सकते हैकि इनका निवारण किस प्रकार किया जाय तथा सुसमायोजन में अभिवृद्धि किस प्रकार हो। कुसमायोजन के निवारण के लिए आवश्यक है कि या तो बालक सवयं बदले या फिर वातावरण को बदला जाए। वातावरण को बदलना कठिन है इसलिए आवश्यक है कि व्यक्ति स्वयं ही अपने व्यवहार में परिवर्तन करे।

व्यकित का व्यवहार जब नैतिक और सामाजिक स्वीकृति के अनुसार नहीं होता है तो वह कुसमायोजित होता है। ऐसे व्यक्ति अपने मानसिक संघर्ष को दूर करने में असमर्थ रहते हैं। ऐसी दशा में कुसमायोजन को दूर करना आवश्यक है। कुसमायोजन के निवारण के निम्नलिखित उपाय हैं–

1) पर्यावरण के दोष दूर करना–

बहुत सी स्थितियाँ ऐसी होती हैं, जिनमें व्यक्ति पर्यावरण की उत्तेजना से कुसमायोजित व्यवहार कर बैठते हे। उदाहरण के लिए सिनेमा के प्रेमपूर्ण अभिनय को लोग अकेले में जाने वाली लड़कियों के साथ करने का दुस्साहस करते हैं। ऐसी आदत हो जाने पर खुली सड़क पर इस ढंग का आचरण और व्यवहार व्यक्ति करने लगता है । पर्यावरण में सुधार करने से यह दोष दूर हो जाते हैं। लड़को को अत्यधिक सिनेमा देखने से रोका जाए तथा सिनेमा में अश्लील व उत्तेजक दृश्यों का प्रयोग ना हो।

2) माता–पिता को शिक्षित करना–

कई बार देखा जाता है कि माता पिता बच्चों के कुसमायोजित व्यवहार पर कोई ध्यान नहीं देते और ना ही इनके निवारण के उपाय करते हैं दूसरा कारण माता पिता की अन्य कार्यों में अत्यधिक व्यस्तता, उपेक्षा या समझ की कमी कुछ भी हो सकता है। ऐसी स्थिति में आवश्यक है कि माता–पिता को बच्चों के कुसमायोजित व्यवहार से अवगत कराया जाय तथा उन्हें बताया जाय कि वे ऐसे बालकों के साथ कैसा व्यवहार करें।

3) व्यक्तिगत ध्यान–

मता–पिता तथा अभिभावक ऐसे बच्चों के व्यवहारों पर विशेष ध्यान देने के लिए तत्पर रहें। वे समस्यायें जिनका कारण बच्चा कुसमायोजित व्यवहार करता है, उनके निवारण के उपाय किये जाने चाहिए।

4) शारीरिक स्वास्थ्य पर ध्यान

शारीरिक स्वास्थ्य के आधार पर कुसमायोजन का निवारण संभव है। बच्चों तथा वयक्तियों को शारीरिक रूप से स्वस्थ बानए रखने के लिए आवश्यक है कि उन्हें अच्छी चिकित्सा सुविधा समुचित आहार, स्वच्छ एवं स्वस्थ निवास स्थान उपलब्ध कराये जायें समय–2 पर बच्चों का सम्पूर्ण शारीरिक परीक्षण करवाते रहा जाय।

5) अच्छी आदतों का निर्माण–

कुसमायोजन के निवारण में माता–पिता तथा शिक्षकों की यह जिम्मेदारी बनती है कि वे बच्चों में अच्छी आदतों का निर्माण करें । सत्य, आदर, समय पालन, कर्त्तव्य पालन के गुणों का विकास होने पर बचचे का कुसमायोजित व्यवहार ठीक हो जाती है।

6) पलायनवादी अभिवृत्ति हटाना –

कुसमायोजन प्रायः पलायनवादी अभिवृत्ति के आने से होता है जिससे लोगों से मिलने–जुलने , बातचीत करने , व्यवहार करने में लज्जा, भय संकोच होता है। पलायनवादी व्यक्ति दिवास्वप्न अधिक देखता है और कल्पनाओं में खोए रहना पसंद करता है। कभी–2 उसमें कुछ असामाजिक आदतें आ जाती हैं जैसे – बैठे–2 पैर हिलाना, दाँतों से नाखून काटना,

मुँह में या दाँत तले उँगली रखना आदि। ऐसी अभिवृत्ति को रोकने से कुसमायोजन दूर होता है।

7) आवश्यकताओं की पूर्ति–

बालकों की अपनी आवश्यकताएँ होती हैं। माता–पिता को उन आवश्यकताओं को समझना चाहिए और यथासंभव उन आवश्यकताओं को पूर्ण करने का प्रयास करना चाहिए।

8) मानसिक अस्वस्थता व रोगों को दूर करना –

विभिन्न परिस्थितियों में असंयमित और कुसमायोजित आचरण विभिन्न मानसिक रोगों के कारण भी होता है। कुछ स्नायविक रोग होते हैं, जैसे उन्माद है। इनके कारण व्यक्ति नंगे, गाली करते हुए , ईंट पत्थर फेंकते हुए इधर–उधर घूमता फिरता है। यह कुसमायोजन है। और जब तक ऐसे मानसिक रोग दूर नहीं होते, कुसमायोजित व्यवहार भी दूर नहीं होता अतः व्यक्ति को मानसिक रूप से स्वस्थ बनाने का प्रयास किया जाना चाहिए ।

9) मानसिक स्वास्थ्य धारण करना –

अच्छे मानसिक स्वास्थ्य के लिए बच्चों की आवश्यकताओं उद्देश्यों और अभिप्रेरकों को समझना चाहिए तथा उन्हें उचित सामाजिक सम्मान दिया जाना चाहिए। इससे वह कुसमायोजित नहीं होगा। प्रायः देखा जाता है कि जिन बच्चों की इच्छाएँ पूरी होती हैं वे माता पिता व अध्यापको की आज्ञा मानकर तदनुकूल आचरण करते हैं । इस प्रकार उनका कुसमायोजित व्यवहार दूर होता है।

10) विद्यालय का वातावरण–

विद्यालय का वातावरण भी बच्चों के समायोजन को प्रभावित करता है। यदि विद्यालय का वातावरण सहानुभूति, प्रेम ,सद्भावना और सहयोग से ओत प्रोत है तथा जातीयता व ऊँच नीच की भावना से रहित है तो ऐसे वातावरण में प्रत्येक बालक स्वयं को सुरक्षित अनुभव करता है और वह कुसमायोजित व्यवहार नहीं करता है।

11) स्वतंत्रता–

घर तथा विद्यालय का वातावरण ऐसा हो कि बच्चे इन्हें जेल ना समझे बल्कि वे वहाँ उचित आनन्द प्राप्त करें । घरों में बच्चों को मनोरंजन के साधन उपलब्ध हो, अपने मित्रों के साथ खेलने के अवसर प्राप्त हो, बच्चों का भावनाओं की अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान किये जायें, बच्चे अपने छोटे–2 कार्य अपने हाथों से कर सके, ऐसे अवसर प्रदान किये जायें, साथ ही स्कूलों में बच्चों को स्कूल के कार्यों में हाथ बटाने के लिए प्रोत्साहित किया जाय बच्चों को विद्यार्थी संघ, बालगोष्ठी, ड्रामा, लेख पत्रिका आदि कार्यो में भाग लेने के लिए तथा अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जाय। इससे बच्चे का कुसमायोजित व्यवहार दूर हो जाता है।

12) खेल चिकित्सा का प्रयोग–

नवीन युग में वैज्ञानिक विधियों में खेल चिकित्सा भी एक है। इससे बच्चे की क्रिया में लगातार उसमें उत्तरदायित्व की भावना लायी जाती है जिससे उनकी दमित इचछाएँ भी मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रकासित होती है फलस्वरूप कुसमायोजन की सम्भावनाएँ दूर होती है।

13) पुस्तकालय का निर्माण–

स्कूल में पुस्तकालय का निर्माण किया जाये जिसमें बच्चों के कोर्स से संबंधित पुस्तकों के साथ उनको मनोरंजन करने वाली पुस्तक भी उपलब्ध हो बच्चों में समय पर

पढ़ने लिखने सामसजिक समस्याओं के चिन्तन मनन की आदत डाली जाय, इससे उनका कुसमायोजन व्यवहार नियंत्रित होगा।

15) असुरक्षा की भावना को दूर करना

असुरक्षा की भावना के कारण भी कुसमायोजन होता है। उदाहरण स्वरूप– माता–पिता जब घर में झगडा करते रहते हैं और बच्चों के प्रति आक्रामक रवैया रखते हैं उसी प्रकार अध्यापक भी छोटी–2 गलतियों पर बच्चों को बेरहमी से पीटते हैं तो उनसे बच्चों में असुरक्षा की भावना पनप जाती है और उनका व्यवहार कुसमायोजित हो जाती है। अतः यह आवश्यक है कि माता–पिता तथा अभिभावक अपना रवैया बदलने के लिए उनकी भावनाओं को सम्मान दें, इनसे बचचों की असुरक्षा की भावना दूर हो जाती है और बच्चे कुसमायोजित वयवहार नहीं रहते।

16) मनोचिकित्सा एवं विश्लेषण का प्रयोग–

कुसमायोजन दूर करने में चिकित्सा एवं मनोविश्लेषण का प्रयोग हितकर होता है। इनसे बच्चे तथा व्यक्ति के मानसिक रोग दूर होते हैं और वे अपने दोषों को पहचान कर स्वयं ही उन्हें दूर करने का प्रयास करते है। उन्हें आत्म का बोध होता हैं वे अपने व्यवहार को उचित ढंग से समायोजित करते हैं और इस प्रकार कुसमायोजन दूर होता है ।

17) निर्देशन एवं परामर्श देना–

आधुनिक समय में कुसमायोजन को दूर करने के लिए निर्देशन एवं परामर्श की क्रिया भी की जाती है। प्रायः व्यक्तिगत निर्देशन में व्यक्तिगत समस्याओं का निराकरण करने का सुझाव एवं प्रयत्न होता है। इससे भी कुसमायोजन दूर होता है क्योंकि ऐसा करने से व्यक्ति को एक सुनिश्चित मार्ग मिल जाता है, संघर्ष भी दूर हो जाता है।

कुसमायोजन पूरे समाज की समस्या है, इसके लिए सामाजिक विघटन की परिस्थितियों, शोषण, भ्रष्टाचार, आपसी वैमनस्य व संघर्ष को उखाड़ फेकने की कोशिश करनी चाहिए। रूचिकर काम तथा स्वास्थ मनोरंजन का प्रबन्ध करना चाहिए। इस प्रकार सामाजिक व राष्ट्रीय स्तर पर ऐसे प्रबन्ध करने से कुसमायोजन की समस्या का निवारण किया जा सकता है।

,अभ्यासार्थ प्रश्न :– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

1.समायोजन एक..... प्रक्रिया है।
2.मानसिक रोग .....की अधिकता के परिणाम है।
3.समायोजन में व्यवहार की ..... एवं संतुलन पाया जाता है।
4..... व्यक्ति और उसके वातावरण में असमरूपता की ओर संकेत करता है।
5.व्यक्ति का व्यवहार जब..... और ..... स्वीकृति के अनुसार नहीं होता है तो वह कुसमायोजित होता है।

15.5 सारांश–

प्रिय पाठकों , उपर्युक्त विवेचन से आप क्या जान गये है कि समायोजन का स्वरूप क्या है ? विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने किस–किस ढ़ग से इसे परिभाषित करने का प्रयास किया है। समायोजन क्या है। समायोजन का महत्व क्या है? समायोजन न होने पर किन–किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है तथा समायोजन की क्षमता को किस प्रकार से बढ़ाया जा सकता है। संक्षेप में यही कहा जा सकता हैं कि एक सामाजिक प्राणी होने के कारण यह अत्यधिक आवश्यक हैं कि हम प्रत्येक परिस्थिति,व्यक्ति तथा घटना के साथ स्वयं को

यथा सम्भव अधिकाधिक समायोजित करने का प्रयास करें। क्योंकि समायोजन क्षता अच्छी होने पर ही हम एक सुखी एवं सन्तुष्ट जीवन जीकर समाज में मान–सम्मान एवं प्रतिष्ठा पा सकते है।

15.6शब्दावली–

समायोजन :– व्यक्ति और उसके वातावरण में समरूपता एवं संतुलन।
कुसमायोजन :– व्यक्ति और उसके वातावरएा में असमरूपता तथा असंतुलन।
सांवेगिक अस्थिरताः– भावनात्मक रूप से स्थिर एकाग्र न होना।
असंगत व्यवहारः– व्यवहार का नैतिक एवं सामाजिक स्वीकृति के अनुसार नहीं होना।
मनोचिकित्साः– मानसिक रोगों को दूर करने के लिये दी जाने वाली चिकित्सा पद्धति ।

कुंठाः– असफल होने पर मन में उत्पन्न होने वाला दुःखद भाव।

15.7अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

1.अधिगम 2.तनाव 3.समरूपता 4.कुसमसायोजन 5. नैतिक, सामाजिक

15.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, अरूण कुमार, (2006) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड जवाहर नगर, दिल्ली।
2. सिंह, अरूण कुमार, (2006) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर दिल्ली।
3. अर्जीमुर्र रहमान, (2003) सामान्य मनोविज्ञान : विषय और व्याख्या।
4. श्रीवास्तव, रामजी, आलम, आसिम (2004) आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान।
5. श्रीवास्तव, रामजी। (2003), संज्ञानात्मक मनोविज्ञान।

15.9 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1– समायोजन के स्वरूप को स्पष्ट करते हुये इस के महत्व पर प्रकाश डालिए ।

प्रश्न 2– कुसमायोजन से आप क्या समझते ? कुसमायोजन के लक्षण कारण तथा निवारण के उपाय बतलाइये।

इकाई– 16 मानसिक स्वास्थ्य – प्रत्यय, परिभाषा, महत्व

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 मानसिक स्वास्थ्य अर्थ एवं परिभाषा
16.4 मानसिक स्वास्थ्य के तत्व
16.5 मानसिक स्वास्थ्य का महत्व
16.6 सारांश
16.7 शब्दावली
16.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
16.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
16.10 निबंधात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना–

प्रिय विद्यार्थियों, इससे पहले की इकाईयों में आपने स्मृति, चिन्तन एवं समायोजन क्षमता का अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में हम मानसिक स्वास्थ्य के स्वरूप के बारे में अध्ययन करेंगे। पाठकों, जैसा कि आप जानते है, हमारे समाज में सभी लोग प्रायः शारीरिक स्वास्थ्य के प्रति तो सजग एवं जागरूक है। वे इस बात से अवगत है कि शारीरिक स्वास्थ्य क्या होता है। शारीरिक रोग क्या है किन्तु हम मानसिक स्वास्थ्य के प्रति उदासीन रहते है। अपकी जानकारी के लिये बता दें कि इतनी अधिक वैज्ञानिक प्रगति के बावजूद भी भारत में आज भी पिछड़े क्षेत्रों में लोग यह नहीं जानते कि मानसिक स्वास्थ्य क्या है ? और मन से स्वस्थ्य होना भी उतना ही आवश्यंक है, जितना शरीर से स्वस्थ्य होना।

अतः प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से जहॉ एक ओर आप मानसिक स्वास्थ्य की अवधारणा को जानेंगे, वहीं दूसरी ओर इससे मानसिक स्वास्थ्य के प्रति सजगता का विकास भी होगा। पाठकों, इस समय आपके मन मस्तिष्क में अनेक प्रकार के प्रश्न उत्पन्न हो रहे होंगे जैसे कि–

- मानसिक स्वास्थ्य क्या है?
- इसकी मुख्य विशेषता क्या है ?

हमारे जीवन में मानसिक स्वास्थ्य का क्या महत्व है? इत्यादि।

इन सभी जिज्ञासाओं की संस्तुष्टि के लिये हम सर्वप्रथम चर्चा करते है, मानसिक स्वास्थ्य के स्वरूप के बारे में अर्थात मानसिक स्वास्थ्य क्या है ?

16.2 उद्देश्य –

प्रिय विद्यार्थियों प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप

- मानसिक स्वास्थ्य के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे।
- मानसिक स्वास्थ्य के प्रमुख तत्व या विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे।
- मानसिक स्वास्थ्य की विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण कर सकेगें।
- मानसिक स्वास्थ्य की उपयोगिता को स्पष्ट कर सकेंगे।

16.3 मानसिक स्वास्थ्य अर्थ एवं परिभाषा

सामान्यतः यह समझा जाता है कि जब व्यक्ति किसी भी तरह की मानसिक बीमारी से मुक्त होता है, तो उसे मानसिक रूप से स्वस्थ माना जाता है और उसकी इस अवस्था को मानसिक स्वास्थ्य की संज्ञा दी जाती है। लेकिन आधुनिक नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की मान्यता में मानसिक स्वास्थ्य की यह परिभाषा उपयुक्त नहीं है, उन्होंने इसे समयोजनशीलता की क्षमता को मुख्य कसौटी मानकर परिभाषित किया है।

स्ट्रेन्ज के अनुसार – ''मानसिक स्वास्थ्य से तात्पर्य वैसे सीखे गये व्यवहार से होता है जो सामाजिक रूप से अनुकूल होते हैं और जो व्यक्ति को अपनी जिन्दगी के साथ पर्याप्त रूप से मुकाबला करने की अनुमति देता है।'' **हारविज तथा स्कीड** ने मानसिक स्वास्थ्य को इस प्रकार परिभाषित किया है–''मानसिक स्वास्थ्य में कई आयाम सम्मिलित होते हैं– आत्मसम्मान, अपनी अंतर्शक्तियों का अनुभव, सार्थक तथा उत्तम संबंध बनाये रखने की क्षमता तथा मनोवैज्ञानिक श्रेष्ठता।'' **कार्ल मेनिंगर के अनुसार–''**मानसिक स्वास्थ्य अधिकतम खुशी तथा प्रभावशीलता के साथ वातावरण एवं उसके प्रत्येक दूसरे व्यक्ति के साथ समायोजन है–वह एक संतुलित मनोदशा, सतर्क बुद्धि, सामाजिक रूप से मान्य व्यवहार तथा एक खुशमिजाज बनाये रखने की क्षमता है।'' **लैडेल;1952** के शब्दों में,''मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ है– वास्तविकता के धरातल पर वातावरण के साथ पर्याप्त सामंजस्य स्थापित करने की योग्यता।'' **कप्पूस्वामी के अनुसार–''**मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ है– दैनिक जीवन में भावनाओं, इच्छाओं, महत्वाकांक्षाओं एवं आदर्शों में संतुलन रखने की योग्यता। इसका अर्थ है– जीवन की वास्तविकताओं का सामना करने तथा उनको स्वीकार करने की योग्यता।'' मानसिक स्वास्थ्य की व्यावहारिक परिभाषा देते हुए पी.वी. ल्यूकन लिखते हैं–''मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति वह है जो स्वयं सुखी है, अपने पड़ौसियों के साथ शांतिपूर्वक रहता है, अपने बच्चों को स्वस्थ नागरिक बनाता है और इन आधरभूत कर्तव्यों को करने के बाद भी जिसमें इतनी शक्ति बच जाती है कि वह समाज के हित में कुछ कर सके।''

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने मानसिक स्वास्थ्य को इस प्रकार परिभाषित किया है – ''मानसिक स्वास्थ्य स्वस्थता की वह अवस्था है जिसमें प्रत्येक अपनी क्षमताओं को अनुभव करता है, जीवन के सामान्य तनावों का सामना कर सकता है, कार्य उत्पादित कर सकता है और अपने समुदाय को योगदान देने में समर्थ होता है।'' विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, ''मानसिक स्वास्थ्य का संबंध केवल व्यक्ति से ही नहीं होता है बल्कि व्यक्ति के समुदाय से भी होता है जिसमें वह रहता है, समाज जिसका समुदाय एक भाग होता है तथा सामाजिक संस्थायें जो उसके अधिकांश जीवन को निर्देशित करती हैं, जीवन शैली, कार्य पद्धति, धनोपार्जन के तरीके, व्यय के तरीके, प्रसन्नता प्राप्त करने के तरीके जिनमें स्थायित्व तथा सुरक्षा निश्चित होती है।''

वेबसाइट्स पर मानसिक स्वास्थ्य को अलग–अलग प्रकार से परिभाषित किया गया है–

1. मानसिक स्वास्थ्य किसी व्यक्ति की वह अवस्था है जिसमें वह भावनात्मक और व्यवहारात्मक सामंजस्य को संतुष्टिपूर्वक करता है।
2. मानसिक स्वास्थ्य शब्द का उपयोग या तो संज्ञानात्मक या भावनात्मक स्वस्थता के लिए अथवा मानसिक बीमारी से अनुपस्थिति को वर्णित करने के लिए किया जाता है।
3. मानसिक कार्यों का सपफलतापूर्वक प्रदर्शन, दूसरों के साथ अच्छे संबंध और परिवर्तन के साथ अनुकूलन की सामर्थ्य और बचपन से वृद्धावस्था तक संज्ञानात्मक क्षमताओं का बेहतर कार्य करना– मानसिक स्वास्थ्य है।
4. मानसिक स्वास्थ्य भावनात्मक और सामाजिक स्वस्थता की वह अवस्था है जिसमें कोई व्यक्ति जीवन के सामान्य तनावों का सामना कर सकता है और अपनी क्षमता को प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त अच्छी प्रकार कार्य कर सकता है और सामुदायिक जीवन में योगदान कर सकता है।

इस तरह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, मानसिक स्वास्थ्य की मुख्य कसौटी अर्जित व्यवहार है जिसका स्वरूप कुछ ऐसा होता है कि इससे व्यक्ति को सभी तरह के समायोजन करने में मदद मिलती है। यह एक संतुलित मानसिक स्थिति को व्यक्त करता है जिसमें व्यक्ति अपने जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में सामाजिक रूप से तथा सांवेगिक रूप से एक मान्य व्यवहार करता है।

16.4 मानसिक स्वास्थ्य के तत्व

कार्ल रोजर्स, मैस्लो एवं मिटिलमैन आदि मनोवैज्ञानिकों ने मानसिक स्वास्थ्य के निम्न तत्व बताये हैं–

1. सामान्य वर्धन एवं विकास
2. अपने प्रति उचित मनोवृत्ति
3. भविष्य की ओर उन्मुखता
4. स्वतंत्रता
5. अधिकतम स्तर तक अपनी क्षमता का उपयोग करना
6. जिन्दगी के प्रति समन्वित दृष्टिकोण तथा तनाव के प्रति प्रतिरोध
7. वास्तविकता का प्रत्यक्षण तथा आवश्यकता विकृति से स्वतंत्रता
8. अहम् पहचान का ज्ञान
9. स्वस्थ आत्म–सम्मान पर आधारित ज्ञान
10. अन्य लोगों के साथ स्नेह एवं विश्वास का भाव कायम रखना
11. सुरक्षा का भाव
12. तर्कसंगत निर्भरता
13. तर्कसंगत आक्रामकता
14. समूह की आवश्यकताओं को सम्पन्न करने की क्षमता
15. उत्तम अंतर्वैयक्तिक घनिष्ठता विकसित करने की क्षमता
16. अनुभवों में खुलापन
17. कल्याणकारी संवेगों जैसे खुशी, हर्ष, सुखद भाव आदि उत्पन्न करने की क्षमता
18. प्रयोगात्मक आँकड़ों के अनुरूप उचित संकेतीकरण का प्रयोग
19. नवीनतम क्षणों के साथ सर्जनात्मक अनुकूलन

20. अपने अनुभवों के साथ आत्म–संरचनाओं की संगतता
21. लचीलापन

जहोदा ने ध्यानात्मक मानसिक स्वास्थ्य के निम्नांकित छः प्रमुख तत्व बताये हैं–

1. आत्मन के प्रति ध्यानात्मक मनोवृत्ति
2. आदर्श वर्धन, विकास एवं आत्म सिद्धि
3. मानसिक स्वास्थ्य
4. वैयक्तिक स्वतंत्रता
5. वातावरण का वास्तविक प्रत्यक्षण
6. पर्याप्त पर्यावरणी निपुणता

स्कौट ने अपनी समीक्षा के आधर पर मानसिक स्वास्थ्य के निम्नांकित सात प्रमुख तत्व बताये हैं–

1. समायोजनशीलता एवं लचीलापन
2. अपनी आवश्यकताओं को संतुष्ट करने की क्षमता
3. अन्य लोगों के साथ संपर्क एवं सद्भाव बनाये रखने की क्षमता
4. बौद्धिक क्षमता
5. सांवेगिक नियंत्रण
6. स्वतंत्रता, उत्पादकता एवं अपने मूल्य का ज्ञान
7. समन्वय एवं साम्यता

ए. के. सिंह एवं डॉ. अल्पना सेन गुप्ता ने ध्यानात्मक मानसिक स्वास्थ्य के विभिन्न तत्वों की समीक्षा करके निम्नांकित छः तत्वों को सर्वोपरि माना है–

1. समायोजन
2. सांवेगिक स्थिरता
3. बुद्धि
4. स्वतंत्रता
5. सुरक्षा–असुरक्षा
6. क्रिया–स्तर

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि मानसिक स्वास्थ्य के कई तत्व हैं। इन तत्वों के संयोग से धनात्मक मानसिक स्वास्थ्य के संप्रत्यय का प्रादुर्भाव हुआ है।

16.5 मानसिक स्वास्थ्य का महत्व

नैदानिक मनोवैज्ञानिकों ने मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों की कुछ विशेषताओ तथा महत्व का उल्लेख किया है, जिसमें निम्नांकित प्रमुख हैं–

1. <u>आत्मज्ञान (Self-knowledge)</u> – मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की एक प्रमुख विशेषता यह है कि उसे अपनी प्रेरणा, इच्छा, भाव, आकांक्षाओं आदि का पूर्ण ज्ञान होता है। वह यह पूर्णतः समझता है कि वह क्या कर रहा है, उसकी आकांक्षायें क्या हैं? आदि–आदि।

2. आत्म मूल्यांकन (Self-evaluation) – मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति सरलतापूर्वक अपने गुण–दोषों की परख कर लेता है। वह अपने प्रत्येक व्यवहार का तटस्थ होकर अध्ययन करता है तथा अपने व्यवहार की परिसीमाओं की परख करता है।

3. आत्म सम्मान (Self-esteem) – मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में अत्यध्कि आत्म सम्मान होता है जिसके कारण उसमें आत्मविश्वास, आत्मबल तथा अपने भावों को स्वीकारते हुए कार्य करने की क्षमता होती है।

4. समायोजनशीलता (Adjustability) – ऐसे व्यक्ति में अपने समस्त वातावरण के साथ उचित समायोजन क्षमताएँ पायी जाती हैं।

5. स्पष्ट जीवन लक्ष्य (Clear life goal) – मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति का एक स्पष्ट जीवन लक्ष्य होता है। वह जीवन को निर्धरित कर उसे प्राप्त करने का हर संभव प्रयास करता है।

6. सांवेगिक प्रौढ़ता (Emotional Maturity) – यह भी मानसिक स्वास्थ्य का एक निर्णयात्मक गुण हैं, जिस व्यक्ति में संवेगात्मक प्रौढ़ता है वह सभी प्रकार के मानसिक स्वास्थ्य की कसौटी पर खरा उतरता है।

7. सुरक्षा का भाव (Feeling of security) – मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में यह भावना तीव्र होती है कि वह समाज का स्वीकृत सदस्य है तथा लोग उसके भाव का आदर करते हैं। वह दूसरों के साथ निडर होकर अंतःक्रिया करता है तथा खुलकर हंसी– मजाक करता है। समूह का दबाव पड़ने के बावजूद भी वह अपनी इच्छाओं को दमित ं करने की कोशिश नही करता है।

8. संतोषजनक संबंध बनाये रखने की क्षमता(Ability to form satisfying relationships) – मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की एक विशेषता यह है कि वह दूसरों के साथ संतोषजनक संबंध् बनाये रखते हैं।

9. शारीरिक इच्छाओं की संतुष्टि (Satisfaction of bodily desires) – मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की यह भी विशेषता है कि वह अपने शारीरिक अंगों के कार्यों के प्रति एक स्वच्छ एवं ध्नात्मक मनोवृत्ति रखता है। वह इनके कार्यों से पूर्णरूपेण अवगत रहते हुए भी उसमें किसी प्रकार की आसक्ति नहीं दिखाता।

10. उत्पादी एवं खुश रहने की क्षमता (Ability to productive and happy) – मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति अपनी क्षमता को उत्पादी कार्य में लगाते हैं तथा उससे वे बहुत खुश रहते हैं। वह ऐसे कार्य में अच्छा उत्साह एवं मनोबल दिखाता है और स्वयं को खुशमिजाज साबित करता है।

11. तनाव एवं अतिसंवेदनशीलता की अनुपस्थिति (Absence of tension and hypersensitivity) – मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में मानसिक तनाव उत्पन्न नहीं हो पाता और यदि कभी हुआ भी तो वह तुरंत ही नियंत्रित कर लिया जाता है। ऐसे व्यक्ति दूसरों द्वारा की गयी प्रशंसा या आलोचना का प्रभाव अपने ऊपर अध्कि नहीं पड़ने देते अर्थात् ये अतिसंवेदनशील नहीं होते।

12. अच्छा शारीरिक स्वास्थ्य (Good physical health) – मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की एक विशेषता यह भी होती है कि इनका शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा एवं आकर्षक होता है।

13. **जिन्दगी का एक स्पष्ट सिद्धांत (Clear cut philosophy of life)** – मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति अपने जीवन में कुछ सि(ांत बनाये रखते हैं और वे हमेशा उसी सि(ांत के अनुकूल कार्य करते हैं।

14. **वास्तविक प्रत्यक्षण (Realisitc perception)** – मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति किसी वस्तु, घटना या चीज का प्रत्यक्षण ठीक ढंग से करते हैं। वे इन चीजों का प्रत्यक्षण ठीक उसी ढंग से करने की कोशिश करते हैं जो वास्तविक होती हैं। वे प्रत्यक्षण करते समय अपनी ओर से काल्पनिक तथ्यों का सहारा नहीं लेते।

15. **संतुलित व्यक्तित्व (Balanced Personality)** – मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों का व्यक्तित्व संतुलित होता है। उनका स्वभाव व चरित्रा, विवेक व अर्जित विन्यास इस प्रकार होता है कि वह वातावरण के साथ अपूर्व अनुकूलन स्थापित कर लेते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न – रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजि,

1. आधुनिक नैदानिक मनोविज्ञानों ने .....को मानसिक स्वास्थ्य की मुख्य कसौटी माना है!
2. मानसिक स्वास्थ्य किसी व्यक्ति की वह अवस्था है, जिसमें वह.....और व्यवहारात्मक सामंजस्य को संतुष्टिपूर्वक करता है!
3. स्कौट ने अपनी समीक्षा के आधार पर मानसिक स्वास्थ्य के ..... प्रमुख तत्व बताये है।
4. मनसिक रूप से स्वास्थ व्यक्ति का एक स्पष्ट ..... होता है।
5. लैडेल के अनुसार मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ है, वास्तविकता के धरातल पर वातावरण के साथ प्र्यापत .....स्थापित करने की योगयता ।

16.6 सारांश–

प्रिय पाठकों , उपर्युक्त विवेचन से आप भलीभाति जान गये हैं कि मानसिक स्वास्थ्य क्या है तथा इसकी हमारे जीवन में क्या उपयोगिता एवं महत्ता है। सामान्यताः जो व्यक्ति जितना अधिक समायोजन की क्षमता रखता है। मनोवैज्ञानिकों ने उसे उतना ही अधिक मानसिक रूप से स्वस्थ माना है। अतः यह कहा जा सकता हैं कि समायोजनशीलता ही मानसिक स्वास्थ्य का मुख्य आधार है जो व्यक्ति मानसिक रूप से स्वस्थ होता है। उसमें आत्मज्ञान, आत्मसंतोष, आत्मविश्वास, शारीरिक स्वास्थ्य, जीवन का स्पष्ट सिद्धान्त अपने उद्देश्य की स्पष्टता संतोषजनक सम्बन्ध बनाये रखने की क्षमता इत्यादि गुण अपने आप ही आ जाते है। अतः स्पष्ट हैं कि किसी भी व्यक्ति का शारीरिक रूप से स्वस्थ्य होना जितना आवश्यक है, उससे कही अधिक जरूरी है, उसका मानसिक रूप से स्वस्थ होना।

16.7 शब्दावलीः–

समायोजनशीलताः– व्यक्ति तथा उसके वातावरण में संतुलन एवं समरूपता होना।
आयामः– विस्तार, व्यापकता ।
अन्तःशक्तियांः– आन्तरिक शक्तियां।
आत्मसम्मानः– स्वयं के प्रति आदर की भावना ।
वर्धनः– वृद्धि, विकास ।
प्रत्यक्षण :– इन्द्रियों के माध्यम से किसी बाहय संवेदना या सूचना को ग्रहण करना ।
धनात्मक मनोवृत्ति :– सकारात्मक दृष्टिकोण ।

सांवेगिक :– भावनात्मक ।
प्रादुर्भाव :– उत्पत्ति, उत्पन्न होना।
आत्म–मूल्यांकन :– अपने गुण एवं दोषों की जानकारी।
प्रौढ़ताः– परिपक्वता ।
उत्पादीः– रचनात्मक, सृजनात्मक, धनात्मक।

16.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –:

1. समायोजनशीलता।
2. भावनात्मक।
3. सात।
4. जीवन लक्ष्य।
5. सामंजस्य।

16.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हसन, शाहिद/(2006) नैदानिक मनोविज्ञान/ मोतीलाल बनारसीदास, बंगलोरोड़, जवाहर नगर, दिल्ली।
2. श्रीवास्तव, रामजी एवं अन्य/(2005) आधुनिक अपसामान्य मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलोरोड़, जवाहर नगर, दिल्ली।
3. वर्णवाल, सुरेश, योग एवं मानसिक स्वास्थ्य।
4. सिंह, अरूण कुमार/(2007), असामान्य मनोविज्ञान मोतीलाल बनारसीदास, बंगलोरोड़, जवाहर नगर, दिल्ली।

16.10 निबन्धात्मक प्रश्न :–

1. मानसिक स्वास्थ्य से आप क्या समझते है ? इसकी विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण कीजिए।
2. मानसिक स्वास्थ्य के महत्व का विवेचन कीजिए ?

इकाई–17 मानसिक रूप से स्वास्थ रहने के उपाय तथा विधियां

17.1 प्रस्तावना

17.2 उद्देश्य

17.3 मानसिक रूप से स्वस्थ रहने के उपाय तथा विधियां

17.4 सारांश

17.5 शब्दावली

17.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

17.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

17.8 निबंधात्मक प्रश्न

17.1 –प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों, इससे पहले की इकाईयों में आपने जाना हैं कि मानसिक स्वास्थ्य क्या है। मानसिक रूप से एक स्वस्थ व्यक्ति का क्या महत्व है। यदि कोई व्यक्ति मानसिक विकार से ग्रस्त है या वह अपने मानसिक स्वास्थ्य को और अधिक उन्नत बनाना चाहता है, तो क्या ऐसी काई विधि या तकनीक है। जिसको अपना कर मानसिक स्वास्थ्य में अभिवृद्धि की जा सकती है। पाठकों प्रस्तुत इकाई में हम इन्हीं उपयों की चर्चा करेंगे। जिससे कि मानसिक समस्यायें कम से कम हो सके तथा व्यक्ति की समायोजनशीलता बढ. सके, ताकि एक स्वस्थ एवं खुशहाल समाज का निर्माण हो सकें।

17.2 –उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप

- मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत करने की विधियों का वर्णन कर सकेंगे।
- इन विधियों को हम अपने व्यावहारिक जीवन में किस प्रकार से अपना सकते है। इसे स्पष्ट कर सकेंगे।

17.3 –मानसिक रूप से स्वस्थ रहने के उपाय तथा विधियाँ–

ऐसे अनेक कारक या उपाय हैं जो व्यक्ति को स्वस्थ बनाये रखने अस्वस्थ न होने देने तथा उन्नति करने में सहायता प्रदान करते हैं। इस प्रकार ये कारक, न केवल व्यक्ति की असमायोजन से रक्षा करते हैं, वरन् उसकी समायोजन की क्षमता में अभिवृद्धि भी कर

सकते हैं। उत्तम मानसिक स्वास्थ्य में निम्नलिखित कारक महत्वूपर्ण भूमिका निभा सकते हैं–

1. वंशानुक्रमीय तत्वों पर नियंत्रण–

विभिन्न शोध निष्कर्षों से यह स्पष्ट हो चुका है कि बच्चे का मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य माता–पिता से मिले आनुवांशिक गुणों पर निर्भर करता है। इसलिए सबसे पहले आवश्यकता है कि संतान को जन्म देने से पहले स्त्री–पुरूषों का शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ होना। स्वस्थ माता–पिता की संतानें भी स्वस्थ होंगी, जड़ मजबूत हुई तो उन्हें पर्यावरणीय आँधी–तूफानों अर्थात् रोगों से बचाया जा सकता है।

2. **पर्यावरणीय तत्वों पर नियन्त्रण–** पर्यावरणीय तत्वों में परिवार, पास–पड़ौस, समाज और विद्यालय के पर्यावरण आते हैं। इन सभी को तदनुकूल बनाना आवश्यक है।

3. परिवार का वातावरण

हम जानते हैं कि बालक के विकास में सबसे अधिक प्रभाव उसके पारिवारिक वातावरण का पड़ता है, उसके मानसिक स्वास्थ्य के विकास में भी। **फ्रेंडसन के शब्दों में–** ''परिवार बालक को मानसिक स्वास्थ्य तथा असमायोजन की दिशा में अग्रसर करता है।'' परिवार बालक को मानसिक स्वास्थ्य की दिशा में किस प्रकार अग्रसर करता है, इसका वर्णन नीचे की पंक्तियों से स्पष्ट है–

4. आवश्यकताओं की पूर्ति–

बालकों की अपनी आवश्यकतायें होती हैं। माता–पिता अथवा अभिभावकों को इन आवश्यकताओं को समझने का प्रयास करना चाहिए और यथोचित ढंग से इनकी पूर्ति करनी चाहिये।

5. अच्छी आदतों का निर्माण–

माता–पिता अथवा अभिभावकों को चाहिए कि वे बालकों में अच्छी आदतों का विकास करें। सत्य, आदर, कर्तव्यपरायणता, विनम्रता, सहनशीलता, श्रम आदि अच्छी आदतों का विकास होने से बालक मानसिक रूप से स्वस्थ रहता है।

6. माता–पिता का व्यवहार–

बच्चों के प्रति उनके माता–पिता का उचित व्यवहार उनके मानसिक स्वास्थ्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान करता है। इस व्यवहार के सम्बन्ध में **कुप्पुस्वामी** का कथन है कि जो माता–पिता अपने बच्चों को प्रेम और सुरक्षा प्रदान करते हैं वह उनके मानसिक स्वास्थ्य में योग देता है। जो पिता अपने बच्चों के साथ अपना जीवन और समय व्यतीत करते हैं वे उनके स्वस्थ मानसिक दृष्टिकोणों के विकास में सहयोग देते हैं।

7. परिवार का शान्तिपूर्ण वातावरण–

जिस परिवार में शान्ति और सामंजस्य का वातावरण होतो है उसमें बालक के मानसिक स्वास्थ्य में निश्चित रूप से वृद्धि होती है। **कुप्पुस्वामी** के अनुसार, अच्छा परिवार जिसमें माता–पिता में सामंजस्यपूर्ण व्यवहार होता है और जिसमें आनन्द और स्वतन्त्रता का वातावरण होता है, प्रत्येक बालक के मानसिक स्वास्थ्य की उन्नति में अतिशय योग देता है।

8. विकास के उत्तम अवसर उपलब्ध कराना–

फ्रेंडसन का कथन है कि मानसिक रूप से स्वस्थ बालक में 6 वर्ष की आयु तक उत्तरदायित्व, स्तन्त्रता और आत्मविश्वास की भावनओं का विकास हो जाता है। यह तभी संभव है जब परिवार इनके विकास की उत्तम दशायें प्रदान करे। ऐसा न करने से इनका

विकास असंभव हो जाता है और फलस्वरूप बालक के मानसिक स्वास्थ्य में उन्नति नहीं हो पाती है।

9. पक्षपातरहित व्यवहार–

बालकों के उत्तम मानसिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है कि माता–पिता का उनके प्रति व्यवहार पक्षपात रहित हो। कई बार देखने में आता है कि जो माता–पिता अपने बच्चों में से एक को अधिक प्यार–दुलार देते हैं और दूसरे को कम तो ऐसी स्थिति में बच्चा स्वयं को असहाय और हीन समझने लगता है जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव उसके मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है।

10. **मनोरंजन के पर्याप्त साधन–**

बालकों के उत्तम मानसिक विकास के लिए आवश्यक है कि उन्हें मनोरंजन के साधन उपलब्ध कराये जायें। माता–पिता बच्चों की रूचि के अनुसार छोटे–छोटे गेम्स, खिलौने आदि खरीद सकते हैं।

11. सुरक्षा की भावना बढ़ाना–

बालकों के मानसिक स्वास्थ्य के विकास के लिए आवश्यक है कि वे अपने घर में तथा अपने माता–पिता के बीच स्वयं को सुरक्षित अनुभव करें। विभिन्न शोध निष्कर्षों से ये तथ्य स्पष्ट हुआ है कि जिन बच्चों में निर्भयता, निडरता जितनी अधिक होती है, उन बच्चों का मानसिक स्वास्थ्य उतना ही श्रेष्ठ होता है।

12. बालक को अपनी समस्याओं के समाधान में सहायता व निर्देशन–

बालकों के उत्तम मानसिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है कि माता–पिता बालकों की छोटी–छोटी समस्याओं पर भी ध्यान दें व उनका समाधान न कर पाने की स्थिति में उन्हें उचित निर्देशन प्रदान करें।

13. बालक को सफलताओं और असफलताओं पर समान रूप से प्रोत्साहन–

माता–पिता के लिए आवश्यक है कि वे बालक की सफलता पर उसे जितना प्रोत्साहन प्रदान करते हैं, उतना ही प्रोत्साहन वे उसके असफल हो जाने पर प्रदान करें, इससे उसमें आत्मविश्वास कायम रहेगा और वह मानसिक रूप से स्वस्थ होगा।

14. विद्यालय का वातावरण–

बच्चों के चहुँमुखी व्यक्तित्व विकास की दृष्टि से स्कूल वातावरण का अत्यधिक महत्व है। **फ्रेंडसन** के शब्दों में, ''मानसिक स्वास्थ्य का विकास शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य और प्रभावशाली अधिगम की एक अनिवार्य शर्त दोनों है।'' मानसिक स्वास्थ्य के महत्व से अवगत होने वाले शिक्षक विद्यालय में उपलब्ध प्रत्येक साधन का प्रयोग, बालकों के मानसिक स्वास्थ्य में उन्नति के लिए करते हैं।

इस हेतु निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है–

15. शिक्षक का सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार–

बालकों के प्रति शिक्षक का व्यवहार सहानुभूतिपूर्ण और नम्र होना चाहिए। पक्षपातपूर्ण व्यवहार किये बिना उसे सब बालकों के साथ समान और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। इससे बालकों के मानसिक स्वास्थ्य पर अत्यधिक सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

16. **संतोषप्रद अनुभव–**

विद्यालय में बच्चों को संतोषप्रद अनुभव प्राप्त हों, अधिक असंतोष उनके मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। बच्चों को जो भी शिक्षा दी जाय वह उनके जीवन से संबंधित हो तथा उसका उनके जीवन में महत्व हो।

17. जनतन्त्रीय अनुशासन–

विद्यालय का अनुशासन, भय, दण्ड, दमन और कठोरता पर आधारित न होकर जनतन्त्रीय सिद्धान्तों पर आधारित होना चाहिए। बालकों में आत्म–अनुशासन की भावना का विकास करने के लिए छात्र–अनुशासन को प्रोत्साहित करना चाहिए। इसके अलावा बालकों को उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य सौंपकर विद्यालय के प्रशासन में भागीदार बनाना चाहिए। इन सब बातों के फलस्वरूप उनके मानसिक स्वास्थ्य में उत्तरोत्तर वृद्धि होती चली जाती है।

18. पाठ्यक्रम का निर्माण–

पाठ्यक्रम का निर्माण बच्चों की योग्यताओं तथा क्षमताओं को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। व्यक्तिगत भेद, स्वतन्त्रता तथा संतोषप्रद अनुभव का ध्यान रखा जाना चाहिए।

19. स्वतन्त्रता–

बच्चे विद्यालय को जेल न समझें, जहाँ पर उन्हें कुछ घण्टों के लिए बन्द कर दिया जाता है बल्कि वे वहाँ आनन्द का अनुभव करें इसकी उन्हें उचित स्वतन्त्रता दी जाय। बच्चों को स्कूल के कार्यों में हाथ बंटाने के लिए प्रोत्साहित किया जाय। बच्चों को बालगोष्ठी, ड्रामा आदि सांस्कृतिक कार्यक्रम, कला प्रतियोगिता, निबन्ध प्रतियोगिता आदि कार्यों में भाग लेने तथा विचारों को व्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

20. अल्प गृहकार्य–

शिक्षक प्रायः बालकों को इतना अधिक गृहकार्य दे देते हैं कि उसे पूर्ण कर पाना उनकी सामर्थ्य से परे की बात होती है। पूर्ण न कर सकने की स्थिति में वे दण्ड मिलने का विचार करके चिन्ता एवं भय से ग्रस्त हो जाते हैं। अतः शिक्षकों को इतना ही गृहकार्य देना चाहिए जिसे सरलता से पूर्ण करके बच्चे चिन्तामुक्त तथा भयमुक्त रह सकें। इससे उनका मानसिक स्वास्थ्य विकसित होगा।

21. खेल तथा मनोरंजन–

विद्यालयों में आयु तथा शारीरिक मानसिक क्षमता के अनुसार खेल तथा मनोरंजन की सुविधा होनी चाहिए। इससे बच्चों का तनाव कम होकर उनका मानसिक स्वास्थ्य बढ़ता है।

22. पुस्तकालय तथा वाचनालय–

प्रत्येक विद्यालय में पुस्तकालय तथा वाचनालय उपलब्ध होने चाहिए। बच्चों को पुस्तकालय में जाकर पढ़ने–लिखने का समय दिया जाय जिससे वे विभिन्न विषयों को पढ़कर अपने ज्ञान में अभिवृद्धि कर सकें।

23. योग कक्षाओं का संचालन–

यदि विद्यालयों में योग की व्यवस्था की जा सके तथा बच्चों को यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान व मन्त्र जप आदि की विधियाँ तथा उनसे प्राप्त लाभ समझायें जायें तो सारी समस्याओं का समाधान स्वतः ही हो सकता है।

24. निर्देशन की व्यवस्था–

बालकों के समक्ष कभी न कभी विभिन्न शैक्षिक, व्यक्तिगत तथा पारिवारिक समस्यायें अवश्य प्रकट होती हैं जिनका सामना उन्हें करना पड़ता है। इन समस्याओं का समाधान करने

तथा इन पर विजय प्राप्त करने के लिए विद्यालय में शैक्षिक, व्यक्तिगत तथा व्यावसायिक निर्देशन देने के लिए कुशल सलाहकार का उपलब्ध होना आवश्यक है। उचित निर्देशन प्राप्त हो जाने से बालक सभी समस्याओं पर आसानी से विजय प्राप्त कर लेते हैं।

25. अभिभावक अध्यापक सम्मेलन–

बालकों के मानसिक स्वास्थ्य के विकास के लिए आवश्यक है कि विद्यालय में समय–समय पर अभिभावक–अध्यापक सम्मेलन करवाये जायें इससे माता–पिता तथा अध्यापक दोनों ही बच्चे के विकास की प्रक्रियाओं, उसके गुण व अवगुणों तथा शैक्षिक उपलब्धियों से अवगत हो सकेंगे। दोनों की साझेदारी से बालक के मानसिक स्वास्थ्य को श्रेष्ठतम् बनाया जा सकता है।

26. अध्यापन शैली–

इस बात का प्रयत्न किया जाना चाहिए कि पढ़ाते समय अध्यापक नवीन तथा रोचक शिक्षण विधियाँ अपनायें। इससे बालकों में अध्ययन के प्रति रूचि विकसित होगी।

27. मूल्यांकन–

बालकों का केवल किताबी ज्ञान के आधार पर मूल्यांकन न करे, अन्य क्षेत्रों के आधार पर उसके गति को ध्यान में रखते हुए मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

28. समाज–

यद्यपि समाज एक प्रकार की संगठित संस्था नहीं है जो कि उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से मानसिक अस्वस्थता की रोकथाम कर सके किन्तु यह अवश्य ही है कि उसके वातावरण का प्रभाव बच्चे के मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है। प्रत्येक बालक समाज में जन्म लेता है और समाज में ही अपना संपूर्ण जीवन व्यतीत करता है। अतः समाज का प्रत्यक्ष प्रभाव उसके मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है।

समाज के घटक के रूप में कार्य कर रही सामाजिक संस्थायें तथा सरकार निम्नलिखित विधियों का प्रयोग करके लोगों के मानसिक स्वास्थ्य विकास में सहयोग प्रदान कर सकती हैं–

29. सम्मेलन तथा विचार गोष्ठियों का आयोजन–

विभिन्न समाजसेवी संगठनों द्वारा ऐसे सम्मेलन तथा विचार गोष्ठियों का आयोजन किया जाय जिसमें सभी धर्म तथा वर्ग के स्त्री–पुरूष, युवा, बालक–बालिकायें तथा वृद्ध भाग ले सकें तथा सभी को अपने विचार निष्पक्ष भाव से प्रस्तुत करने की छूट हो इससे उनका मानसिक स्वास्थ्य विकसित होगा।

30. विभिन्न मनोरंजन के साधन उपलब्ध करवाना–

सामाजिक स्तर पर कुछ ऐसे कार्यक्रम चलाये जायें जिससे सभी का मनोरंजन होता है जैसे– नुक्कड़ नाटक, वाद–विवाद प्रतियोगिता, खेल प्रतियोगिता आदि। इससे भी बालकों का मानसिक स्वास्थ्य विकसित होगा।

31. जातिगत भेदभाव की समाप्ति–

समाज में रहने वाले सभी लोग जातिगत भेदभाव से मुक्त हों। सभी धर्म तथा जाति के लोग एक–दूसरे के साथ समानता का व्यवहार करें। बच्चों को दूसरी जाति तथा धर्म के लोगों के साथ खेलने–कूदने, बातचीत करने से न रोका जाये। यह सामाजिक स्तर पर मानसिक स्वास्थ्य विकास का महत्वपूर्ण साधन है।

32. सामाजिक कार्यों में हिस्सेदारी–

सामाजिक संस्थाएँ ऐसे कार्यक्रम चलायें जो सामाजिक समस्याओं के उन्मूलन में सहायक हों जैसे– प्रौढ़ शिक्षा, गरीब बच्चों के लिए उचित शिक्षा की व्यवस्था, बिजल, पानी उपलब्ध करवाना, बाल विवाह पर रोक, विधवा विवाह को प्रोत्साहन, गरीबी उन्मूलन हेतु उपाय तथा बेरोजगारों को रोजगार के साधन उपलब्ध करवाने हेतु प्रयास ऐसे कार्यक्रम हैं जिनको यदि मिलजुलकर किया जाय तथा उपरोक्त समस्याओं के निवारण के उपाय सोचे जायें व उन्हें क्रियान्वित किया जाय तो सामाजिक स्तर पर मानसिक स्वास्थ्य विकसित किया जा सकता है। हमारे आज के बालक कल के युवा हैं, इनके मानसिक स्वास्थ्य को भी उन्नत किया जा सकता है।

33. सामाजिक तथा धार्मिक मूल्यों का विकास–

समाज में रहने वाले सभी लोग सामाजिक स्तर पर मूल्यों की अभिवृद्धि हेतु दृढ़ संकल्पित हों, सभी एक–दूसरे को आदर दें, प्रेम व्यवहार करें, सहयोग प्रदान करें, एक दूसरे के कार्यों में अभिरूचि व्यक्त करें, इससे मानसिक स्वास्थ्य का स्तर विकसित होगा।

34. पर्व, उत्सवों, त्यौहारों का आयोजन–

सामाजिक स्तर पर पर्व, उत्सव व त्यौहारों का आयोजन किया जाय जिसमें सभी धर्म व वर्ग के लोग शामिल हों तथा उल्लास के साथ मिलकर इन पर्वों को मनायें। इससे समूहगत भावना, आपसी प्रेम का विकास होगा जो मानसिक स्वास्थ्य विकास में अत्यन्त सहायक है।

35. विभिन्न धार्मिक आयोजन–

समय–समय पर विभिन्न धार्मिक आयोजन होते रहें, जिससे सभी को एक–दूसरे के धर्म को जानने व समझने का मौका मिलेगा।

36. योग कैम्प का आयोजन–

जगह–जगह पर ऐसे कैम्प लगाये जायें जहाँ पर योग विज्ञान के प्रयोगों से लोग अवगत हो सकें। यह मानसिक स्वास्थ्य विकास की अचूक प्रविधि है। आज का भौतिकवादी आदमी भौतिक दौड़ में दौड़ता जा रहा है। अधिक महत्वाकांक्षायें छोटे–बड़े सभी का मानसिक स्वास्थ्य बिगाड़ रही हैं। इस विभीषिका से बचने का एक ही उपाय योग साधना है।

37. अन्य कारक–

बालक तथा बड़े सभी के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले अन्य कारक हैं, जैसे– शारीरिक अस्वस्थता, शारीरिक विकलांगता तथा मनोवैज्ञानिक न्यूनता।

जो बालक इन न्यूनताओं से ग्रसित हों उनका उपचार कराया जाय, साथ ही उनमें ऐसे गुणों का विकास किया जाए कि उनमें हीनता की भावना आ ही न पाये। साथ ही ऐसे बच्चों को यदि योगाभ्यास की तरफ प्रवृत्त कर दिया जाय तो सारा जंग इसी से जीता जा सकता है।

रोजेन तथा ग्रेगरी (1985) ने अपनी समीक्षा के आधार पर यह बतलाया है कि धीरे–धीरे सामाजिक आर्थिक स्तर उन्नत कर देने से तथ जीवन की अन्य प्रतिकूल परिस्थितियों के साथ पर्याप्त समझौता कर लेने से व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य का स्तर उत्तरोत्तर उन्नत होता चला जाता है।

इस प्रकार उपरोक्त उपायों का प्रयोग करके मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाया जा सकता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न :– पाठकों नीचे कुछ कथन दिये गये हैं, जो कथन सही हो, उसके आगे सही का तथा जो गलत हो उसके आगे गलत का निशान लगाये –:

1. बच्चे के मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य माता–पिता से मिले आनुवांशिक गुणों पर निर्भर करता है।( )
2. पर्यावरणीय तत्वों में विद्यालय का पर्यावरण नहीं आता है। ( )
3. बालक के विकास में सबसे अधिक प्रभाव उसके पास–पडौस के वातावरण का पड. ता है। ( )
4. फ्रेंडसन के अनुसार एक मानसिक रूप से स्वस्थ बालक में 6 वर्ष की आयु तक उत्तरदायित्व , स्वतन्त्रता और आत्मविश्वास की भावनाओं का विकास हो जाता है। ( )

17.4 – सारांश

प्रिय पाठकों, उपर्युक्त विवेचन से आप भलि भाति समझ गये हैं कि एक व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य पर वंशानुगत तत्वों के अतिरिक्त उसके परिवार आस–पडौस समाज, विद्यालय या वह संख्या जहां पर वह कार्य करता है, के वातावरण का भी प्रभाव पडता है। अतः यदि हमें अपने मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाना है तो इन कारकों पर भी ध्यान करना होगा। हमें न केवल अपने परिवार के वातावरण को अच्छा बनाना होगा वरन् अपने पड़ौसियों तथा समाज के अन्य लोगों तााि संस्थाओं के साथ संतोषजनक एवं सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध बनाने होगे। तभी हम मानसिक स्वास्थ्य के लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हो सकते हैं।

17.5 –शब्दावली

तदनुकूल :– तत् अनुकूल अर्थात उसके अनुसार।
वंशानुक्रमीय तत्व :– जो तत्व माता–पिता से प्राप्त होते हैं।
नुक्कड़ नाटक :– जिन नाटकों आयोजन गली, मौहल्लों या सड़कों पर किया जाता है।

17.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2.असत्य 3. असत्य 4. सत्य 5. सत्य

17.7 – सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्रीवास्तव, रामजी एवं अन्य/(2005) आधुनिक अपसामान्य मनोविज्ञान। मोतीलाल बनारसीदास, बंगलोरोड़, जवाहर नगर, दिल्ली।
2. वर्णवाल, सुरेश, योग एवं मानसिक स्वास्थ्य।
3. सिंह, अरूण कुमार/(2007), असामान्य मनोविज्ञान मोतीलाल बनारसीदास, बंगलोरोड़, जवाहर नगर, दिल्ली।

17.8 – निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1– मानसिक रूप से स्वस्थ्य रहने के उपाय तथा विधियों पर प्रकाश डालिए।

इकाई 18 मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक, शारीरिक स्वास्थ्य तथा मानसिक स्वास्थ्य का सम्बन्ध

18.1 प्रस्तावना

18.2 उद्देश्य

18.3 मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक

18.4 शारीरिक स्वास्थ्य एवं मानसिक स्वास्थ्य का सम्बन्ध

18.5 सारांश

18.6 शब्दावली

18.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

18.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

18.9 निबंधात्मक प्रश्न

18.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठकों, इससे पूर्व की ईकाईयों में आपने मानसिक स्वास्थ्य की अवधारणा महत्व तथा मानसिक स्वास्थ्य को विकसित करने की विधियों का अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में हम मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारको का तथा शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य में पारस्पंरिक क्या सम्बन्ध है, इसका अध्य्यन करेंगे।

पाठकों, मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारकों का अर्थ यह हैं कि मानसिक स्वास्थ्य पर किन–किन तत्वोंका प्रभाव पड़ता है ? मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययन के आधार पर निस्कर्ष निकाला हैं कि किसी भी व्यकित का मानसिक स्वास्थ्य एव एक साथ कई कारकों द्वारा प्रभावित होता है, जिसमें आनुवांशिक गुण, पारिवारिक माहौल, पड़ौस तथा समाज का वातावरण, विद्यालय का वातावरण, व्यवसायिक संस्था का वातावरण इत्याादि प्रमुख है। चूँकि मानसिक स्वास्थ्य हमारे शरीरिक स्वास्थ्य को भी प्रभावित करता है। अत: एक व्यक्ति का मानसिक रूप से स्वास्थ्य होना अत्यधिक आवश्यक है।

18.2 उद्देश्य्

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप

- मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारकों को स्प्ष्ट कर सकेंगे।
- व्यक्ति की समायोजन क्षमता को किस प्रकार से विकसित किया जा सकता है। इसे समझ सकेंगे।

18.3 मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक

मनोवैज्ञानिकों ने ऐसे कई कारकों की पहचान की है जिनसे व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है तथा जो उसकी समायोजन शक्ति को क्षीण करते हैं। इन कारकों में निम्नांकित प्रमुख है –

1. **वंशानुक्रमीय प्रभाव** – यदि कोई बच्चा जन्म से ही शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से अस्वस्थ पैदा होता है तो यह उसके मानसिक स्वास्थ्य के विकास में सबसे अधिक बाधक होता है।

कुप्पुस्वामी के अनुसार, बालक दोषपूर्ण वंशानुक्रम से मानसिक निर्बलता, एक विशेष प्रकार का मानसिक अस्वास्थ्य और कुछ स्नायु सम्बन्धी रोग प्राप्त करता है। फलस्वरूप वह समायोजन करने में कठिनाई का अनुभव करता है।

2. **शारीरिक स्वास्थ्य –** कुछ मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि शारीरिक स्वास्थ्य तथा मानसिक स्वास्थ्य में गहरा संबंध है। जिस व्यक्ति का शारीरिक स्वास्थ्य उत्तम होता है, उनमें सामान्यतः चिन्ता, संघर्ष, विरोधाभास आदि नकारात्मक तत्व नहीं होते हैं। शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा होने के कारण वे अपने प्रत्येक कार्य सुचारू रूप से पूर्ण कर पाते हैं। फलस्वरूप, उनका मानसिक स्वास्थ्य उत्तम रहता है।

कुप्पुस्वामी के अनुसार, ''स्वस्थ व्यक्तियों की अपेक्षा रोगी व्यक्ति नई परिस्थितियों से सामंजस्य करने में अधिक कठिनाई का अनुभव करते हैं।''

3. **पर्यावरणीय तत्व**

परिवार– बालक के मानसिक स्वास्थ्य पर परिवार का सीधा प्रभाव पड़ता है। समाज की बदलती हुई मान्यतायें परिवार को प्रभावित करती रहती हैं। अतः बालक के पोषण पर इनका प्रभाव समस्या के रूप में होता है। परिवार पर प्रभाव डालने वाले निम्न कारक हो सकते हैं–

पारिवारिक विघटन– आधुनिक समय में औद्योगीकीकरण के कारण परिवारों का तीव्र गति से विघटन हो रहा है। जिन घरों में माता–पिता दोनों ही सर्विस करते हैं, वहाँ पर बच्चों की स्थिति और भी खराब हो जाती है। माता–पिता के बीच अलगाव तथा तलाक हो जाने पर बच्चा स्वयं को असुरक्षित महसूस करता है इस कारण उसका मानसिक स्वास्थ्य प्रभावित होता है।

माता–पिता का व्यवहार– कुछ माता–पिता अपने बच्चों को अत्यधिक प्यार–दुलार से पालते हैं, कुछ माता–पिता कुछ कारणोंवश बच्चों को पर्याप्त स्नेह, दुलार तथा सुरक्षा प्रदान नहीं कर पाते। कुछ माता–पिता बच्चों को हमेशा मारते–पीटते रहते हैं। कुछ इनके साथ पक्षपातपूर्ण व्यवहार करते है तथा इनको छोटी–छोटी गलतियाँ हो जाने पर भी सजा देते हैं। इस प्रकार के सब माता–पिता अपने बच्चों के मानसिक अस्वास्थ्य को बढ़ावा देते हैं।

घर का अनुशासन– कुछ घरों में माता–पिता बच्चों को अत्यधिक अनुशासन में रखते हैं तथा उन्हें किसी भी प्रकार की कोई स्वतन्त्रता प्रदान नहीं करते। ऐसी स्थिति में बच्चों में आत्महीनता विकसित हो जाती है जो उनके मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती है।

निर्धनता– भारत में 80 प्रतिशत मानसिक अस्वस्थता निर्धनता के कारण है। माता–पिता बच्चों की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी नहीं कर पाते, इस कारण बच्चे स्वयं को हीन समझने लगते हैं, जिससे उनका मानसिक स्वास्थ्य प्रभावित होता है।

पारिवारिक संघर्ष– परिवार के सदस्यों, विशेषकर माता–पिता के बीच का संघर्ष बालक के मानसिक स्वास्थ्य पर अत्यधिक हानिकारक प्रभाव डालता है जिससे उनमें असमायोजन विकसित हो जाता है। ऐसे परिवारों में बच्चे स्वयं को असुरक्षित महसूस करते हैं।

विद्यालय–परिवार के समान विद्यालय भी बालक के मानसिक स्वास्थ्य पर अवांछनीय प्रभाव डालता है। विद्यालय सम्बन्धी कारण इस प्रकार हैं–

विद्यालय का वातावरण– विद्यालय के वातावरण का बालक के मानसिक स्वास्थ्य पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। यदि विद्यालय का वातावरण ऐसा है जहाँ बच्चे स्वयं को असुरक्षित महसूस करते हैं तो इससे उनमें निरन्तर चिन्ता तथा भय बना रहता है। यदि साम्प्रदायिकता, जातिगत भेदभाव तथा कुप्रबन्धन के कारण विभिन्न प्रकार के झगड़े होते रहते हैं, जिसके कारण वातावरण अशान्त रहता है जो कि बालक के विकास में बाधा उत्पन्न करता है तथा बालक के मानसिक स्वास्थ्य में हानिकारक प्रभाव डालता है।

अध्यापक का व्यक्तित्व– अध्यापक का व्यक्तित्व विद्यार्थियों के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है जो बच्चों के व्यक्तित्व विकास में प्रत्यक्ष प्रभाव डालता है। यदि अध्यापक बच्चों के साथ पक्षपातपूर्ण व्यवहार करता है, अत्यधिक आक्रामक व्यवहार करता है तथा दूसरों की निन्दा चुगली करता है तो ऐसे व्यवहार को बच्चे देखते हैं, जिससे वे धीरे–धीरे इन बुराइयों को स्वयं अपनाने लगते हैं जो उनके व्यक्तित्व पर नकारात्मक प्रभाव डालता है और उनमें मानसिक अस्वास्थ्य को बढ़ावा देता है।

पाठ्यक्रम– यदि पाठ्यक्रम सब बालकों के लिए समान होता है, यदि वह अत्यधिक बोझिल होता है, यदि वह बालक की माँगों और आवश्यकताओं को पूरा नहीं करता है, यदि वह उनकी रूचियों और क्षमताओं के प्रतिकूल होता है, तो वह उनके मानसिक स्वास्थ्य का विकास करने में पूर्णतया असफल रहता है।

शिक्षण विधियाँ– परम्परागत और अमनोवैज्ञानिक शिक्षण विधियाँ बालक के ज्ञान प्राप्ति के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करती हैं। अतः वह हतोत्साहित होकर अपना मानसिक स्वास्थ्य खो बैठता है।

परीक्षा प्रणाली– परीक्षा प्रणाली पर भी बालकों का मानसिक स्वास्थ्य निर्भर करता है। यदि परीक्षा प्रणाली ऐसी है जिससे बालक का मूल्यांकन ठीक प्रकार से नहीं हो सकता। इन परीक्षाओं के प्रचलन के कारण कुछ योग्य बालकों को कक्षोन्नति नहीं दी जाती तथा कुछ अयोग्य बालकों को दे दी जाती है। पहली प्रकार के बालकर निराश और निरूत्साहित होकर अपने को वास्तव में अयोग्य समझने लगते हैं। दूसरी प्रकार के बालक अयोग्य होने के कारण सदैव कक्षा में पिछड़े रहते हैं तथा पढ़ाई से मुख मोड़ लेते हैं। इस प्रकार की परीक्षा प्रणाली बालक के मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा असर डालती है।

कक्षा में असमायोजन– मानसिक अस्वस्थता के लिए बालक का कक्षा में असमायोजन भी उत्तरदायी हो सकता है। कुछ बच्चे ऐसे होते हैं जो अन्य बालकों के साथ लड़ाई झगड़ा करते हैं, नोच लेते हैं, काट लेते हैं, चिढ़ाते हैं तथा अध्यापक की अध्यापन प्रणाली में विक्षेप उत्पन्न करते हैं, तुतलाते हैं, कोहनी मारते हैं, गलत शब्दों का प्रयोग करते हैं आदि व्यवहार करते हैं तो इससे अन्य बच्चे कक्षा में असहज महसूस करते हैं जिससे उनका मानसिक स्वास्थ्य प्रभावित होता हैं

कक्षा का वातावरण– यदि कक्षा में वायु, प्रकाश तथा बैठने की उचित व्यवस्था नहीं है, यदि इसका वातावरण भय और आतंक से भरा है, यदि बालकों को छोटी–छोटी गलतियों पर भी भारी दण्ड दिया जाता है, यदि कक्षा में उन्हें अपने विचारों तथा भावनाओं को अभिव्यक्त

करने का अवसर नहीं दिया जाता तो इससे उनके मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता हैं

पाठ्य सहगामी क्रियाओं का अभाव– यदि बालकों को पाठ्य पुस्तकों को रटाने पर ही ध्यान दिया जाता है उनके व्यक्तित्व के अन्य पक्षों के विकास हेतु अन्य पाठ्य सहगामी क्रियायें जैसे– व्यवहारिक शिक्षा, सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन, कला प्रतियोगिता, निबन्ध प्रतियोगिता, वाद–विवाद प्रतियोगिता का आयोजन नहीं किया जाता तो इससे बच्चों में शिक्षण के प्रति रूचि विकसित नहीं हो पाती और वे पाठ्य पुस्तकों को एक बोझ समझकर पढ़ते हैं जो उनके मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डालता है।

अध्यापकों द्वारा प्रोत्साहन का अभाव– यदि अध्यापक बच्चों की सफलता तथा असफलता दोनों पर ही उन्हें प्रोत्साहित नहीं करते तो इससे बच्चों का प्रेरक बल जो उन्हें आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है, धीरे–धीरे समाप्त हो जाता है और बच्चे अपनी शारीरिक तथा मानसिक क्षमताओं के अनुसार उन्नति नहीं कर पाते हैं।

अत्यधिक प्रतियोगिताएँ तथा परीक्षाएँ– यदि विद्यालय में बहुत जल्दी–जल्दी परीक्षाएँ तथा प्रतियोगिताएँ करने का विधान है तो बच्चे इन परीक्षाओं के बोझ से ही दबे रहते हैं और उन्हे अन्य रूचिपूर्ण कार्यों के विषय में सोचने का अवसर ही नहीं मिल पाता। बच्चे किताबी ज्ञान तक ही सीमित होकर रह जाते हैं जो बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य को प्रत्यक्ष प्रभावित करता हैं

समाज– मानव का जन्म समाज में होता है। समाज की मान्यताओं तथा रीति–रिवाज के अनुकूल ही उसे व्यवहार करना पड़ता है। यदि बालक पर समाज का प्रभाव अनुकूल नहीं पड़ता है तो वह मानसिक रूप से अस्वस्थ हो जाता है। समाज में बालक के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव डालने वाले निम्न तत्व हो सकते हैं–

असुरक्षा– आज के संघर्षमय जीवन में चारों ओर अस्तित्व के लिए संघर्ष व्याप्त है। व्यक्ति प्रायः स्वयं को असुरक्षित अनुभव करता है। राष्ट्रीय विकास की गति इतनी धीमी है कि व्यक्ति को वर्तमान समय में जीवन व्यतीत करना कठिन हो रहा है। इससे लोगों में मानसिक तनाव बढ़ता जा रहा है।

असामाजिक वातावरण– यदि व्यक्ति ऐसे वातावरण के प्रभाव में आ जाता है जहाँ के लोग असामाजिक प्रवृत्ति वाले होते हैं तो इससे उसके मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। फेयर्स (1980) ने कुछ ऐसे सबूत प्रदान किये हैं जिनके आधार पर यह कहा जाता है कि जब व्यक्ति को अस्वास्थ्यकर, अनैतिक एवं असामाजिक वातावरण में लगातार रहते हुए बहुत दिनों तक अन्तःक्रिया करना होता है, तो इससे उसमें दोष भाव, आत्म–निन्दा ;मसि.बिवदकमउदंजपवदद्ध की भावना विकसित हो जाती है जो धीरे–धीरे उसके मानसिक स्वास्थ्य को कमजोर बनाते चला जाता है। फेयर्स (1980) ने 40 ऐसे केसेज का साक्षात्कार किया है जिनका मानसिक स्वास्थ्य पहले अच्छा था परंतु बाद में काफी गिर गया था। इनके साक्षात्कार से पता चला कि इसमें से अधिकतर व्यक्तियों ने सामाजिक एवं नैतिक रूप से बुरे वातावरण में आ जाने के फलस्वरूप अपने में उत्पन्न हीनता का भाव, दोष–भाव एवं आत्म–निन्दा को ही अपने बुरे मानसिक स्वास्थ्य का कारण बताया।

आन्तरिक तनाव– हमारे देश में अनेक सम्प्रदाय तथा जातियाँ हैं। संकीर्ण स्वार्थों की पूर्ति के लिए ये जातियाँ तथा सम्प्रदाय आपस में लड़ते–झगड़ते रहते हैं। एक–दूसरे के धर्म के साथ राजनैतिक दाँव–पेंच खेलते हैं इससे सभी में मानसिक तनाव विकसित हो जाता है।

ऊँच–नीच और अस्पृश्यता की भावनायें– जिस समाज में जातिगत भेदभाव, ऊँच–नीच की भावनायें जितनी ज्यादा होती हैं, उस समाज के लोगों में उतना ही ज्यादा नकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य होता है। ऊँची जाति वाले नीची जाति वालों के साथ ठी बर्ताव नहीं करते, अपने समान अधिकारों से वंचित रखते हैं तो यह उनमें मानसिक तनाव व आत्महीनता को विकसित कर देता है।

मनोरंजन के साधन का अभाव– मैकोवर (1990) ने पर्याप्त मनोरंजन एवं मानसिक स्वास्थ्य में सीधा संबंध बताया है। यदि समाज में पर्याप्त मनोरंजन के साधन उपलब्ध होते हैं, तो इससे उनमें मानसिक प्रसन्नतानुभूति पायी जाती है और उनका मानसिक स्वास्थ्य ठीक रहता है। परंतु यदि समाज में रहने वाले लोग ही ढर्रे में जिन्दगी जीते हैं तो इससे उनका पर्याप्त मनोरंजन न हो पाने के कारण मानसिक घुटन उत्पन्न हो जाती है जो धीरे–धीरे उनके मानसिक स्वास्थ्य को कमजोर करता चला जाता है।

समाज की रूढ़ियाँ और अन्धविश्वास– यदि समाज में रहने वाले लोग अत्यधिक रूढ़िवादी तथा अन्धविश्वासी हैं तो यह भी उनके मानसिक स्वास्थ्य में बाधक है। अत्यधिक रूढ़िवादिता तथा अन्धविश्वास के कारण ये लोग वस्तुओं, व्यक्तियों तथा घटनाओं के बारे में नये ढंग से सोच ही नहीं पाते जो उनके मानसिक स्वास्थ्य के विकास में बाधा उत्पन्न करते हैं।

समाज द्वारा प्रत्येक क्रियाओं और व्यवहार की निन्दा– यदि समाज में रहने वाले लोग ऐसे हैं जो एक–दूसरे के कार्यों और व्यवहारों की निन्दा चुगली किया करते हैं और छोटी से छोटी बात को भी बहुत बढ़ा–चढ़ा कर व्यक्त करते हैं तो यह मानसिक स्वास्थ्य विकास में हानिकारक प्रभाव डालता हैं

समाज के प्रमुख व्यक्तियों का अनुचित दबाव–

यदि समाज का धनी वर्ग तथा ऊँची जाति के लोग तथा राजनेता आदि अन्य लोगों पर अनेक तरह से दबाव बनाकर रखते हैं, उन्हें मनोनुकूल काम करने की स्वतन्त्रता नहीं देते उनके हर कार्य में हस्तक्षेप करते हैं तो इससे उनके अन्दर की भावना आ जाती है जो मानसिक स्वास्थ्य विकास में बाधक है।

वास्तविक मनोवृत्ति की कमी– यदि व्यक्ति में किसी कारण से वास्तविकता से हटकर कल्पनाओं में जीने की आदत बन जाती है तो ऐसे व्यक्तियों में घटनाओं, वस्तुओं एवं व्यक्तियों के प्रति एक तरह की अवास्तविक मनोवृत्ति विकसित हो जाती है। अवास्तविक मनोवृत्ति के विकसित हो जाने से उनमें आवेगशीलता, सांवेगिक अनियंत्रण, चिड़चिड़ापन आदि के लक्षण विकसित हो जाते हैं और उनका मानसिक स्वास्थ्य धीरे–धीरे खराब हा जाता है।

स्पष्ट हुआ कि मानसिक स्वास्थ्य कई कारकों से प्रभावित होता है। इन कारकों को नियंत्रित करके मानसिक स्वास्थ्य को काफी हद तक उन्नत किया बनाया जा सकता है।

18.4 शारीरिक स्वास्थ्य एवं मानसिक स्वास्थ्य का सम्बन्ध

प्रिय पाठकों, जैसा कि आप सभी इस बात से भली–भाति परिचित है कि शरीर तथा मन का एक दूसरे से गहरा संबन्धं है किन्तु क्या कभी इस बात पर भी विचार किया हैं कि ये एक दूसरे से इतना अधिक जुड़े हुवे है ? दोनों परस्पर प्रभावित करते है ?

पाठकों इसका मुख्य कारण यह हैं कि मन ही हमारे शरीर तथा समाप्त इन्द्रियों का नियंत्रण करती है। समस्तो शारीरिक गतविधियों के संचालन तथा इन्द्रियों के कार्यों पर मन

का नियंत्रण रहता है । कोई भी कार्य व्यवहार में घटित होने से पहले हमारे मन में घटित होता है अर्थात हम पहले मन से उस कार्य को करने के लिए तैयार होते है और बाद में वह स्थूल रूप में परिणत होता है।

अत आप एवं शरीर के इसी सम्बन्ध के कारण शरीरिक एवं मानविक स्वा स्ये का भी आपस में गहरा सम्बन्ध है। यदि हमारा मन उत्साह एवं ऊजा से ओत–प्रोत होता है तो शरीर सक्रिय हो जाता है। इसी प्रकार यदि हमारा शरीर स्व स्था रहता है। तो तन में भी अच्छे विचार आते है। मन शान्ति एवं एकाग्र रहगता है। अत स्पष्ट हैं कि शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य में गहरा सम्बन्ध है।

अभ्यासार्थ प्रश्न – रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए .....

1. कुप्पुस्वामी के अनुसार बालक..... से मानसिक निर्बलता प्राप्त करता है।
2. स्वास्थ व्यक्तियों की अपेक्षा रोगी व्यक्ति नई परिस्थितियों से ..... करने में अधिक कठिनाई का अनुभव करते हैं।
3. परम्परागत और ..... शिक्षण विधियॉ बालक के ज्ञान प्राप्ति के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करती है।
4. मानसिक अस्वस्थता के लिये बालक का कक्षा में ..... भी उत्तरदायी हो सकता है।
5. मैकोवर के अनुसार पर्याप्त ..... तथा मानसिक स्वास्थ्य में सीधा सम्बन्ध है।

18.5 सारांश–

प्रिय विद्यार्थियों, उपर्युक्त विवेचन से आप समझ गये हैं कि मानसिक स्वाास्थ्य पर आनुवांशिक गुणो, परिवार, समाज, विद्यालय, व्यवसायिक वातावरण इत्याझदि सभी कारकों का प्रभाव पड़ता है। जीवन विकास की प्रारम्भि5क अवस्थाय में वंशानुगत कारकों के अलावा एक बच्चाय अपने परिवार के माहौल से सर्वाधिक प्रभावित होता है। अतरू एक अच्छे मानसिक स्वारस्य के लिए हमें बचे क के जन्म् से पूर्व ही अनेक बातों का ध्या न रखना चाहिए, क्योंकि एक स्वछस्यरक माता–पिता ही एक स्व स्थे स बच्चो के जन्मो दे सकते है। साथ ही शरीर एवं मन का एक–दूसरे के साथ गहरा सम्बएन्ध होने के कारण शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य, को तथा मानसिक स्वास्थ्य, शरीरिक स्वास्थ्य, को प्रभावित करता है।

18.6 शब्दावली

स्नायु सम्बन्धी – मस्तिष्क संस्थान से सम्बन्धित
आतंक – भय
विक्षेप– बाधा,

18.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1. दोषपूर्ण वंशानुक्रम ।
2. सामंजस्य ।
3. अमनोवैज्ञानिक ।
4. असमायोजन ।

5. मनोरंजन ।

18.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हसन, शाहिद / (2006) नैदानिक मनोविज्ञान / मोतीलाल बनारसीदास, बंगलोरोड़, जवाहर नगर, दिल्ली।
2. वर्णवाल, सुरेश, योग एवं मानसिक स्वास्थ्य।
3. सिंह, अरूण कुमार / (2007), असामान्य मनोविज्ञान मोतीलाल बनारसीदास, बंगलोरोड़, जवाहर नगर, दिल्ली।

18.9 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न– 1 मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारकों का विवेचन कीजिए ।

प्रश्न– 2 शारीरिक स्वास्थ्य एवं मानसिक स्वास्थ्य में क्या सम्बन्ध है ? स्पष्ट कीजिए।